

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ

लेखिका

डॉ. अनामिका सिंह

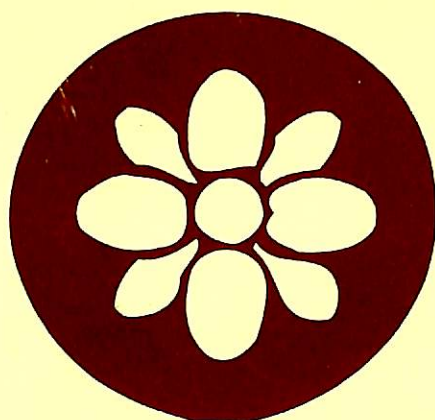
सम्पादक

डॉ. सूर्य प्रकाश व्यास

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ

अनामिका सिंह

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ



लेखिका
डॉ. अनामिका सिंह

सम्पादक
डॉ. सूर्यप्रकाश व्यास

...The task of Ms. Anamika Singh's thesis is to critically examine and evaluate the various arguments of Vedantins which were set against the doctrines of the different Schools of Buddhism....

...She holds the view that Shankara has strong and bitter attitudes against the Buddhist philosophy....

...According to her, no where in the whole Bauddha literature the word 'tuchha' occurs which Rāmānujāchārya uses against the Buddhists.... She is of the firm opinion that Rāmānuja's commentary is richer than the commentaries of Nimbārkāchārya, Madhvāchārya and Vallabhāchārya from the point view of the metaphysical and epistemological arguments....

...The Thesis clearly shows that the candidate has acquaintance with the original and secondary texts on the subject. It is a merit of the thesis that it has a neat and clean scheme. The candidate has kept the central theme free from side issues. The bibliography testifies her scholarship on the theme. She has made a good use of the historical descriptive-evaluative methodology. The work reflects the candidate's architectonic skills. Although the thesis is mainly expository in character but is interspersed with philosophical comments and insights here and there which are definitely bound, in my opinion, to clarify some of the basic issues pertaining to the relationships between Bauddha Āchāryas and Vedānta Āchāryas....

...She has avoided entering into the philosophical debate. She has done mainly a historical comparative analysis of Bauddha reference found in the different commentaries of Vedānta Āchāryas which is in itself a good contribution to the stock of philosophical knowledge. She has presented her arguments cogently and convincing to support the thesis within the framework of Vedānta literature. In her discussion of Buddhist thoughts referred in Vedānt literature she has raised some of the important issues with varying degree of competence....

Prof. Jagat Pal
University, Shillong.





आचार्य रामचन्द्र द्विवेदी स्मृति ग्रन्थमाला— दशम पुष्प

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ

लेखिका

डॉ० अनामिका सिंह

सम्पादक

डॉ. सूर्यप्रकाश व्यास

रीडर

जैन-बौद्ध दर्शन विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी

प्रकाशक

आर्य भाषा संस्थान

वाराणसी

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ

संस्करण प्रथम, 2004

प्रकाशक

आर्य भाषा संस्थान,

बी 2/143 ए, भदौनी

वाराणसी- 221 001

ISBN : 01 - 87978-13-9



इस ग्रन्थ के सर्वाधिकार
सम्पादक के अधीन हैं।

मूल्य : 400.00 रुपये

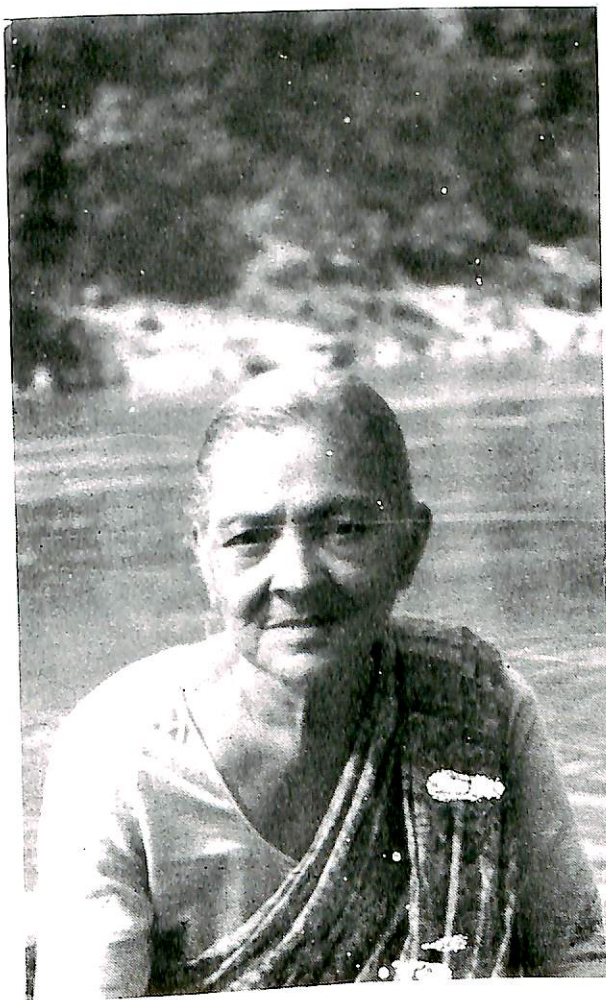
कम्पोजिंग :

आयुशी कम्प्यूटर्स, वाराणसी

मुद्रक :

महावीर प्रेस, वाराणसी

समर्पण



श्रद्धेया माता (स्व.) श्रीमती कुसुम सिंह
तिरोभाव 28 जून, 2003

अनामिका सिंह



प्रो. सत्यदेव मिश्र

कुलपति

राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय

जयपुर



0141-2710047 (का.)
फोन 0141-2352259 (नि.)
0141-2711050 (फैक्स)
ई-मेल sdmvc@yahoo.com
2-2 ए, झालाना डूंगरी
जयपुर - 302 004
(राजस्थान)

पुरोवाक्

उपनिषदों से प्रत्यक्षतः उद्भूत, गीता के द्वारा सुविकसित तथा ब्रह्मसूत्रों के द्वारा सुप्रतिष्ठापित वेदान्त का वैदिक दर्शनों में विशिष्ट स्थान है। गीता उपनिषदों का सार है और ब्रह्मसूत्र औपनिषद मन्त्रों का संक्षिप्त रूप है, अतएव वेदान्त वस्तुतः औपनिषद दर्शन है। उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र को वेदान्त का श्रुति, स्मृति और युक्तिपरक प्रमाण-ग्रन्थ या प्रस्थानत्रय माना गया है। ब्रह्मसूत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य जीव, जगत् एवं ब्रह्म के स्वरूप तथा उसके पारस्परिक सम्बन्धों के विवेचन में निहित है। शङ्कराचार्य आदि आचार्यों ने वेदान्त के इन तीनों प्रस्थानों पर भाष्य लिखे हैं और उनके माध्यम से अपने अद्वैतादि सम्प्रदायों की आधारशिला रखी है। वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भों तथा बौद्ध दर्शन की शब्दावली के प्रयोग की दृष्टि से माण्डूक्योपनिषद् पर गौडपाद के द्वारा रचित माण्डूक्यकारिका महत्त्वपूर्ण है। माण्डूक्यकारिका यद्यपि अद्वैत वेदान्त का ग्रन्थ है, तथापि इसके 'अलात शान्ति प्रकरण' की १०० कारिकाओं में बौद्ध सन्दर्भों की प्रचुरता के कारण कुछ विद्वानों ने गौडपाद को बौद्ध दर्शन का समर्थक मान लिया है और उनके प्रशिष्य शङ्कराचार्य पर 'प्रच्छन्न बौद्ध' होने का आरोप लगाया है।

ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद के १५ सूत्रों में बौद्ध मतों का उल्लेख है। शङ्कराचार्य आदि ब्रह्मसूत्र के सभी भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में इन मतों का सोपन्यास खण्डन किया है। शङ्कराचार्य का 'शारीरकभाष्य' ब्रह्मसूत्र का प्राचीनतम उपलब्ध भाष्य है। शङ्करभाष्य के पहले भर्तृप्रपञ्च आदि अनेक आचार्यों द्वारा लिखे गये ब्रह्मसूत्र के भाष्य अब अनुपलब्ध हैं। शङ्कर के शारीरकभाष्य के बाद लिखे गये उपलब्ध

ब्रह्मसूत्र के भाष्यों में प्रमुख हैं- रामानुज का श्रीभाष्य, निम्बार्क का वेदान्तपारिजातसौरभ, मध्व का पूर्णप्रज्ञभाष्य और वल्लभ का अणुभाष्य। शङ्कर के अद्वैत सिद्धान्त के विरोध में प्रतिष्ठापित रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभ के वेदान्त सम्प्रदाय क्रमशः विशिष्टाद्वैत, स्वाभाविक भेदाभेद, द्वैत एवं शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध हैं। शङ्कर और रामानुज आदि आचार्यों ने तर्कपाद के उपर्युक्त सूत्रों के भाष्यों में बौद्ध दर्शन के सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद और शून्यवाद मतों का केवल उल्लेख ही नहीं किया है, अपितु पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित इन मतों की विशद व्याख्या के उपरान्त ही अपने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत प्रभृति मतों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

डॉ. अनामिका सिंह का छह परिच्छेदों से युक्त 'वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ' ग्रन्थ का वैशिष्ट्य वेदान्त और बौद्ध दर्शनों के विषयों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों के निरूपण में सन्निहित है। इस आकर ग्रन्थ का प्रत्येक परिच्छेद प्रामाणिक सूचनाओं से पूरिपूर्ण है। इसके प्रथम परिच्छेद में वेदान्त और बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों तथा वेदान्त के प्राचीन आचार्यों और आधुनिक चिन्तकों का विवरण है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम परिच्छेदों में क्रमशः ब्रह्मसूत्र, माण्डूक्यकारिका, शारीरकभाष्य तथा वैष्णवभाष्यों में बौद्ध सन्दर्भों की व्याख्या तथा समालोचना का सफल प्रयास किया गया है। छठे परिच्छेद में वेदान्त और बौद्ध दर्शनों के पारस्परिक संवादों एवं प्रभावों का सम्यक् मूल्याङ्कन किया गया है। लेखिका ने जिस सहजता और सरलता के साथ वेदान्त के अथाह सागर में छिपे बौद्ध दर्शन के सन्दर्भ-मौक्तिकों का संग्रह किया है और उन्हें एक बहुमूल्य ग्रन्थ के रूप में यत्नपूर्वक पिरोया है, वह वस्तुतः प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ डॉ. अनामिका सिंह की लेखनप्रतिभा तथा डॉ. सूर्यप्रकाश व्यास के संपादन-कौशल का सुफल है। वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन के अध्येताओं के लिये यह नितान्त उपयोगी है। मुझे विश्वास है कि डॉ. अनामिका सिंह ऐसे अनेक तुलनात्मक अध्ययनों के द्वारा भारतीय दर्शन को समृद्ध करती रहेंगी।

शुभाशंसा

प्रो. सुधांशु शेखर शास्त्री,
अध्यक्ष, वैदिक दर्शन विभाग,
पूर्व संकाय-प्रमुख,
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

॥ॐ॥

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं विश्वेशं नौमि सर्वदा॥
प्रतिपाद्यं द्वयोरेकं तत्त्वमद्वैतमेव तत्।
प्रक्रियाभेदमादाय शाङ्करं सौगतं तथा॥

डॉ. श्रीसूर्यप्रकाश व्यास के द्वारा सम्पादित एवं डॉ. अनामिका सिंह के द्वारा लिखित वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ ग्रन्थ तत्त्वजिज्ञासुओं के समक्ष प्रकाशित होने जा रहा है- जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष है।

सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करने पर समस्त दर्शनों के मध्य सौगत, स्वातन्त्र्य एवं शाङ्कर दर्शनत्रय ही प्रौढ़िमा के भाजन दृढ़स्थितिक सिद्ध होते हैं। यद्यपि सभी दर्शन अपनी-अपनी सरणी के अनुसार तत्त्व के ही प्रतिपादक हैं, अन्यथा दर्शनों का दर्शनत्व ही व्याहत हो जायेगा। दृश्यते तत्त्वं येन तददर्शनम् व्युत्पत्ति के अनुसार तत्त्वप्रतिपादक शास्त्र ही दर्शन कहा जाता है और यद्यपि शास्त्रेषु प्रक्रिया-जालैरविद्यैवोपवर्ण्यते उक्ति के अनुसार सभी दर्शनों की प्रक्रिया अविद्यात्मक ही है, तथापि तत्त्वान्वेषणार्थ अभिमत प्रक्रियाजाल में वैशिष्ट्य की आधायिका भी उक्त दर्शनत्रयी ही ठहरती है। तत्त्व के स्वरूप में अद्वैततत्त्व का पोषण तथा प्रदर्शन भी इन्हीं दर्शनों का मुख्य लक्ष्य है। मुख्यप्रतिपाद्य के एक होते हुए भी प्रक्रियांश के भिन्न होने से भिन्नतया परिगणनीय होते हैं। परस्पर में क्वचिदंशविशेष में विरोध के जागरूक रहते हुए भी यथायोग्य प्रतिपिपादयिषित अद्वैत के उपोद्बलन हेतु द्वैतनिरास ससङ्गसमस्तवस्तुमात्र के मिथ्यात्व उपपादन में दृढ़ आदरतया बौद्ध दर्शन के साथ भी वेदान्त की पारस्परिक बन्धुता अनपह्वनीय ही है।

प्रकृतग्रन्थ में वेदान्तों के मूल स्रोत की चर्चा करते हुए उपनिषदों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। काण्डत्रयात्मको वेदः इस उक्ति के अनुसार वेद

के कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड काण्डत्रय प्रसिद्ध हैं। ज्ञान की विशेष विवेचना करने के कारण वेद का उपनिषद्भाग ज्ञानकाण्ड कहे जाते हैं। भारतीय दर्शन के मूलसिद्धान्त इन उपनिषदों में उपवर्णित हैं। यद्यपि समस्त वेद का मुख्य तात्पर्य अद्वितीय परमार्थतत्त्व के प्रतिपादन में ही है। कर्मादि के प्रधान होने पर भी संहितादि में अध्यात्मविषयक विपुल रहस्यों का उद्घाटन उपलब्ध होता है। तथापि मुख्यरूप से अध्यात्मविषयक महत्वपूर्ण समस्याओं का विषद विवेचन एवं समाधान उपनिषदों में ही प्राप्त होता है। उपनिषद्रूप ज्ञानकाण्ड प्रायः वेद के अन्तिम भाग में देखा गया है, जैसे शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनशाखा की संहिता में चालीस अध्याय उपलब्ध हैं। उसका अन्तिम चालीसवाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् है। अतएव उनका वेदान्त नाम होना भी उस दृष्टि से अन्वर्थ सिद्ध होता है। **वेदस्य अन्तः अन्तिमो भागः** यह व्युत्पत्ति वेदान्त शब्द के उसी अर्थ को दृढ़ करती है।

वस्तुतस्तु वेदान्त शब्द में अन्त शब्द निर्णीतार्थ का वाचक है **वेदेन अथवा वेदस्य निर्णीतार्थः वेदान्तः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार वेदप्रतिपाद्य सिद्धान्त का नाम ही वेदान्त है। उपनिषद् शब्द भी इसी अर्थ में पर्यवसित होता है। उप नि उपसर्गक सद्भातु से क्विप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है। सद्भातु के तीन अर्थ होते हैं- विशरण = नाश होना, गति = प्राप्ति होना, एवं अवसादन = शिथिल होना। जिस विद्या के परिशीलन से दृष्टानुश्रविक विषयों से वितृष्ण मुमुक्षुजनों की संसार-बीजभूत अविद्या नष्ट हो जाती है, जो विद्या उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है तथा जिस के अनुशीलन से समस्त सांसारिक जन्ममरणादि दुःखों का सर्वथा उच्छेद हो जाता है वही अध्यात्मविद्या उपनिषद् कही जाती है। जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण ने **अध्यात्मविद्या विद्यानाम्** कहकर इसी का संकेत किया है। **कठोपनिषद्** भाष्यारम्भ में श्रीमद्भगवत्पाद के कथनानुसार उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या ही है, गौणवृत्ति से ग्रन्थविशेष में प्रयुक्त होता है।

यह ब्रह्मविद्या समस्त विद्याओं की प्रतिष्ठा आधारभूत है। जैसा कि **मुण्डक** में कहा है- **स ब्रह्मविद्या सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय जेष्ठपुत्राय प्राह** (मु. १/१)। अतएव समस्त विद्याओं का अन्तिम पर्यवसान ब्रह्मविद्या में ही होता है। उपनिषदों के लिए वेदान्त शब्द का प्रयोग **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः** (मु. ३/२/५) **वेदान्ते परमं गुह्यम्** (श्वे. ६/२२) **वेदान्ते च प्रतिष्ठितः** (म.ना. १०/८) इत्यादि श्रुतिसिद्ध हैं।

कालक्रम से सामर्थ्य के शिथिल होने पर उपनिषद्-वाक्यों के तात्पर्यार्थ में संशय होने लगा। मुमुक्षुजनों के उद्धार हेतु संशय निवृत्त कर उपनिषद् प्रतिपाद्य

सिद्धान्त का प्रतिपादन करना आवश्यक था। एतदर्थ मुमुक्षुभाग्यविधाता भगवान् बादरायण ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की। शाङ्करसम्प्रदाय के अनुसार इनकी संख्या ५५५ (पाँच सौ पचपन) है। भाष्यटीकाकार आनन्दगिरि एवं श्रीधरस्वामी आदि आचार्यों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का उल्लेख भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमदिभिर्विनिश्चितैः (गी. १३/४) इस पद्यांश में किया है।

इन सूत्रों पर सभी सम्प्रदायों के दशाधिक भाष्य आज भी उपलब्ध हैं जिनका विस्तृत विवरण प्रकृतग्रन्थ वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ में दिया गया है। साथ ही ब्रह्मसूत्र के रचनाकाल, वेदान्त के प्रस्थानत्रय, तदीय भाष्यकारों का परिचय तथा बौद्धदर्शन के प्रादुर्भाव, विभिन्न सम्प्रदाय आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

शाङ्करसम्प्रदाय के अनुसार तत्तुसमन्वयात् आदि सूत्रों के द्वारा उपक्रमोपसंहारादिषड्विध तात्पर्यनिर्णायकलिङ्गों के आधार पर समस्तवेदान्तवाक्यों का तात्पर्य अद्वितीयनिर्विशेष ब्रह्म में सिद्ध किया गया है। तात्पर्यवृत्त्या समस्त वेदान्तवाक्यों का समन्वय अद्वैत ब्रह्म में प्रदर्शित करने से ही प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र के अध्यायान्तरों की अपेक्षा प्रथमाध्याय का विशेष महत्त्व माना जाता है क्योंकि यह समन्वय के द्वारा स्वसिद्धान्त का प्रतिपादक है। और इस समन्वय के दाढ्यार्थ ही द्वितीयाध्याय का उपयोग है।

द्वितीयाध्याय अविरोधाध्याय (विरोधपरिहाराध्याय) कहा जाता है। इसमें स्मृतिविरोध तथा सांख्य, न्यायवैशेषिक, बौद्ध, जैन, पाशुपत एवं पाञ्चरात्र सम्प्रदायों के द्वारा समुत्थापित युक्तिविरोध का परिहार कर अद्वैत ब्रह्म में वेदान्तवाक्यों के समन्वय को दृढ़ किया गया है।

प्रकृतग्रन्थ में लेखिका ने वेदान्तदर्शन एवं बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध का विश्लेषण करते हुए ब्रह्मसूत्र एवं तदीय शाङ्कर भाष्य में बौद्ध दर्शन के खण्डन-स्थलों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। साथ ही श्रीगौडपादाचार्य के साथ भी बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध की चर्चा की है। गौडपाद के मायावाद एवं बौद्ध दर्शन के शून्यवाद में अभिन्नता की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए अजातवादसिद्धान्त के अतिप्राचीन होने की भी पुष्टि की है।

वस्तुतस्तु वेदान्त दर्शन तथा बौद्ध दर्शन दोनों ही विशिष्ट अधिकारी विशेष को लक्ष्य कर भिन्न-भिन्न दशा में विभिन्न उपदेश देते हैं। अतएव क्वचित् अजातवाद का आश्रय कर एक सत्तावाद को संकेतित करते हैं तो कहीं मिथ्यात्व का विश्लेषण करते हुए सत्ताद्वयवाद एवं सत्तात्रयवाद की अपेक्षा उपस्थित करते हैं। बौद्ध दर्शन के शून्यवाद में ज्ञानं ज्ञेयं सर्वं शून्यम् कहते हुए ज्ञान के भी शून्यत्व

की चर्चा करते हैं जबकि वेदान्त दर्शन ज्ञान को पारमार्थिक सत्य बतलाकर उसी ज्ञानरूप अधिष्ठान में ज्ञेय को कल्पित मानकर ज्ञेयमात्र के मिथ्यात्व की घोषणा करता है।

सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर शून्यत्व कल्पितत्व का अपर पर्याय है। अतः ज्ञेयमात्र में उसे पर्यवसित करने पर वेदान्त दर्शन के साथ बौद्ध दर्शन का सामञ्जस्य बन सकता है। सम्भव यह भी प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध के मूल उपदेश में यही आशय रहा हो, परवर्ती व्याख्याताओं के प्रभाव से निरधिष्ठानक भ्रम की कल्पना कर ली गई हो। तात्त्विक दृष्टि से देखने पर लगता है भगवान् बुद्ध के मूल उपदेश का उद्देश्य अध्यात्मपथपथिक अधिकारी के लिए बाह्य महान् एवं जटिल उपद्रव को दूर कर प्रज्ञा, शील तथा समाधि जैसे साधनों की पुष्टि करना है। उस परिवेश के अन्तःस्तल में पहुँचने के बाद वह अपने आप के स्वतः प्रकाश वास्तविकस्वरूप को देखने में स्वयं समर्थ हो सकेगा। विपश्यना जैसे साधनों का विरोध कहीं भी दर्शन-क्षेत्र में नहीं सोढव्य है। भगवान् शङ्कराचार्य का भी लक्ष्य यही है कि अधिकारी बाह्य उपद्रवों से हटकर अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर सके। अन्तर यही है एकत्र बाह्यदृष्टि का प्राधान्य है और अपर आन्तर-दृष्टि का प्राधान्य है। व्याख्यानोपव्याख्यान की दृष्टि से खण्डन प्रक्रिया का भी सार्थक्य सिद्ध हो जाता है। **ब्रह्मसूत्राभा** में विज्ञानवाद के समान शून्यवाद के खण्डन का विस्तार न होने पर भी **बृहदारण्यक भाष्य** आदि अनेक स्थलों में अतिविस्तृतरूप से उक्त शून्यवाद का निराकरण उपलब्ध है। अतः आचार्य शङ्कर पर प्रच्छन्न बौद्धत्वादि आक्षेप सर्वथा निर्मूल ही सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध में विदुषी लेखिका ने अपने आप को सही समालोचक साक्षी रूप से सुरक्षित रखते हुए वेदान्तदर्शन के सभी पक्षों पर **ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य** एवं **माण्डूक्यकारिका** प्राधान्येन विस्तृत विचार व्यक्त किया है। साथ ही बौद्ध दर्शन के भी सभी विचारणीय बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है। अतः मुझे दृढ़ विश्वास है कि प्रस्तुतप्रबन्ध **वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ** परवर्ती तत्त्वजिज्ञासुओं के लिए महान् उपकारक सिद्ध होगा।

मैं इस ग्रन्थरत्न के सर्वत्र अप्रतिहत प्रचार-प्रसार की कामना करते हुए अहेतुक बन्धु अकारणानुग्रहैकवपु विश्वगुरु भगवान् भवानीपति श्रीविश्वेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि डॉ. अनामिका सिंह तथा उनके पथप्रदर्शक डॉ. श्री सूर्यप्रकाश व्यास स्वस्थ प्रसन्न रहते हुए ईदृशलोकोपकारि कार्य द्वारा मुमुक्षुजनों का सदैव उपकार करते रहें।

सम्पादकीय

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ पुस्तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा सन् २००३ में स्वीकृत शोध-प्रबन्ध का प्रकाशनार्ह संशोधित रूप है। औपचारिक शोध का प्रसङ्ग होने के कारण इससे सम्बद्ध कतिपय सामान्य विचार व्यक्त करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

अनुसन्धान अथवा शोध केवल उपाधि के लिए किया गया एक औपचारिक कर्मकाण्ड मात्र नहीं है। वस्तुतः इसके चार घटक माने जा सकते हैं अनुसन्धाता, निर्देशक, विषय और संस्थान।

अनुसन्धान का मुख्य वाहक शोधार्थी होता है। इसी की प्रतिभा और सामर्थ्य पर अनुसन्धान का निर्वाह और साफल्य निर्भर करता है। अनुसन्धाता के लक्षणों में, मेरी दृष्टि से धैर्य, लगन, नियमितता, स्वाध्याय में रुचि, पुस्तकालयों की खाक छानने का माद्दा, भाषा-शैली, चिन्तनशीलता, अभिनव विधि से कुछ गम्भीर व विलक्षण करने-कहने का उत्साह, पूर्वाग्रहों से परे तटस्थ रहने की क्षमता और सर्वोपरि अपने निर्देशक पर पूर्ण आस्था व जाग्रत् विश्वास तथा उसके अनुशासन को अक्षरशः पालन करने की विनम्रता आदि गुण मुख्य हैं।

शिक्षा का एक सर्वोच्च स्तर स्नातकोत्तर कक्षा है। इस स्तर तक शिक्षार्थी का परिचय शिक्षक से होता है। किन्तु शिक्षक और शोध-निर्देशक तथा स्नातकोत्तर शिक्षण और अनुसन्धान में पर्याप्त भेद और दूरी है। शिक्षक के समक्ष एकाधिक विद्यार्थी अथवा सम्पूर्ण कक्षा, निर्धारित पाठ्यक्रम, कालांश और निर्धारित कालांशों में पाठ्यक्रम-पूर्ति का दायित्व होता है। उसे न तो अपने विद्यार्थी के चयन की और न ही केवल उसके लिए, उसके अनुकूल विषय के चयन की स्वतन्त्रता होती है। छात्र के परीक्षा-परिणाम के लिए भी (विश्वविद्यालय स्तर पर) उसके दायित्व की सीमाएँ भी नगण्य होती हैं। किन्तु इसके विपरीत शोध-निर्देशक की भूमिका, स्वतन्त्रता और दायित्व गम्भीर तथा व्यापक है। शोध का समस्त नियन्त्रण और अन्तिम अधिकार निर्देशक का होता है। संस्थान द्वारा निर्धारित प्रवेशपरीक्षा,

प्रगति-विवरण आदि के अनेकानेक नियम सुयोग्य शोधार्थी के चुनाव में निर्देशक की सहायता के लिए हैं तथा उसके अधिकार, वर्चस्व और स्वातन्त्र्य को सम्बल प्रदान करने के लिए हैं। किसी विश्वविद्यालय का कोई नियम किसी निर्देशक को किसी भी शोधार्थी को किसी विषय विशेष पर शोध करने के लिए बाध्यकारी नहीं है।

औपचारिक शोध के प्रसङ्ग में शोध-निर्देशक को आरम्भ से अन्त तक अर्थात् पञ्जीकरण से प्रबन्ध की प्रस्तुति एवं मौखिकी पर्यन्त मिली इस उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतन्त्रता का कभी-कभी दुरुपयोग भी होता है। इसी के फलस्वरूप निर्देशक शोषक और शोधार्थी उसके शैक्षिक सेवक या शोषित के रूप में समाज में जाने जाते हैं।

शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध से भिन्न निर्देशक व शोधार्थी के सम्बन्ध के अन्य आयाम भी हैं। शिक्षक, शिक्षार्थी के ज्ञान और शील का सामान्य पथप्रदर्शक होता है जबकि निर्देशक एक विषय-विशेष के माध्यम से शोधार्थी को अनुसन्धान-विधि का प्रशिक्षण देकर उसके भावी अनुसन्धातृ-रूप को गढ़ता है। उसे एक सुनिश्चित दिशा में आगे बढ़ाकर विद्याक्षेत्र को आजीवन अनुसन्धाता के रूप में एक विशेषज्ञ देता है। इसलिए निर्देशक का दायित्व अपने शोधार्थी को एक औपचारिक अलंकरण दिलाना और वहीं तक स्वयं को सीमित रखना नहीं है।

जो शोधार्थी मात्र एक अलंकरण प्राप्त कर अपने अनुसन्धान को आगे नहीं बढ़ा पाते उनकी इस सीमित उपलब्धि से उनका अपना व्यक्तिगत लाभ भले ही हो, किन्तु इससे ज्ञान की शाखा को अनुसन्धान के माध्यम से सतत योगदान देने का लक्ष्य पूरा नहीं होता। इसलिए ऐसी शोध व उपाधियाँ समाज, संस्थान व विषय के लिए निरर्थक सिद्ध हो जाती हैं। अलङ्करण के व्यक्तिगत लाभ की पूर्ति मात्र करने वाले ऐसे शोध-प्रबन्धों की अन्तिम नियति पुस्तकालयों में इतिहास की वस्तु बनकर फिर किसी दूसरे शोधार्थी के माध्यम से स्वयं को दोहराना हो जाती है।

वस्तुतः औपचारिक अनुसन्धान तो भावी अनुसन्धान का प्रशिक्षण मात्र है। इसलिए इस प्रशिक्षण के बाद ही शोधार्थी का वास्तविक जीवन प्रारम्भ होता है और यदि वह प्रारम्भ न हो सका अर्थात् शोधारम्भ की प्रज्वलित मशाल आगे बुझ गई तो फिर प्रशिक्षण और अलंकरण का व्यर्थ होना स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में ऐसा भी कहा जा सकता है कि शोध का पारमार्थिक प्रयोजन ज्ञान-शाखा का विकास है, उसमें निरन्तर योगदान है तथा शोधार्थी, निर्देशक व संस्थान के लाभ व्यावहारिक, व्यक्तिगत और सीमित हैं।

शोध-विषय निर्देशक का एक अमूर्त स्वप्न होता है जिसे वह सर्वप्रथम शोधार्थी के मन में अङ्कित करता है और फिर दोनों मिलकर उस स्वप्न को बाह्य यथार्थ के रूप में साकार करते हैं। अतः निर्देशक, शोधार्थी और विषय का सुसामञ्जस्य दुर्लभ होते हुए भी परमावश्यक है। इसी सामञ्जस्य पर प्रबन्ध का सृजन, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और साफल्य निर्भर करता है। जिस प्रकार शोध-विषय (समस्या) के निर्वाह की अपनी एक सीमा होती है उसी प्रकार अनुसन्धाता और निर्देशक की भी अपनी सीमाएँ होती हैं। प्रत्येक अनुसन्धाता, योग्यता के बावजूद प्रत्येक विषय पर शोध नहीं कर सकता और प्रत्येक निर्देशक प्रत्येक विषय या शोधार्थी का सफल-मार्गदर्शक नहीं हो सकता।

अनुसन्धान के प्रसङ्ग में संस्थान का कार्य शोधार्थी और निर्देशक को भौतिक साधन-सुविधाएँ और वातावरण उपलब्ध कराना है ताकि वे इसके सदुपयोग से ऐसा अनुसन्धान कर सकें जो स्वयं संस्थान की प्रतिष्ठा को भी बढ़ाने वाला हो।

उक्त प्रसङ्ग में संस्थान के नियमों पर एक टिप्पणी करना आवश्यक प्रतीत होता है। संस्थान के कुछ प्रशासनिक नियमों और उनकी औपचारिकताओं ने एक ओर अयोग्य अनुसन्धाताओं को दूर रखने में सहयोग किया है तो दूसरी ओर निर्देशक-अनुसन्धाता के बहुमूल्य समय, सामर्थ्य, सातत्य और एकाग्र्य के निर्वाह में कभी-कभी बाधाएँ भी खड़ी की हैं।

जहाँ तक शोध-स्तर में सुधार का प्रश्न है इसमें संस्थान के नियमों

है कि लेखिका दूसरे व्यावहारिक लक्ष्य को भी यथाशीघ्र प्राप्त करे ताकि पारमार्थिक प्रयोजन की ओर दृढ़ता से कदम बढ़ा सके।

राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के कुलपति और इस विषय के विशेषज्ञ आदरणीय प्रो. सत्यदेव मिश्र ने तथा प्रो. सुधांशु शेखर शास्त्री, अध्यक्ष, वैदिक दर्शन विभाग एवं पूर्वप्रमुख, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने पुस्तक को अपने आशीर्वचनों से अलङ्कृत किया है- अतः इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रश्नावली के माध्यम से जिन विद्वानों ने लेखिका को साक्षात्कार की अनुमति प्रदान की वे भी निश्चय ही धन्यवादार्ह हैं। डॉ. कमलेश कुमार जैन, अध्यक्ष, जैन-बौद्ध दर्शन विभाग, डॉ. रामनिवास तिवारी, धर्मागम विभाग एवं डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, पुस्तकालयाध्यक्ष, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्नेह-सद्भाव इस कार्ययोजना के साथ सदैव रहा है, इसलिये इनके प्रति आभार प्रकट करना सहज कर्तव्य है।

लेखिका-पक्ष से कृतज्ञता-ज्ञापन के बिना इस वक्तव्य का उपसंहार उचित नहीं है। स्नेहमूर्ति भ्राता श्री अरुण कुमार सिंह, श्री अनिल कुमार सिंह, श्री अरविन्द कुमार सिंह एवं सिंह-परिवार के अन्य सदस्यों; सखिवर्ग में सुश्री डॉ. सीमा सिंह, श्रीमती डॉ. श्वेता दुबे और सुश्री ऋतु गुप्ता के प्रति लेखिका विशेषरूप से कृतज्ञ है क्योंकि इन सबने शोध एवं प्रकाशन के संकल्प की पूर्ति में उन्हें सशक्त सम्बल प्रदान किया है।

आर्यभाषा संस्थान ने प्रकाशन का भार स्वीकार कर अमूल्य सहयोग प्रदान किया, प्रिय श्री नवीन श्रीवास्तव ने कम्प्यूटर प्रति तैयार करने में अथक श्रम किया- और इसी प्रकार अनेकानेक शुभेच्छुओं ने अपने-अपने स्तर से जो भी सहयोग किया उसके लिये ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

वेदान्त और बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध और प्रभाव की व्यापक एवं क्लिष्ट समस्या के एक पक्ष का विवेचन करने वाली प्रस्तुत पुस्तक जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी होगी- ऐसी आशा है।

सूर्य प्रकाश व्यास

अनुक्रमणिका

पुरोवाक् : प्रो. सत्यदेव मिश्र	i
शुभाशंसा : प्रो. सुधांशु शेखर शास्त्री	iii
सम्पादकीय	vii
विषयानुक्रमणिका	xiii
सङ्केतसूची	xix
प्रथम परिच्छेद : उपोद्घात	१-२९
१. वेदान्त : आचार्य, साहित्य और सम्प्रदाय	२
(अ) प्रस्थानत्रय	२
(आ) आचार्य गौडपाद	८
(इ) ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार	९
आचार्य शङ्कर	
आचार्य रामानुज	
आचार्य मध्व	
आचार्य निम्बार्क	
आचार्य वल्लभ	
(ई) परवर्ती टीकाकार आदि	१३
(उ) आधुनिक चिन्तक	१३
स्वामी विवेकानन्द	
आचार्य विनोबा भावे	
सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	
२. बौद्ध दर्शन : प्रादुर्भाव एवं सम्प्रदाय	१६
(अ) प्रादुर्भाव	
(आ) सम्प्रदाय	
३. बौद्ध सन्दर्भों की दृष्टि से वेदान्तिक साहित्य का सूच्यात्मक सर्वेक्षण	२१
४. आधुनिक अध्ययन एवं अनुसन्धान	२८

द्वितीय परिच्छेद : ब्रह्मसूत्र में बौद्ध सन्दर्भ ३०-४६

१. ब्रह्मसूत्र : परिचय ३०

(अ) शब्दार्थ/तात्पर्य ३०

(आ) रचनाकार ३०

(इ) रचनाकाल ३१

(ई) रचना-प्रक्रिया ३२

(उ) कलेवर ३३

(ऊ) खण्डनात्मक पक्ष ३४

२. ब्रह्मसूत्र में बौद्ध पक्ष ३६

(अ) सन्दर्भ ३६

(आ) सम्बद्ध अधिकरणद्वय की सार्थकता ३७

(इ) सम्प्रदाय ३७

(ई) सिद्धान्त- ३८

सर्वास्तिवाद

विज्ञानवाद

(उ) खण्डनात्मक युक्तियाँ ३९

सर्वास्तिवाद

विज्ञानवाद

(ऊ) बौद्ध सन्दर्भ में ब्रह्मसूत्र की खण्डन शैली ४०

(ऋ) ब्रह्मसूत्र में बौद्ध सन्दर्भों पर (अन्य विद्वानों की) टिप्पणियाँ

४१

३. समीक्षा ४३

तृतीय परिच्छेद : माण्डूक्यकारिका में बौद्ध सन्दर्भ ४७-८०

१. गौडपाद का काल ४७

(अ) पतञ्जलि एवं गौडपाद ४८

(आ) गौडपाद एवं सांख्यकारिका ४९

२. गौडपाद-प्राक् वेदान्त साहित्य ५०

(अ) गौडपाद एवं उपनिषद् ५०

(आ) माण्डूक्यकारिका एवं ब्रह्मसूत्र ५२

३. गौडपाद का कृतित्व	५४
माण्डूक्यकारिका : कलेवर एवं प्रतिपाद्य	५५
४. गौडपाद का दर्शन	५५
(अ) अजातवाद	५५
(आ) ब्रह्म का स्वरूप	५७
(इ) जीव का स्वरूप	५८
(ई) जगत् का स्वरूप	५८
(उ) ब्रह्म-जीव सम्बन्ध	५९
(ऊ) आत्मज्ञान में समाधि की भूमिका	५९
५. माण्डूक्यकारिका में बौद्ध सन्दर्भ	५९
(अ) पारिभाषिक शब्द	६०
(आ) अन्य विवरण	६१
(इ) शैली	६२
६. प्रासङ्गिक अध्ययन एवं अनुसन्धान	६६
(अ) उपनिषद्, गौडपाद एवं बौद्ध दर्शन	६७
(आ) गौडपाद एवं माध्यमिक दर्शन	७०
(इ) गौडपाद एवं विज्ञानवाद	७२
७. समीक्षा	७८
चतुर्थ परिच्छेद : शारीरक भाष्य में बौद्ध सन्दर्भ	८१-१५९
१. आचार्य शङ्कर	८१
(अ) प्रादुर्भाव	८१
(आ) काल	८५
(इ) कृतित्व	८७
(ई) सिद्धान्त	८८
२. शारीरक भाष्य में बौद्ध पक्ष	९५
(अ) सन्दर्भ	९५
(आ) पूर्वपक्ष- सम्प्रदाय, पारिभाषिक शब्द, अवधारणाएँ	९५
(इ) युक्तियाँ	९९
३. विश्लेषण	१०८
(अ) सन्दर्भ	१०८
(आ) सुगत शब्द का प्रयोग	१०९

(इ) सर्ववैनाशिकता	११०
(ई) बौद्ध सम्प्रदायों का उल्लेखक्रम	११३
(उ) बौद्ध सम्प्रदायों में मत-वैभिन्य	११४
(ऊ) शून्यवाद के प्रति उपेक्षाभाव	११५
(ऋ) पारिभाषिक शब्दों की प्रचुरता एवं सार्थकता	११७
(ॠ) अवधारणाएँ- क्षणिकता, विज्ञान, शून्य	१२३
(ॡ) शङ्करपूर्व बौद्ध आचार्यों द्वारा सर्वास्तिवाद का खण्डन,	१३५
(ए) सर्वास्तिवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य	१३७
(ऐ) शङ्करपूर्व मीमांसकों द्वारा विज्ञानवाद का खण्डन	१४२
(ओ) विज्ञानवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य	१४३
(औ) शङ्करपूर्व मीमांसकों द्वारा शून्यवाद का खण्डन	१४८
(अं) शून्यवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य	१४८

४. समीक्षा

पञ्चम परिच्छेद : वैष्णव भाष्यों में बौद्ध सन्दर्भ १६०-१९७

१. प्रस्तावना	१६०
२. शङ्करोत्तर भारतीय दर्शन का परिदृश्य	१६१
(अ) शङ्कर मत के अनुयायी, लेखक एवं व्याख्याकार	१६२
(आ) प्रस्थानत्रयी की भाष्य-परम्परा में शङ्करोत्तर प्रधान आचार्य	१६४
(इ) शङ्करोत्तर वैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा	१६५
(ई) शङ्करोत्तर अवैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा	१६८
(उ) शङ्करोत्तर काश्मीर शैव दर्शन की चिन्तन-परम्परा	१७०
३. रामानुजाचार्य	
(अ) परिचय	१७१
(आ) ग्रन्थ व सिद्धान्त	१७१
(इ) बौद्ध पक्ष	१७१
पूर्वपक्ष एवं युक्तियाँ	१७२
पारिभाषिक शब्द	

४. निर्म्बार्काचार्य	१८१
(अ) परिचय	१८१
(आ) ग्रन्थ एवं सिद्धान्त	१८१
(इ) बौद्ध सन्दर्भ	१८२
पूर्वपक्ष	
पारिभाषिक शब्द	
युक्तियाँ	
५. मध्वाचार्य	१८४
(अ) परिचय	१८४
(आ) ग्रन्थ एवं सिद्धान्त	१८५
(इ) बौद्ध सन्दर्भ	१८६
पूर्वपक्ष	
पारिभाषिक शब्द	
युक्तियाँ	
६. वल्लभाचार्य	१८८
(अ) परिचय	१८८
(आ) ग्रन्थ एवं सिद्धान्त	१८९
(इ) बौद्ध सन्दर्भ	
पूर्वपक्ष	
पारिभाषिक शब्द	
युक्तियाँ	
७. समीक्षा	१९४
षष्ठ परिच्छेद : वेदान्त और बौद्ध : संवाद एवं प्रभाव १९८-२४७	
१. संवाद, शास्त्रार्थ और सन्दर्भ	१९८
२. भारतीय साहित्य, दर्शन और जीवन में वेदान्त का स्थान	२०२
३. भारतीय साहित्य, दर्शन और जीवन में बौद्ध विद्या का स्थान	२०३
४. वेदान्त और बुद्ध	२०६
(अ) उपनिषद् और बुद्ध	२०७
(आ) ब्रह्मसूत्रादि ग्रन्थों में बुद्ध	२१०
(इ) आधुनिक चिन्तन में वेदान्त और बुद्ध	२१२
५. ब्रह्मसूत्र और बौद्ध दर्शन	२१३

६. माण्डूक्यकारिका और बौद्ध दर्शन	२१४
७. शाङ्करभाष्य और बौद्ध दर्शन	२१६
८. वैष्णवभाष्यकार और बौद्ध दर्शन	२१६
(अ) पारिभाषिक शब्द	२२२
(आ) युक्तियाँ	२२३
(इ) दृष्टि शैली	२२४
९. आधुनिक चिन्तन में वेदान्त और बौद्ध दर्शन	२३०
(अ) साम्य-वैषम्य	२३१
(आ) सम्बन्ध, प्रभाव एवं योगदान	२३३
(इ) वेदान्त और शून्यवाद	२३६
(ई) समन्वय	२३८
१०. निष्कर्ष एवं उपसंहार	२३९
(अ) वेदान्त - बौद्ध : सामान्य	२३९
(आ) ब्रह्मसूत्र	२४०
(इ) माण्डूक्यकारिका	२४१
(ई) ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य	२४२
(उ) श्रीभाष्य	२४५
(ऊ) अन्य वैष्णव भाष्य	२४६

परिशिष्ट

२४८-२७९

१. ब्रह्मसूत्र एवं भाष्य-पञ्चक के बौद्ध विषयक सूत्रों में पाठभेद	२४८
२. भाष्य-पञ्चक में सूत्रानुसार उत्थापित बौद्ध समस्याएँ (पङ्क्तिरूप विस्तार सहित)	२५४
३. ब्रह्मसूत्र के भाष्यपञ्चक में समागत सलक्षण बौद्ध पारिभाषिक शब्द	२५९
४. वेदान्ताचार्यों द्वारा उल्लिखित सामान्य बौद्ध पारिभाषिक शब्द	२६१
५. वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन के काशीस्थ आधुनिक विद्वान् एवं उनसे साक्षात्कार में प्रयुक्त प्रश्नावली	२६६
६. ग्रन्थसूची	२६९

सङ्केत सूची

सङ्केत	तात्पर्य
अवेदा	= अद्वैत वेदान्त
अवेभू	= अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका
उप	= उपनिषद्
गीता	= भगवद्गीता
द्र	= द्रष्टव्य
निवेदा	= श्रीनिम्बार्क वेदान्त
ब्रवैअ	= ब्रह्मसूत्र के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन
ब्रसू	= ब्रह्मसूत्र
ब्रसूशाभा	= ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य
बौद्धध	= बौद्ध धर्म-दर्शन
बौद्धमी	= बौद्ध दर्शन-मीमांसा
बौवे	= बौद्ध और वेदान्त
बौवेका	= बौद्ध, वेदान्त और काश्मीर शैव दर्शन
भाद	= भारतीय दर्शन
भादस	= भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा
माण्डूउप	= माण्डूक्य उपनिषद्
माण्डूका	= माण्डूक्यकारिका
विद्र	= विस्तारार्थ द्रष्टव्य
वेदइ	= वेदान्त दर्शन का इतिहास
वेदा	= वेदान्त दर्शन
वैदिकसा	= वैदिक साहित्य का इतिहास
शाभा	= शाङ्करभाष्य
Heritage Shankar	= The Heritage of Shankar
History of Vedanta	= A History of Early Vedanta Philosophy
Lectures Vedanta	= Lectures on Vedanta.

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

11-11

प्रथम परिच्छेद

उपोद्घात

मानव-सभ्यता के उषः काल से ही सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई के रूप में देखने वाली तथा देश-काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर मानवमात्र के कल्याण की कामना करने वाली भारतीय संस्कृति अत्यन्त व्यापक एवं विविधताओं से परिपूर्ण है। धर्म, कला, इतिहास, ज्ञान, विज्ञान आदि की विभिन्न चिन्तनधाराएँ, भारतीय-संस्कृति को समृद्ध करती रही हैं किन्तु जिसने भारत की इन सांस्कृतिक उपलब्धियों के दिशा-निर्धारण का कार्य किया है, भारतीय जनमानस को **वसुधैव-कुटुम्बकम्** एवं **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की भावना से ओत-प्रोत किया है, वह है इसका दार्शनिक चिन्तन। दर्शन, भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व है। इसका उद्भव जीवन से होता है जो विभिन्न शाखाओं और सम्प्रदायों से होता हुआ पुनः जीवन के चरम में ही प्रवेश कर जाता है। दर्शन को जीवन का साधन मानने वाली भारतीय विचारधारा को स्वरूप और पद्धति के दृष्टि-भेद से मुख्यतया तीन परम्पराओं में विभक्त माना जा सकता है- वैदिक, आगमिक और श्रमण-परम्परा।

वैदिक परम्परा में षड्दर्शन- सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा (वेदान्त); श्रमण परम्परा में जैन व बौद्ध दर्शन तथा आगम-परम्परा, जिसे तान्त्रिक परम्परा के नाम से भी जाना जाता है, में शैव^१ व शाक्त दर्शनों^२ का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त चार्वाक^३ एक स्वतन्त्र विचारधारा है जो ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से प्रत्यक्षवाद, तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से भौतिकवाद और आचारमीमांसीय दृष्टि से सुखवाद का समर्थन करती है।

१. शैव दर्शन की आठ प्रमुख शाखाएँ हैं-

(क) पाशुपत द्वैतवाद, (ख) सिद्धान्त शैव द्वैतवाद, (ग) लकुलीश पाशुपत द्वैताद्वैतवाद, (घ) विशिष्टाद्वैत शैवमत, (ङ) विशेषाद्वैत अथवा वीर शैवमत, (च) नन्दिकेश्वर शैवमत, (छ) रसेश्वर शैव मत, (ज) अद्वैतवादी काश्मीरी शैवमत, विद्र-पाण्डे, कान्तिचन्द्र, भास्करी, पृ. ६.१०, २२६.

२. (a) विद्र- यदुवंशी, शैवमत, पृ. ११६.

(b) विद्र- कविराज, गोपीनाथ, तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त.

(c) Woodroffe, Sir John, **Sakti and Sakta**.

(d) Bhattacharya, Narendra Nath, **History of Sakta Religion**.

३. चार्वाक दर्शन के सिद्धान्तों के विशेष अध्ययन के लिए द्र- (a) झा, आचार्य आनन्द, चार्वाक दर्शन, (b) पाठक सर्वानन्द, चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा.

वैदिक विचारधारा को ब्राह्मण विचारधारा के नाम से भी अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण^१ शब्द से तात्पर्य यहाँ, ब्रह्म या आत्मा की प्रधानता से है। दूसरे शब्दों में कहें तो ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता- ब्रह्म एवं पिण्डाडण्ड की नियामक सत्ता- आत्मा की एकाकारता का प्रतिपादन करने वाली विचारधारा, ब्राह्मण विचारधारा के नाम से सम्बोधित की गई। यहाँ ब्राह्मण शब्द जातिबोधक नहीं है। वैदिक विचारधारा का सर्वोत्कृष्ट दर्शन-सम्प्रदाय वेदान्त माना जाता है।

ब्राह्मण अथवा वैदिक-परम्परा से भिन्न श्रमण-परम्परा है। श्रमण-परम्परा में वस्तुतः श्रम का प्राधान्य है तथा इसके अन्तर्गत जिन दो दर्शन सम्प्रदायों का समावेश होता है, वे जैन और बौद्ध दर्शन हैं। यद्यपि ये दोनों सम्प्रदाय धर्म से विकसित हुए हैं,^२ इनका प्रारम्भिक स्वरूप धार्मिक रहा है तथापि एक ही परम्परा की इन दोनों विचारधाराओं में पर्याप्त वैषम्य पाया जाता है।^३

इस त्रिविध परम्परा का आधारभूत साहित्य ही इसके वैशिष्ट्य का परिचायक है। वैदिक दर्शन-सम्प्रदायों का प्रधान आधार वेद-उप है। श्रमण-परम्परा बुद्ध और तीर्थंकरों- विशेषरूप से महावीर के वचनों की नींव पर खड़ी है तथा आगमिक परम्परा का आधार शैवागम, शाक्तागम एवं तान्त्रिक साहित्य है।

१. वेदान्त : आचार्य, साहित्य और सिद्धान्त

(अ) प्रस्थानत्रय

वेदान्त विचारधारा का मूल उप. में है, विकास गीता में पाया जाता है तथा व्यवस्थित प्रतिपादन ब्रसू में मिलता है। इन्हीं तीनों का व्यवस्थित नाम प्रस्थानत्रय^४ है। प्राप्त विवरण के अनुसार प्रस्थानत्रय के सर्वप्रथम भाष्यकार होने

१. (a) कृष्णकुमार, वैदिकसा, पृ. १८३-८४.

(b) Bebar, S.B.E., I.P. 1xx1, S.B.E., XII, Introduction, p. XXII.

२. धर्म से विकसित होने वाला एक अन्य दर्शन-सम्प्रदाय शैव भी है।

३. व्युत्पत्ति की दृष्टि से जैन शब्द जिन् धातु से बना है जिसका अर्थ है- जीतना। इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिन् वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो। दूसरी ओर बौद्ध दर्शन है जो शील और प्रबुद्धता पर बल देता है।

४. (a) विद्याप्रकारज्ञापनार्थत्वात् ज्ञापनाख्यो व्यापारः। न्यायदर्शन, वात्स्यायनभाष्य, पृ. २०.

(b) बी.एन.के. शर्मा ने अपने लेख 'The Vedantic Canon' में, रचनाकाल की दृष्टि से प्रस्थानत्रयी में संकलित ग्रन्थों का क्रमबद्ध स्वरूप उप, ब्रसू और गीता निर्धारित किया है। इनके मतानुसार चूँकि वेदान्तो नाम उपनिषद्प्रमाणम् वाक्य की प्रामाणिकता गीता के रचनाकाल तक सिद्ध नहीं हो पायी थी अतः महाभारत की रचना के बाद यह मान्यता चली कि इन तीनों ग्रन्थों को प्रस्थानत्रयी के नाम से संकलित किया जाय। इस लेख

का श्रेय आचार्य शङ्कर को दिया जाता है।

उपनिषद्

श्रुति-प्रस्थान के रूप में मान्यता-प्राप्त उप वैदिक वाङ्मय के अन्तिम भाग हैं। यद्यपि इनका सीधा सम्बन्ध वेद से है तथापि कुछ विद्वान् इन्हें ब्राह्मण-ग्रन्थों का आलोचना भाग भी मानते हैं।^१ उप की रचनाकारिता एवं कालक्रम के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्राचीन परम्परा यह मानती है कि वेद अपौरुषेय हैं। उसी प्रकार उप भी वेद के ही भाग होने के कारण अपौरुषेय हैं। इनका भी रचयिता कोई मनुष्य नहीं है। जैसे वैदिक सूक्तों के ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं उसी प्रकार उप वाङ्मय के द्रष्टा भी ऋषि ही हैं।^२

संख्या, रचनाक्रम एवं काल

उप की संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है।^३ उप की अधिकतम संख्या २२३ बताई जाती है। इनका विवरण उपनिषद्-वाक्य-महाकोश में मिलता है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण के उप अंक में २२० नाम प्राप्त होते हैं। मुक्तिकोपनिषद्^४ उप की संख्या १०८ बताता है। इसमें ऋग्वेद से सम्बद्ध १०, शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध ३२, कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध १०, सामवेद से सम्बद्ध १६ और अथर्ववेद से सम्बद्ध ३१ उपनिषद् हैं।

सभी उप की रचना एक समय में नहीं हुई है। रचनाक्रम की दृष्टि से इनमें कुछ प्राचीन तथा कुछ अर्वाचीन हैं। इस दृष्टि से ईषोपनिषद् को सबसे प्राचीन माना जाता है जो कि यजुर्वेद का ही एक भाग ४०वाँ अध्याय है। समय-क्रम की दृष्टि से इनके बाद केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य आते हैं। ततः बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय और ऐतरेय उप की गणना होती

में इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया है कि बौद्ध मत के त्रिपिटकों से प्रभावित होकर वेदान्ताचार्यों ने प्रस्थानत्रय की मान्यता प्रस्तुत की। *Lectures Vedanta*, p. 1-17.

(c) आंगिरस, रमाकान्त, शङ्कर वेदान्त : एक अनुशीलन, पृ. ९.

(d) गोस्वामी ललितकृष्ण, निवेदा, पृ. ७.

(e) Swami Buddhanand, *Selections from Swami Vivekanand*, p. 196.

१. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ७५.

२. द्र.- चतुर्वेदी, वासुदेवकृष्ण, ब्रजगी, पृ. ३५.

३. द्र.- पाठक, राममूर्ति, भादस, पृ. २८.

४. इस उप के श्रोता हनुमान् और वक्ता श्रीराम हैं। इसमें वेदान्त की महिमा का वर्णन है। चतुर्वेदी वासुदेवकृष्ण, ब्रजगी, पृ. ४५.

है। शङ्कराचार्य ने इनमें से १० उप को प्रधान मानकर उन पर अपना भाष्य लिखा है। अतः अनेक विचारक इन उप को अधिक महत्त्वपूर्ण, अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक मानते हैं। **मुक्तिकोपनिषद्** के अनुसार ये उप निम्न हैं-

ईश-केन-प्रश्न-मुण्ड-माण्डू-तित्तिरिः।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश।।

समालोचक पॉल डायसन ने रचनाक्रम को निर्धारित करने के लिए उप को चार वर्गों में विभक्त किया है- (i) प्राचीन गद्यात्मक उप, (ii) पद्यात्मक उप (iii) परवर्ती गद्यात्मक उप, (iv) परवर्ती अथर्ववेदी उप।^१ एस.पी.सेन ने उप के रचनाक्रम को तीन भागों में विभक्त किया है।^२

रचयिता, संख्या एवं रचनाक्रम की तरह ही उप के रचनाकाल की भी कोई एक निश्चित तिथि नहीं है। तथापि राधाकृष्णन्^३ के मतानुसार प्रारंभिक उप के निर्माणकाल को १००० ई.पू. से लेकर ३०० ई.पू. तक माना जा सकता है, कुछ परवर्ती उप जिन पर शङ्कर ने भाष्य लिखा है को बौद्ध काल के पीछे अर्थात् उनका निर्माणकाल लगभग ४०० या ३०० ई.पू. स्वीकार किया जाता है। अन्य विद्वान्^४ ने भी उप के रचनाकाल को ६०० ई.पू. के लगभग स्वीकार किया है। देवराज^५ ने बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, कौषितिक, केन, कठ, ईश, श्वेताश्वतर, मुण्डक, महानारायण, प्रश्न, मैत्रायणी और माण्डू इन १४ उप को अत्यन्त प्राचीन मानकर इन्हें गौतम बुद्ध के पूर्व का स्वीकार किया है। इन १४ उप में से एक **मैत्रायणी उप** है। बाल गंगाधर तिलक^६ ने इसका काल १२०० या १४०० ई.पू. निर्धारित किया है। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि परवर्ती उप के कालक्रम के विषय में विद्वानों में मतभेद व्याप्त है तथापि प्राचीन उप को सभी बुद्ध-पूर्व युग का स्वीकार करते हैं।

भारतीय विचारधारा के अनुसार उप का सर्वाधिक बल तत्त्वचिन्तन पर है। इनके अन्तर्गत यहाँ प्रधानरूप से आत्मतत्त्व का विवेचन किया गया है। इस

१. विद्र- **The Philosophy of the Upanishad**, p. 23.261.

२. **The Mystic Philosophy of the Upanishads**, p. 37.

३. भाद, पृ. ११४.

४. कृष्णकुमार, वैदिकसा, पृ. २०८.

५. भाद, पृ. ६१.

६. गीतारहस्य, पृ. ८७७-५७९, १०वाँ संस्करण.

विवेचन में चित्त की अवस्थाओं का विश्लेषण उप की अपनी विशिष्टता है।^१ आत्मा के विचार को उप (केनोपनिषद्, १.३ व बृहदारण्यक उप, ४.५.१५) में अनेक प्रकार से प्रतिपादित किया गया है। इस आत्मतत्त्व के विवेचन की दो प्रधान शैलियाँ उप में मिलती हैं। अन्वय विधि, आत्मा के अन्तर्यामी स्वरूप को प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार आत्मा सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वान्तर व सबका एकायन है। वह अणु से अणु तथा महान् से महान् है। वह मनुष्य के शरीर के भीतर ही नहीं उसके बाहर भी सर्वत्र व्यापक है। दूसरी शैली व्यतिरेक की है।^२ इसमें आत्मा का विवेचन नेति-नेति की रीति से किया जाता है। जो कुछ ज्ञेय है, जो कुछ मर्त्य है, जो कुछ अल्प है और जो कुछ चिन्त्य है, वह सब आत्मा नहीं है। आत्मा न चल है, न अचल; न स्थायी है, न क्षणिक; न सूक्ष्म है, न स्थूल। वह सभी द्वन्द्वों और कोटियों से परे है। अर्थात् वह निर्गुण, निराकार व निरुपाख्य ब्रह्म है। इस प्रकार उप में सत्ता अथवा चिन्तन की दोनों (आत्मपरक व विषयपरक) पद्धतियाँ क्रमशः आत्मा और ब्रह्म की सत्ता सिद्ध करती हैं। वस्तुतः आत्मा और ब्रह्म एक ही तत्त्व के दो नाम हैं।^३ उप के ऋषियों ने आत्मा और ब्रह्म की एकता का साक्षात् अनुभव किया है। इस अनुभव को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है- सोऽहमस्मि (कौषीतकि उप, १.६)। अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक उप, १/४/१०)।

१. (a) जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्गः।

एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुगवैश्वानरः प्रथमः पादः।। माण्डूउप १/३.

(b) स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः विविक्तभुक्तैजसो द्वितीय पादः।

वही, १/४.

(c) यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।

सुषुप्तस्थान-एकीभूतः प्रज्ञानधन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्त्रितीय पादः।।

वही, १/५.

(d) एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभावाप्ययौ हि भूतानाम्।।

वही, १/६.

(e) बौद्ध दर्शन के चार क्षेत्रों- काम, रूप, अरूप और लोकोत्तर का विभाग क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीय अवस्थाओं से अनुकूलता रखता है। राधाकृष्णन्, भाद-१, पृ. १३१.

२. नागार्जुन पर इसी का प्रभाव माना जा सकता है।

३. (a) छान्दोग्य उप में तत् त्वम् असि की व्याख्या करते हुए आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मा और ब्रह्म की एकता और अभिन्नता समझाई है।

(b) राधाकृष्णन्, उपनिषदों का संदेश, पृ. ७९-८०.

पाश्चात्य विचारधारा के मानदण्ड के अनुसार सृष्टि के उद्भव और विकास की समस्या उप के दार्शनिक विचारों का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है।^१ रानाडे^२ ने उप में उल्लिखित सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त^३ का सर्वेक्षण किया है। यह कहा जा सकता है कि उप के सभी सृष्टि-विज्ञान एक से विकसित हुए हैं, जिसे स्थूलता और सूक्ष्मता का क्रम कहा जा सकता है।^४ भौतिकवादी सिद्धान्त पहले, प्राणवादी सिद्धान्त उसके बाद और तत्पश्चात् ईश्वरवादी सिद्धान्त विकसित हुआ। सृष्टि-विज्ञान के इस विकास क्रम द्वारा उप के सभी सिद्धान्तों का समन्वय हो जाता है। ये सभी सिद्धान्त आत्मवाद की विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं।^५

इस पृष्ठभूमि में उप के दार्शनिक विचारों को दो वर्गों (तत्त्वचिन्तन व सृष्टि-प्रक्रिया) में विभाजित करने तथा उनका विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि आत्मा अर्थात् ब्रह्म के अलावा अन्य जो कुछ है वह नामरूपात्मक है व विकार है। तत्त्व तो एकमात्र सत्य आत्मा या ब्रह्म है जो सभी के मूल में स्थित है। किन्तु इस आत्मतत्त्व का तार्किक स्वरूप क्या है, इस विषय पर उप के विचारों में परस्पर साम्य और वैषम्य दोनों हैं।^६

भगवद्गीता

श्रुतियों अथवा उप के अनन्तर अद्वैतवाद का अनुसन्धान व प्रतिपादन करने वाली मौलिक रचनाएँ स्मृतियाँ हैं। वेदान्त की परम्परा में स्मार्तप्रस्थान के रूप में गीता^७ को मान्यता प्राप्त है। यह गीता महर्षि व्यास द्वारा रचित महाभारत

१. राधाकृष्णन् भाद-१, पृ. १२७.

२. A Constructive survey of Upanishadic Philosophy, p. 76-105.

३. बृहदारण्यक उप., ५/१; कठोपनिषद्, २/५; छान्दोग्य उप, १/९/१; वही, ३/१९/१/३; वही, ६/६/२/३; कौषीतकि उप, ३-९; श्वेताश्वतर उप, १/२.

४. देवराज, भाद, पृ. ७३.

५. राधाकृष्णन्, उपनिषदों का संदेश, पृ. ८०.

६. उप के विचार की निर्बलता इस विषय में है कि उक्त समन्वय की सिद्धि स्पष्ट तर्क द्वारा न की जाकर अर्न्तदृष्टि द्वारा की गई है। राधाकृष्णन्, भाद-१, पृ. २१६.

७. (a) द्र- गांधी, मो.क., गीता-बोध और मंगल-प्रभात.

(b) 'गोयनका, हरिकृष्णदास (अनुवाद), श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित.

(c) Besant, Annie and Das, Bhagavan, Bhagavad Gita (English Translation).

(d) Tilak, Bal Gangadhar, Srimad Bhagavadgita Rahasya or Karma-yoga-Sastra.

के भीष्म-पर्व का एक भाग है। अतः गीता के कालनिर्णय की समस्या महाभारत के काल-निर्णय से जुड़ी है। महाभारत के काल-निर्णय पर विद्वानों^१ ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार कर प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। अतः इस आधार पर गीता के प्रादुर्भाव-काल की कोई प्रामाणिक तिथि निर्धारित नहीं की जा सकी है। तथापि रमाशङ्कर त्रिपाठी के मतानुसार गीता की रचना ई.पू. ५०० वर्ष से पूर्व षष्ठ अथवा सप्तम में हुई, जबकि वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी^२ ने गीता के प्रादुर्भाव-काल को ईसा से ३००० वर्ष पूर्व स्वीकार किया है।

गीता के अनुसार परम तत्त्व अक्षरं ब्रह्म परमं (८/३)। अर्थात् ब्रह्म अविनाशी और अन्तिम तत्त्व है। उसका लक्षण बताते हुए उसमें कहा गया है अनादित्वाग्निगुणत्वात्परमात्मायमव्ययः (१३/३१)। अर्थात् अनादि और निर्गुण होने के कारण परमात्मा अव्यय है। वह आकाश की भाँति सूक्ष्म और सर्वव्यापक है (१३/३२)। यह समस्त जगत् त्रिगुणात्मक माया के द्वारा निर्मित है। इसलिए इस जगत् को मायामय ही समझना चाहिए। माया शक्ति विशिष्ट ब्रह्म ईश्वर है और जीव ईश्वर का ही अंश है। यहाँ अंश शब्द का अर्थ अंग भाग एवं देश है।^३ इस दृष्टि से गीता का जीव और ईश्वर का सिद्धान्त भी अद्वैतवाद का ही समर्थक है। दूसरे शब्दों में, गीता में ब्रह्म, परमात्मा व ईश्वर, एक ही परमतत्त्व के वाचक हैं और नानात्व मायाजनित, विनाशी, क्षर और पराश्रित है।

ब्रह्मसूत्र

न्याय-प्रस्थान के रूप में मान्यता प्राप्त ब्रसू^४ का वेदान्त के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्य दोनों प्रस्थानों की तरह ब्रसू का काल भी निर्विवाद नहीं है। विचारकों^५ ने इसके काल के सम्बन्ध में जो मत प्रस्तुत किए हैं उनके

१. द्र- रमाशंकर, संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, पृ. ३७-३८.
२. ब्रउगी, पृ. ७५.
३. अविद्याकृतोपाधिपरिछिन्न एकदेश अंशद्वयकल्पितो यतः। शाभा, गीता, १५.७.
४. ब्रसू के कलेवर, रचनाकार, सिद्धान्त आदि का विवरण आगे प्रस्तुत किया जाएगा।
५. काल-विषयक विवाद के लिए द्र-
 - (a) शास्त्री, उदयवीर, वेदङ्ग, पृ. ११४-११५.
 - (b) Maxmullar, *Six Systems of Indian Philosophy*, p. 113.
 - (c) Frazer, *Literary History of India*, p. 196.
 - (d) Hajime, Nakamura, *History of Vedanta*, p. 436.

आधार पर इसकी पूर्व सीमा उप से परवर्ती तथा उत्तर सीमा ४००-४५० शती स्वीकार की जाती है।

उप के विचारों को संकलित करके ब्रह्मसूत्रकार ने, सूत्रबद्ध रूप में उन्हें ब्रसू के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसलिए ब्रसू का भी प्रधान प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है।

ब्रह्मसूत्रकार के मतानुसार जीव अनेक हैं; किन्तु ब्रह्म से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। सूत्रकार, ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध की व्याख्या आनन्द नामक तत्त्व से करते हैं तथा जीवात्मा व आनन्दमय ब्रह्म में भेद स्पष्ट करने के लिए तैत्तिरीय उप का मन्तव्य उद्धृत करते हैं- रसो वै सः। रसं होवायं लब्ध्वानन्दी भवति। जीवात्मा आनन्द का लब्धा है और ब्रह्म लब्धव्य है। पुनः तैत्तिरीय उप का उल्लेख करते हुए ब्रह्म को आनन्द देने वाला बताया है; जीवात्मा तो ब्रह्म का साक्षात्कार कर उसके एक अंश मात्र का उपभोग कर पाता है। इस प्रकार यह स्थिति न सिर्फ जीवात्मा और ब्रह्म के भेद को स्पष्ट करती है^१ बल्कि अंश-अंशीरूप इनके सम्बन्ध के विषय में भेदाभेद का सिद्धान्त भी प्रतिपादित करती है।

(आ) आचार्य गौडपाद

उपनिषद्कार मनीषियों के पश्चात् उप की ऐकेश्वरवादी विचारधारा का निरूपण आचार्य गौडपाद ने ही सर्वप्रथम किया। आचार्य ने माण्डूउप पर कारिका लिखकर भाष्य प्रस्तुत किया है, जो माण्डूका के नाम से प्रसिद्ध है। इन कारिकाओं में गौडपाद ने विस्तार सहित यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि परमतत्त्व अद्वैत क्यों और कैसे है।^२ यह रचना अद्वैत सिद्धान्त का प्रथम निबन्ध कहलाती है। इसमें परम तत्त्व की सत्यता का प्रतिपादन व जगत् तथा जीव के नानात्व का निषेध किया गया है।

१. ब्रसू १/२/४; १/३/४-५; २/१/२२; २/३/१७-१८; २/३/४६; ४/४/१७ इत्यादि।

२. (a) वही, २/३/४३.

(b) Hajime, Nakamura, *History of Vedanta*, p. 500.

३. माण्डूका का परिचय व उसमें प्रतिपादित गौडपाद के विचारों का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

गौडपाद, माण्डूका (३/३-९, १३, १४) में ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध का विवेचन (अर्थात् अजातवाद की स्थापना) आकाश व घटाकाश के दृष्टान्त के आधार पर करते हैं। उनके मतानुसार परमात्मा आकाश के समान सूक्ष्म, निरवयव और सर्वव्यापक है। किन्तु माया के प्रभाव से जिस प्रकार महाकाश घट आदि उपाधियों के द्वारा घटाकाश के रूप में अवच्छिन्न हुआ-सा जान पड़ता है; उसी प्रकार शरीरादि उपाधियों के सम्पर्क से परब्रह्म ही भिन्न-भिन्न रूपों में जीव-भाव को प्रादुर्भूत हुआ-सा आभासित होता है। व्यवहार की इस मिथ्या दृष्टि का विनाश हो जाने पर, उपाधिरूप घट अथवा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप (अद्वैत रूप) का ज्ञान हो जाता है। आशय यह है कि तत्त्वतः स्वरूप से अज ब्रह्म की जीव के रूप में न तो उत्पत्ति होती है और न ही उसका विलय। जीव व ब्रह्म में परमार्थतः अभेद का सम्बन्ध है।

(इ) ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार

वेदान्त दर्शन का मौलिक सम्बन्ध उप से है, तो भी एक व्यवस्थित दर्शन के रूप में उसका प्रारम्भ ब्रसू से ही हुआ है। अपनी असाधारण विशेषताओं के कारण यह ग्रन्थ अपने रचनाकाल से ही अध्ययन, अध्यापन व चर्चा का विषय बना हुआ है, पूर्वाचार्यों ने इसके ऊपर वृत्ति, वार्त्तिक और भाष्य लिखे, जिनके ऊपर पुनः अनेक व्याख्यान, अनुव्याख्यान तथा साररूप में विविध प्रकरण-ग्रन्थ प्रस्तुत हुए हैं।

यद्यपि आज ब्रसूशाभा से पूर्ववर्ती कोई भी ब्रसू-सम्बन्धी भाष्य आदि ग्रन्थ प्राप्त नहीं है, तथापि स्वयं शङ्कर एवं अन्य आचार्यों के साक्ष्य से यह ज्ञात होता है कि शङ्कर से पूर्व भी ब्रसू पर ग्रन्थ लिखे गये थे।^१ ब्रसूशाभा (३/३/५३) के निर्देश से स्पष्ट है कि शङ्कर के पूर्व भगवान् उपवर्ष ने दोनों मीमांसाओं पर अपने व्याख्यान प्रस्तुत किए थे। इसके अतिरिक्त रामानुज ने अपने श्रीभाष्य (२/१/१४) में द्रविडभाष्यकार का भी निर्देश एक उद्धरण के साथ किया है। अतः स्पष्ट है कि आचार्य द्रविड भी ब्रसू के एक भाष्यकार थे। उक्त आचार्यों के अतिरिक्त विभिन्न ग्रन्थों में टंक, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी आदि प्राचीन वेदान्ताचार्यों के नाम और इनमें से किसी-किसी के उद्धरण और सिद्धान्त प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा भाष्य-रूप में लिखे गए ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध भाष्यों में दस प्रमुख भाष्य हैं-

१. द्र- शर्मा, राममूर्ति, अवेदा, अध्याय-३ (अद्वैतवाद का व्यवस्थित इतिहास)।

	भाष्यकार	भाष्य	सिद्धान्त
I	शङ्कर	ब्रसूशाभा	अद्वैत
II	भास्कर	भास्करभाष्य	औपाधिक भेदाभेद
III	रामानुज	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
IV	निम्बार्क	वेदान्तपारिजातसौरभ	स्वाभाविक भेदाभेद
V	मध्वाचार्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	द्वैत
VI	श्रीकण्ठ	शैवभाष्य	शैवविशिष्टाद्वैत
VII	श्रीपति	श्रीकरभाष्य	वीरशैवविशेषाद्वैत
VIII	वल्लभ	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत
IX	विज्ञानभिक्षु	विज्ञानामृतभाष्य	अविभागाद्वैत
X	बलदेव	गोविन्दभाष्य	अचिन्त्यभेदाभेद

उक्त भाष्यों के अतिरिक्त अन्य भाष्य भी उपलब्ध होते हैं। एक **शुकभाष्य** (सन् १५५०) का परिचय **श्रीकरभाष्य** की भूमिका में ह्यवदन राय ने दिया है। रामानन्द सम्प्रदाय के दो **ब्रसू-भाष्य**, **आनन्दभाष्य**^१ और **जानकीभाष्य**- मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं। आर्यसमाज सिद्धान्त आर्यमुनि द्वारा रचित **वेदान्तदर्शन भाष्य** के प्रकाशन की सूचना भी मिलती है। अद्यतन के भाष्यों में पञ्चानन तर्करत्न ने **शक्तिभाष्य**^२ और भगवदाचार्य ने **वैदिकभाष्य** (केवल प्रथमाध्याय) प्रस्तुत किये हैं।

वेदान्त के साहित्य के इस संक्षिप्त अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिक साहित्य के इतिहास में वेदान्त नाम से जिस विकसित विचार की चर्चा मिलती है उसे एक सम्प्रदाय के अन्तर्गत समाहित नहीं किया जा सकता। अतः विचारों के आधार पर विचारकों ने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का सूत्रपात किया है।

आचार्य शङ्कर

गौडपाद द्वारा प्रस्तुत अद्वैतवादी पृष्ठभूमि में शङ्कराचार्य भी अद्वैतवाद की स्थापना करते हैं। शङ्कर के अनुसार अद्वैत का तात्पर्य है- एकमात्र ब्रह्म की

१. द्र.- (a) आनन्दभाष्यम्, स्वामिश्रीरघुवरदास वेदान्ती द्वारा परिशोधित एवं श्रीरामानन्दीय वैष्णव महामण्डल अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, १९२९.
(b) श्री आनन्दभाष्यम्, भाष्यदीप, प्रकाश सहित, आचार्य पीठ, अहमदाबाद, १९९६.
२. द्र.- कमलेश, सुशीला, ब्रसू पर प्रणीत शक्तिभाष्य का अध्ययन.

सत्ता का प्रतिपादन। अथवा ब्रह्म से पृथक् जीवात्मा एवं जगत् आदि की स्वतन्त्र सत्ता का निषेध। उनके अनुसार यद्यपि ब्रह्म सत्य और अनंत ज्ञान स्वरूप है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्तिरीयउप, २) तथापि माया के प्रभाव से यह शुद्ध चैतन्य उपाधिरूप में जीव-भाव को प्राप्त हुआ-सा प्रतीत होता है- **स्थानौ पुरुषवद् भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता, (आत्मबोध, पृ. ४५)**। किन्तु सम्यक् ज्ञान के पश्चात् मिथ्या दृष्टि का नाश होने पर जीव को अपने वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मरूप) का ज्ञान हो जाता है। यह मुक्ति या मोक्ष है। दूसरे शब्दों में शङ्कर के अनुसार ब्रह्म व जीव में परमार्थतः अभेद है।

आचार्य रामानुज

रामानुजाचार्य ने भी अद्वैत को स्वीकार किया है। शाङ्कर मत से भिन्न, रामानुज, ब्रह्म के अतिरिक्त दो अन्य सत्ताएँ भी स्वीकार करते हैं- जीवात्मा अथवा चित् व जड़ अथवा अचित्। उनके अनुसार एक ही ब्रह्म में जीव तथा अचेतन प्रकृति विशेषणरूप से विद्यमान है। अतः अनेक विशेषण विशिष्ट एक ब्रह्म को मानने के कारण, इनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है।^१

आचार्य मध्व

अन्य वैष्णव वेदान्त-सम्प्रदायों के समान मध्वाचार्य^२ का द्वैतवाद शङ्कर के विरोध में सविशेष ब्रह्मवाद, परिणामवाद, जगत्सत्यत्व, भक्तिवाद आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है तथा कुछ अंशों में वैष्णवों अथवा वेदान्त की परम्परा से हटकर द्वैतवाद या आत्यन्तिक भेदभाव का समर्थन करता है। मध्व का वस्तुवादी द्वैतवाद, ईश्वर, जीवों और जगत् की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार करता है। उन्होंने द्वैत को सत्य मानते हुए यह बताया है कि- जो स्वरूपतः भिन्न होता है वह अभिन्न नहीं हो सकता। ब्रह्म, जीव और प्रकृति स्वरूपतः भिन्न हैं, अतः इनमें अभेद नहीं हो सकता। जीव से ब्रह्म का अभेद बताने वाले श्रुतिवचन, **तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति** इत्यादि का तात्पर्य यह नहीं है कि संसार में जीव भिन्न रहता हुआ भी मुक्त होकर, ब्रह्म से अभिन्न होकर, उसी में विलीन हो जाता है। अपितु

१. विशिष्टाद्वैत का शाब्दिक अर्थ है- विशिष्टयोरद्वैतम् अर्थात् विशिष्ट कारण और विशिष्ट कार्य की एकता। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारण है तथा स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कार्य। आचार्य, रामकृष्ण, **ब्रवैअ**, पृ. ३४.

२. द्र- चतुर्वेदी, कृष्णकान्त, **द्वैतवेदान्त का तात्त्विक अनुशीलन**.

उसका तात्पर्य यह है कि जीव तात्त्विक स्वतन्त्रता रखता है तथा स्वरूपतः ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी सत्ता और प्रतीति के लिए ब्रह्म के अधीन होता है।^१ इस प्रकार मध्व के द्वैतवाद में ब्रह्म और जीव के आत्यन्तिक भेद को स्वीकार किया गया है।

आचार्य निम्बार्क

निम्बार्क का वेदान्त स्वाभाविक भेदाभेद या स्वाभाविक द्वैताद्वैत कहलाता है। इसके अनुसार ब्रह्म, जीव और जड़ परस्पर स्वरूपतः भिन्न हैं और साथ ही जीव और जड़ अपने स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति में ब्रह्मायत्त होने से ब्रह्म से अभिन्न भी हैं। इस प्रकार ब्रह्म से जीव और जड़ का भेद और अभेद स्वाभाविक है, जो समान स्तर पर मान्य है।

आचार्य वल्लभ

वल्लभ का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है। इसका अर्थ है- शुद्धं च तदद्वैतम् अर्थात् माया सम्बन्धरहित ब्रह्म का अद्वैत। एक अन्य तात्पर्य यह है- शुद्धयोरद्वैतम्- अर्थात् माया सम्बन्ध-रहित ब्रह्म और जगत् का अद्वैत। इस सिद्धान्त के अनुसार एकमात्र तत्त्व ब्रह्म है और जड़जीवात्मक जगद्रूप कार्य भी ब्रह्म है, अतः दोनों में सीधा अद्वैत है। ब्रह्म, जीव-भाव को किसी अविद्या या उपाधि के कारण प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु अपनी इच्छा से हुआ है, अपनी इच्छा से ही वह जड़ जगत् के रूप में है। दूसरे शब्दों में, सच्चिदानन्द ब्रह्म ने अपने जिस अंश में आनन्द के साथ चित् का भी तिरोभाव कर दिया है वही अंश जीव है और अपने जिस अंश में आनन्द के साथ चित्त का भी तिरोभाव कर दिया है वह जड़त्व है। ब्रह्म जब चाहे तब जीव और जड़ में तिरोहित गुणों का आविर्भाव कर सकता है और इस प्रकार चिदंश और सदंश पुनः सच्चिदानन्द हो जाते हैं। इस प्रकार एकमात्र तत्त्व सच्चिदानन्द ब्रह्म आविर्भाव दशा में कारण और तिरोभाव दशा में कार्य है, यहाँ कारण और कार्य में शुद्धाद्वैत है।^२

१. स्वनियतसत्ता शक्त्यादिमद्भिरेव कारणैः इदं जगत्सदा करोति। उदयनाचार्य, न्याय कुसुमाञ्जलि, पृ. २९९.

२. माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।

कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्।। गिरिधर, गोस्वामी, शुद्धाद्वैतमार्तण्ड.

(ई) परवर्ती टीकाकार आदि

वेदान्त के आधार पर ग्रन्थों की व्याख्या, भाष्य, टीका, प्रटीकाएँ, अनुवाद आदि लिखने तथा अन्य सम्प्रदायों से उसका तुलनात्मक विवेचन करने अथवा परस्पर खण्डन-मण्डन करने का क्रम, अद्यावधि निर्बाध प्रगति पर है। अद्वैत आदि पाँच प्रधान सम्प्रदायों के बाद भी अनेक अवान्तर सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ है और हो रहा है तथा सम्प्रदाय विशेष के आचार्यों द्वारा टीका-प्रटीका आदि के रूप में लिखे गये साहित्य भी वेदान्त-वाङ्मय में श्रीवृद्धि कर रहे हैं। इस क्रम में सदानन्द (१६वीं शती) का वेदान्तसार, रामतीर्थ (१७वीं शती का पूर्वार्द्ध) की संक्षेपशारीरक पर अन्वयार्थ प्रकाशिका, वेदान्तसार पर विद्वन्मनोरञ्जनी टीका, महादेव सरस्वती (१८वीं शती) द्वारा तत्त्वानुसन्धान ग्रन्थ की रचना तथा इस पर अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ नामक टीका आदि उल्लेखनीय हैं।

(उ) आधुनिक चिन्तक

प्राचीन मान्यता के अनुसार वेदान्त का तात्पर्य उस दार्शनिक चिन्तन से था जो तात्त्विक विवेचना में प्रस्थानत्रयी को आधार मानकर द्वैत का निरसन कर अद्वैत की स्थापना करता है। परन्तु १९वीं-२०वीं शताब्दी के आधुनिक विचारकों ने वेदान्त को व्यक्ति, जाति, देश, धर्म, सम्प्रदाय आदि समस्त आबद्ध करने वाले तत्त्वों से दूर हटा कर सार्वभौम व सर्वग्राही बना दिया। उन्होंने आधुनिक विश्व व जीवन के सन्दर्भ में वेदान्त की व्यावहारिक व्याख्याएँ कीं। उनका विश्वास था कि विश्व की वर्तमान समस्याओं का समाधान-चाहे वे आर्थिक हों या राजनीतिक, रंगभेद से जन्मी हों या साम्प्रदायिक कड़ुरता से, वेदान्त के व्यावहारिक प्रयोग द्वारा ही संभव है।^१ इस क्रम में विशेषरूप से उल्लेखनीय नाम हैं- मधुसूदन सरस्वती,^२ स्वामी विवेकानन्द,^३ विनोबाभावे,^४ राधाकृष्णन्^५ आदि। यहाँ पर केवल तीन पर टिप्पणी द्रष्टव्य है।

१. वेदान्त, काल और देश की सीमाओं को तोड़कर मानव मात्र में ही नहीं, प्राणिमात्र में समत्व व एकत्व बुद्धि जागृत करता है। इस दृष्टि से वेदान्त जीवित और व्यावहारिक सिद्धान्त है। शेखावत, महेन्द्र, आधुनिक चिन्तन में वेदान्त, पृ. ७-८ (प्राक्कथन)।
२. द्र.- पुस्तकें (a) गीता, गूढार्थदीपिका संस्कृत टीका युक्त, (b) सिद्धान्तबिन्दु, (c) अद्वैतसिद्धि, (d) आत्मबोध टीका, (e) वेदान्तकल्पलतिका, (f) महिमस्तोत्रव्याख्या।
३. द्र. पुस्तकें- (a) *Practical Vedanta*, (b) *Complete works of Swami Vivekanand*, Vol. 1-8, (c) *Thoughts on Vedanta*.
४. द्र. पुस्तकें- (a) भूदान- गंगा- 1, 11 (b) आत्मज्ञान विज्ञान (c) गीता- प्रवचन.
५. द्र. पुस्तकें- (a) *An Idealistic View of Life* (b) *Indian Philosophy* -I, II.

स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द ने शङ्कराचार्य के अद्वैत वेदान्त को बुद्धिगम्य, वैज्ञानिक एवं प्रेरणादायक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार इस उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त वेदान्त के उदात्त विचारों को शास्त्रीयता के उस बन्धन से मुक्त करना होगा, जो उन्हें सदियों से जकड़े हुए है।^१ उनका मत है कि सामान्य जनता में वेदान्त के अमूर्त दार्शनिक सिद्धान्तों को समझने की क्षमता उतनी कम नहीं है, जितनी साधारणतः समझी जाती है।^२ अद्वैत-वेदान्त के प्रमुख सिद्धान्त मायावाद के विषय में प्रचलित भ्रान्तियों को दूर करने में इनका बहुत योगदान रहा है। वह कहते हैं कि माया शब्द का अर्थ यह नहीं है कि जगत् शुद्ध भ्रम है, बल्कि यह कि वह अन्तर्विरोधों से परिपूर्ण है एवं इसी हद तक उसे अयथार्थ या भ्रम कहा जा सकता है।^३ पलायन द्वारा मुक्ति का सिद्धान्त भी विवेकानन्द को सर्वथा अप्रिय है।^४ आशय यह है कि स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाएँ मानवतावादी तथा क्रियावादी हैं।^५ जिन्हें वे क्रियावाद की स्थापना का हेतु बताकर, वेदान्त की सकारात्मक व्याख्या करने में लगाते हैं।^६

आचार्य विनोबा भावे

विनोबा भावे का दार्शनिक सिद्धान्त सर्वोदय दर्शन है। सर्वोदय दर्शन का मूलाधार सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु का भाव है। दादा धर्माधिकारी ने सर्वोदय के आशय को प्रकट करते हुए कहा है कि- एक साथ, समानरूप से सबका उदय हो, यही सर्वोदय का उद्देश्य है।^७ विनोबा भावे ने अद्वैत दर्शन को पूर्णतया व्यावहारिक दर्शन का रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। शङ्कर के समान विनोबा भी ब्रह्म को सर्वोच्च तत्त्व मानते हैं। इनके मतानुसार ब्रह्म शब्द का अर्थ व्यापक एवं विशाल है।^८ अद्वैत वेदान्त की ब्रह्मरूपता को स्पष्ट करते

१. विवेकानन्द का कर्मयोग पर व्याख्यान, रोम्याँ रोला द्वारा उद्धृत, **Life of Vivekanand**, p. 219.
२. विवेकानन्द का **Mision of the Vedanta** पर व्याख्यान।
३. **Vivekanand, Selected Works**, p. 105.
४. देवराज, भाद, पृ. २४९.
५. वही, पृ. ६४९.
६. (a) **Vivekanand, Practical Vedanta-1**.
(b) आज वेदान्त को धर्म के समान मनुष्य के जीवन की समस्याओं को सुलझाना पड़ेगा, उसे व्यावहारिक बनाना पड़ेगा। **The Complete works of Swami Vivekanand**, Vol.-II, p. 291.
७. सर्वोदय दर्शन, पृ. २३.
८. विनोबा, स्थितप्रज्ञ दर्शन, पृ. १६५.

हुए विनोबा का कथन है कि संकुचित जीवन को छोड़कर ब्रह्मरूप होना ही मनुष्य का ध्येय है। विनोबा, जीवन्मुक्ति के पक्षधर हैं। इनके मतानुसार ब्राह्मी स्थिति अथवा ब्रह्मलोक का तात्पर्य साम्यावस्था है। इस साम्ययोग सिद्धान्त के विचारानुसार सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा स्थित है। अतः मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं है। यहाँ तक कि मनुष्य और दूसरे पशुओं में भी आत्मिक दृष्टि से भेद नहीं है। यह विचार ही उनका अद्वैतवादी विचार है। इस प्रकार साम्ययोग के अन्तर्गत विनोबा ने आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक सभी क्षेत्रों में साम्य के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की तथा समस्त संसार को अद्वैतरूप बनाने का संकल्प किया।^१

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

भारतीय धर्म और दर्शन के आधुनिक व्याख्याकारों में सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का नाम भी उल्लेखनीय है। भारतीय दार्शनिक विचारों से पश्चिम को परिचित कराने में उनका योगदान अद्वितीय है।^२ वे अपनी प्रौढ़ शैली के लिए भी विख्यात हैं।^३ उनके ग्रन्थों में यद्यपि भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के इतिहास और सिद्धान्त पर विस्तृत और गंभीर विवेचना मिलती है तथापि यह दृष्टि-निरपेक्ष नहीं है। इतिहास और सिद्धान्त को देखने, परखने और उसकी व्याख्या करने की उनकी अपनी विशेष दृष्टि रही है।^४ उनके ग्रन्थों में बौद्ध और वेदान्त पर प्रचुर सामग्री

१. द्र- विनोबा का लेख, हमारा मिशन कुल दुनिया को अद्वैत बनाना है। भूदानयज्ञ (साप्ताहिक) १३ मार्च, १९६५.
२. **An Idealistic View of Life** को बहुत लोग आधुनिक चिन्तन में राधाकृष्णन् का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान मानते हैं। इसमें उनके दृष्टिकोण में संयम है और प्रस्तुतीकरण जितना विदग्ध है उतना ही सन्तुलित भी। नरवणे, विश्वनाथ, आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृ. २६८.
३. राधाकृष्णन् की गणना दर्शन के इतिहास में महानतम शैलीकारों में होगी और उन्हें शैलिंग, शापनहावर और बर्गसों के साथ उन लोगों की कोटि में रखा जा सकता है जिन्होंने दार्शनिक गद्य को सृजनात्मक स्तर तक उठा दिया है। वही, पृ. २६२.
४. (a) **The rain of Religion** का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि तर्कना के आधार पर निरपेक्ष आदर्शवाद अपरिहार्य है और बहुत से आधुनिक पाश्चात्य चिन्तक अपने धर्मपरक पूर्वाग्रहों के कारण ही निरपेक्ष-विरोधी मान्यताओं से चिपके हैं।, वही, पृ. २६०.
 (b) राधाकृष्णन् धर्म को दर्शन में विघ्नकारी तत्त्व बताते हैं। वे कहते हैं- धर्म-व्यवस्था दार्शनिक अध्ययन का एक छोर अवश्य है पर उसको अध्ययन में नियामक नहीं होना चाहिए। यह धर्म या दर्शन दोनों में से किसी के भी भविष्य के लिए शुभ नहीं है कि धर्म ही दर्शन का प्रारम्भ बिन्दु और प्रधान उद्देश्य बन जाए। नरवणे, विश्वनाथ, आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृ. २६६-६७.
 (c) राधाकृष्णन् ने स्वीकार किया है कि उनका धर्म को दर्शन से पृथक् करने का प्रयास अतिमहत्वाकांक्षी था। वही, पृ. २६६.
 (d) सिंह, जयदेव, समकालीन दर्शन, पृ. १६३-१६९.
 (e) Sharma Nilima, *Twentieth Century Indian Philosophy*, p. 205-249.

मिलती है किन्तु अध्येताओं ने उनको वेदान्त के ही सर्वाधिक निकट माना है। वेदान्त के प्रति उनका झुकाव पूर्वाग्रह से प्रेरित या परम्परागत नहीं था।^१ इसलिए उनकी वेदान्त- व्याख्या से वेदान्त के सभी आचार्य सहमत रखें- यह आवश्यक नहीं है।^२ इसमें अस्वाभाविकता भी कुछ नहीं मानी जानी चाहिए क्योंकि स्वयं वेदान्त का विकास आन्तरिक मतभेदों का एक निदर्शन है।

२. बौद्ध दर्शन : प्रादुर्भाव एवं सम्प्रदाय

(अ) प्रादुर्भाव

प्रागैतिहासिक काल से भारत, नाना जातियों और संस्कृतियों का आश्रय-स्थल रहा है। उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों तथा जीवन-विधाओं के संघर्ष और समन्वय के द्वारा भारतीय इतिहास की प्रगति और संस्कृति का विकास हुआ है। इस विकास में आर्य और आर्येतर जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि आर्यों ने पूर्ववर्तिनी आर्येतर सभ्यता को ध्वस्त कर अपनी विशिष्ट भाषा, धर्म और समाज को भारत में प्रतिष्ठित किया था तथापि सिन्धु-संस्कृति के अनेक तत्त्व परवर्ती आर्य-सभ्यता में अङ्गीकृत हुए। आर्य व आर्येतर सांस्कृतिक परम्पराओं के इस समन्वय के परिणामस्वरूप जो बौद्धिक एवम् आध्यात्मिक आन्दोलन हुए, उनका चरम परिणाम बौद्ध धर्म का अभ्युदय था।^३

विशुद्धरूप से भगवान् बुद्ध^४ की देशना पर आधारित बौद्ध-धर्म, बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् नाना सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।^५ इस विभाजन का

१. राधाकृष्णन् अद्वैत-वेदान्त के प्रति अपने झुकाव को छिपाते नहीं हैं, पर वह दूसरी पद्धतियों के सकारात्मक तत्त्वों को तुरन्त पहिचानने में समर्थ हैं। नरवणे, विश्वनाथ, आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृ. २६७.
२. अद्वैत वेदान्त उनकी मान्यताओं के सबसे समीप है, पर वेदान्त की उनकी व्याख्या इतनी लचीली है कि शङ्कराचार्य के कट्टर अनुयायी को उसमें बहुत से दोष दिखाई देंगे। वही, पृ. २६५.
३. Pandey, Govind Chandra, *Studies the origins of Buddhism*, Chapter 8.
४. (a) वि- Oldenberg, Herman, *Buddha: His Life, His doctrine, His Order*.
(b) Albers, A Christina, *Life of Buddha*.
(c) आचार्य चतुरसेन, बुद्ध और बौद्ध धर्म.
(d) कौसाम्बी, धर्मानन्द, भगवान् बुद्ध (जीवन और दर्शन).
(e) दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, अमिताभ बुद्ध.
५. (a) चुल्लवाग के अनुसार निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् बुद्ध संघ में भेद हुआ। देव, नरेन्द्र, बौद्धध, पृ. ३५.

एक महत्त्वपूर्ण आधार स्वयं बुद्ध की देशना थी। वस्तुतः जिस समय बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय तत्कालीन मानव-समाज वैदिक कर्मकाण्डों व चिन्तन-मनन द्वारा तत्त्वशास्त्र की समस्याओं को सुलझाने में निमग्न था। भगवान् बुद्ध ने धर्म-अधर्म में पड़े मनुष्यों को शास्त्रवाद के चक्रव्यूह से निकालकर नीतिशास्त्र अथवा आचारशास्त्र का मार्ग दिखलाया। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं- (i) सर्वमनित्यम् (चार आर्यसत्य), (ii) सर्वमनात्मम्, (iii) निर्वाण। ये प्रधानतः व्यावहारिक थे। इनका एकमात्र उद्देश्य मानवमात्र को दुःखों से मुक्ति दिलाना था। दूसरे शब्दों में, आचारशास्त्र, मनोविज्ञान एवं तर्कशास्त्र-सम्मत बुद्ध की शिक्षाओं में तत्त्वदर्शन के प्रति मौन था। किन्तु कालान्तर में बुद्ध के अनुयायियों में सत्ता-सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर विवाद हो गया। परिणामस्वरूप बुद्ध की धार्मिक शिक्षाओं की समयानुसार विभिन्न तत्त्वमीमांसीय व्याख्याएँ हुईं और मूल बुद्ध-धर्म, विशुद्ध बौद्ध दर्शन में परिणत हो गया।

(आ) सम्प्रदाय

उपर्युक्त ऐतिहासिक अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कालान्तर में बौद्ध धर्म-दर्शन के कुल अठारह सम्प्रदाय हो गए थे, लेकिन विरोधियों के तर्क व प्रहारों के कारण इनमें से केवल चार सम्प्रदाय ही प्रधान रहे- (i) वैभाषिक, (ii) सौत्रान्तिक, (iii) माध्यमिक शून्यवाद, (iv) योगाचार विज्ञानवाद। पूर्व दो हीनयान से एवं शेष दो महायान से सम्बद्ध हैं।

वैभाषिक सम्प्रदाय का प्राचीन नाम सर्वास्तिवाद था। कनिष्क के समय (विक्रम की द्वितीय शती) बौद्ध भिक्षुओं की जो चतुर्थ संगीति हुई थी, उसमें इस सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थ आर्य कात्यायनी पुत्र रचित ज्ञानप्रस्थानशास्त्र के ऊपर एक विपुलकाय प्रामाणिक टीका लिखी गई, जो विभाषा के नाम से प्रसिद्ध है। इसी ग्रन्थ को सर्वापेक्षा अधिक मान्यता प्रदान करने के कारण द्वितीय शतक के अनन्तर इस सम्प्रदाय को वैभाषिक की संज्ञा से अभिहित किया गया।^१ वैभाषिकों

- (b) वसुमित्र कृत, अष्टादश-निकाय शास्त्र में १८ निकायों के सिद्धान्तों का विशद वर्णन है। उपाध्याय, बलदेव, बौद्धमी, पृ. ८३.
- (c) कथावस्तु की अट्ठकथा के अनुसार १८ निकायों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- महासंघिक, स्थविरवाद, गोकुलिकी, एकव्यावहारिक, प्रज्ञप्तिवादी, बाहुलिक, चैत्यवादी, महीशासक, वृज्जिपुत्रक, सर्वास्तिवादी, धर्मगुप्तिक, काश्यपीय, सांक्रान्तिक, सूत्रवादी या सौत्रान्तिक, धर्मोत्तरीय भद्रयानिक, षाण्णागरिक, सम्मिति, बौद्धमी, पृ. ८४.
१. विभाषया दीव्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकाः। विभाषां वा विदन्ति वैभाषिकाः। यशोमित्र, अभिधर्मकोश पर स्फुटार्था टीका, पृ. १५.

के दो प्रधान भेद थे- (i) काश्मीर वैभाषिक, (ii) पाश्चात्य वैभाषिक, जिनका केन्द्र गांधार में था। तारानाथ^१ के अनुसार धर्मत्रांत, घोषक, वसुमित्र एवं बुद्धदेव वैभाषिकों के प्रधानतम चार आचार्य थे जबकि बलदेव उपाध्याय^२ ने वसुबन्धु, मनोरथ व संघभद्र का नाम विशेषरूप से लेकर घोष, धर्मोत्तर, उपशान्त आदि की गणना इतर आचार्यों में की है।

सौत्रान्तिक मत, सर्वास्तिवाद की दूसरी प्रसिद्ध शाखा है। यद्यपि ऐतिहासिक सामग्री की कमी के कारण इस सम्प्रदाय के अभ्युदय की कथा अथवा इसके आचार्य व उनके प्रामाणिक ग्रन्थ (जिनमें इनके सिद्धान्त भलीभाँति प्रतिपादित हों) उपलब्ध नहीं हैं। तथापि यशोमित्र^३ ने **अभिधर्मकोष** की **स्फुटार्था टीका** में लिखा है कि **सूत्रान्तों** को प्रामाणिक मानने के कारण ये सौत्रान्तिक नाम से अभिहित किए गए। वैभाषिक **अभिधर्म** की **विभाषा टीका** को सर्वोपरि मानते थे जबकि सौत्रान्तिक के मतानुसार तथागत के आध्यात्मिक उपदेश **सुत्तपिटक** के कतिपय सूत्रों में सन्निविष्ट हैं। ह्येनसांग के मतानुसार इस मत के संस्थापक आचार्य कुमारलात^४ (२ अथवा ३ शती) थे। इनके अलावा सौत्रान्तिक मतानुयायी आचार्यों में श्रीलाभ, धर्मलात, यशोमित्र आदि उल्लेखनीय नाम हैं।

सर्वास्तिवादियों (वैभाषिकों व सौत्रान्तिकों) को सत्ता के विषय में धर्म की सत्ता मान्य है। उनके मतानुसार यह जगत् वस्तुतः ७५ प्रकार के सूक्ष्म धर्मों का संघात है। इनके इस ७५ तत्त्वों में से ७२ संस्कृत और ३ असंस्कृत हैं। ये समस्त धर्म, हेतु-प्रत्यय से सम्बन्धित हैं। अत एव इस निकाय को हेतुवाद भी कहा गया है। सर्वास्तिवाद के ये दोनों सम्प्रदाय यद्यपि **सर्वम् अस्ति** के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तथापि बाह्य जगत् के ज्ञान-विषयक प्रश्नों पर दोनों की मान्यता भिन्न-भिन्न है। वैभाषिक बाह्य जगत् के ज्ञान को प्रत्यक्ष पर आधारित मानते हैं और सौत्रान्तिक अनुमान पर। अतः उनका यह ज्ञानमीमांसीय सिद्धान्त क्रमशः बाह्यप्रत्यक्षवाद व बाह्यानुमेयवाद कहलाता है।

१. A. Schiefner (अनुवाद) *Taranathas Geschichte des Buddhismus in Indien* (St. Peterberg, 1867), p. 67.
२. **बौद्धमी**, पृ. ११४-११५.
३. यशोमित्र का कथन है- **ये सूत्रप्रामाणिका न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रान्तिकाः**। पृ. १२ (रूस का संस्करण, १९१२).
४. इस आचार्य का यथार्थ नाम कुमारलात ही है। इनका पूरा प्रमाण इनके ग्रन्थों की पुष्पिका में मिलता है। अब तक इनका जो कुमारलब्ध नाम बताया जाता था, वह चीनी भाषा का अशुद्ध संस्कृतीकरण के कारण था। उपाध्याय, बलदेव, **बौद्धमी**, पृ. १८४.

माध्यमिक शून्यवाद^१, महायान बौद्ध-विचारधारा की महत्वपूर्ण शाखा है। आचार्य नागार्जुन (द्वितीय शती) ने पूर्वकालिक महायानसूत्रों^२ (वैपुल्यसूत्र) में बिखरे हुए शून्यता-सम्बन्धी विचारों को लेकर क्रमबद्ध रूप में शून्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया^३ इस सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों में आर्यदेव, स्थविरबुद्धपालित, भावविवेक, चन्द्रकीर्ति, शान्तिदेव, शान्तरक्षित के नाम उल्लेखनीय हैं। इस निकाय के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं- तत्त्व (शून्य), तत्त्व के दो रूप संवृत्ति और परमार्थ (संसार और निर्वाण) तथा तत्त्वप्राप्ति की विधि, प्रज्ञा और करुणा।

महायान बौद्धदर्शन का दूसरा प्रमुख निकाय- योगाचार विज्ञानवाद है।^४

१. नागार्जुनकृत मध्यमकशास्त्र के अनुवाद का तार्किक ढंग से प्रतिपादन किया गया है और इसीलिए इस ग्रन्थ के सिद्धान्तों के अनुयायी माध्यमिक कहलाते हैं। 'मध्यमकम अधीते विदन्ति वा'। Scherbatsky, *The Conception of Buddhist Nirvana, Introduction*, p. 4.
२. अपने मूल रूप में अवशिष्ट महत्वपूर्ण महायानिक सूत्रों और शास्त्रों की संख्या दो दर्जन से विशेष अधिक नहीं है। पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास**, पृ. ३२८-२९.
३. विद्र-
 - (a) Sharma, Chandradhar, *A Critical Survey of Indian Philosophy*, p. 86 and बौवे, पृ. २२.
 - (b) Bhattacharya, Vidhushekhar, *History of Philosophy: Eastern and Western*, p. 184.
४. (a) इसकी दार्शनिक दृष्टि शुद्ध-प्रत्ययवाद की है। आध्यात्मिक सिद्धान्त के कारण यह विज्ञानवाद कहलाता है तथा धार्मिक व्यवहारिक दृष्टि से इनका नाम योगाचार है, उपाध्याय बलदेव, **बौद्धमी**, पृ. १९९.
- (b) राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार योगाचार शब्द की उत्पत्ति 'योगावचर' शब्द से हुई है। इस शब्द का उल्लेख पुराने पिटक में भी मिलता है किन्तु एक दार्शनिक निकाय के रूप में नहीं। शायद इसका नाम योगाचार इसलिए भी पड़ा हो कि इस दर्शन के संस्थापक आर्य असंग के योगाचारभूमि नामक ग्रन्थ में इसके दार्शनिक सिद्धान्तों का विशद विवेचन है। दर्शनदिग्दर्शन, पृ. ५७९-५८०.
- (c) विधारण्य स्वामी के मतानुसार बाह्यार्थ की शून्यता का अंगीकार करने से तथा आन्तरिक की शून्यता का पर्यनुयोग करने से ही योगाचार नाम प्रसिद्ध हुआ, शिष्यैस्तावद्योगश्चाचारश्चेति द्वयं करणीयम्- गुरुक्तभावनाचतुष्टयं बाह्यार्थस्य शून्यत्वं चाङ्गीकृत्यानतरस्य शून्यत्वं चाङ्गीकृत कथमिति पर्यनुयोगस्य कारणात्केषाञ्चिद्योगाचारप्रथा। सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. १२.
- (d) भास्कराचार्य के अनुसार शमथ और विपश्यनात्मक मार्ग का आचरण ही योगाचार का मर्म है, शमथविपश्यनायुगनन्दवाही मार्गो योग इति योगलक्षणम्। शमथ इति समाधिरुच्यते। विपश्यना सम्यग्दर्शनलक्षणा। यथा युगनन्दौ बलीदौ वहतस्तथा यो मार्गः सम्यग्दर्शनवाही स योगः। तेनाचरतीति योगाचार उच्यते। ब्रसू २/ २/ २८ भाष्य।
- (e) असंग के महायानसंग्रह के अनुसार योग के द्वारा परमार्थ ज्ञान की ओर अग्रसर होना ही योगाचार का लक्षण है। दूसरी ओर समस्त त्रैधातुक को चित्तमात्र अथवा विज्ञानमात्र घोषित करने के कारण उन्हें विज्ञानवादी कहा जाता है, पृ. २१६-३१७.

मैत्रेयनाथ को विज्ञानवाद का संस्थापक माना जाता है^१ तथा इस सिद्धान्त के प्रथम आचार्य (मैत्रेयनाथ के शिष्य) के रूप में असंग को प्रतिष्ठा प्राप्त है।^२ **महायानसूत्रालंकार** इन गुरु-शिष्यों की सम्मिलित कृति है^३ और इसे विज्ञानवाद का सबसे प्रधान ग्रन्थ माना जाता है। इस सम्प्रदाय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आचार्य वसुबन्धु^४ हैं जो असंग के अनुज हैं। वसुबन्धु-रचित **त्रिस्वभावनिर्देश** व **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि** विज्ञानवाद के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

विज्ञानवादी शुद्ध प्रत्ययवादी हैं। उनकी दृष्टि में भौतिक पदार्थ नितरां असिद्ध है तथा विज्ञान ही एकमात्र सत् है। अर्थात् बाह्य पदार्थ के अभाव में भी विज्ञान की सत्यता सिद्ध है क्योंकि इनके मतानुसार विज्ञान अपनी सत्ता के लिए कोई अवलम्बन नहीं चाहता। यही कारण है कि विज्ञानवादी को निरालम्बनवादी की संज्ञा प्राप्त है। आलयविज्ञान तथा प्रवृत्तिविज्ञान इस विज्ञान के दो महत्वपूर्ण भेद हैं, इनका विवेचन वस्तुतः विज्ञान तत्त्व के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए किया गया है।

बौद्ध दर्शन के उल्लिखित चार सम्प्रदायों के अलावा एक अन्य सम्प्रदाय ऐसा भी है- जो तत्त्वतया विज्ञानवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करता है किन्तु इसकी विशिष्टता यह है कि वह इस सिद्धान्त (विज्ञानवाद) की पुष्टि प्रमाणों के आधार पर करना चाहता है। इस सम्प्रदाय का नाम है- स्वतन्त्र विज्ञानवाद। यह योगाचार के दार्शनिक तत्त्व को, सौत्रान्तिक के प्रमाणों से पुष्ट करके दोनों का समन्वय करता है, अतः इसकी संज्ञा सौत्रान्तिक योगाचार भी है। इसके अलावा इसे बौद्ध न्यायवाद भी कहा जाता है। आचार्य वसुबन्धु के शिष्य आचार्य दिङ्नाग^५

१. (a) Shastri, Hariprasad, **Indian Historical Quarterly** - I, 1925 पृ. ४३५.
 (b) देव, नरेन्द्र, **बौद्धध**, पृ. ३८४.
 (c) उपाध्याय, बलदेव, **बौद्धमी.**, पृ. १९९.
 (d) पाठक राममूर्ति, **भादस**, पृ. ५५.
 (e) तुचि **Doctrines of Matreya Nath and Asang** पृ. ७-८; Winternitz जिल्द २, पृ. ३५२-५३.
२. चन्द्रधर शर्मा के अनुसार आचार्य असंग विज्ञानवाद के मूल प्रवर्तक हैं। बौधे, पृ. ५२-५३.
३. प्रस्तुत ग्रन्थ का मूलभाग मैत्रेयनाथ का तथा टीकाभाग आर्य असंग का कहा जाता है। देव, नरेन्द्र, **बौद्धध**, पृ. ३८४.
४. (a) सम्पूर्ण बौद्ध दार्शनिकों में केवल आचार्य वसुबन्धु को ही द्वितीय बुद्ध कहलाये जाने का गौरव प्राप्त है। **Stcherbatsky, Buddhist Logic, Part-I, p. 32.**
 (b) विद्र- तिवारी, मुनिराम, **बौद्धाचार्य वसुबन्धु**
५. आचार्य नागार्जुन ने **विग्रहव्यावर्तनी** नामक न्याय पुस्तिका लिखी थी। आचार्य असंग ने बौद्ध मत में न्याय के अनुमान का प्रचार किया। वसुबन्धु ने **वादविधि** और **वादविधान** दो न्याय पुस्तिकाएँ लिखीं। इसमें **वादविधि**, वसुबन्धु जब वैभाषिक थे तब की रचना है। इसके पश्चात् योगाचारी बनने पर उन्होंने **वाद-विधान** में अपनी पहले की त्रुटियों को सुधारा। आचार्य दिङ्नाग ने अपने गुरु की न्यायप्रवृत्ति को पूर्ण करने के विचार से बौद्ध-न्याय की स्थापना की। शर्मा चन्द्रधर, बौधे, पृ. ७३.

(३४५-४२५ ई.) इस मत के मूल प्रवर्तक हैं। अन्य आचार्यों में धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित के नाम विशेषोल्लेखनीय हैं। प्रमाणसमुच्चय, दिङ्नाग का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यद्यपि यह संस्कृत के अनुष्टुप् छन्दों में लिखा गया था तथापि इसका संस्कृत मूल अब उपलब्ध नहीं है।^१ इस ग्रन्थ में प्रमाणविद्या के समस्त सिद्धान्तों का विशद विवेचन है।

३. बौद्ध सन्दर्भों की दृष्टि से वेदान्तिक साहित्य का सूच्यात्मक सर्वेक्षण

भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों का विकास परस्पर खण्डन-मण्डन की शैली में हुआ है। भारत में दार्शनिक चिन्तन की यह एक अनिवार्य विधि बन गई है कि पूर्वपक्ष के मत को सयुक्तिक प्रस्तुत करने के बाद उत्तरपक्ष द्वारा उसका खण्डन करना तथा स्वमत का सयुक्तिक प्रतिपादन करना। खण्डन-मण्डन का यह क्रम निरन्तर निर्बाधरूप से चलता रहा है तथा इस क्रम में एक ही सम्प्रदाय के आचार्यों में मतभेद होने पर उपसम्प्रदायों का विकास भी होता रहा है। खण्डन-मण्डन की इस प्रवृत्ति की तीक्ष्णता का सर्वाधिक प्रभावशाली रूप वैदिक और अवैदिक दर्शनों के प्रसङ्ग में दिखाई देता है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन के विकास में अवैदिक कहे जाने वाले दर्शन-सम्प्रदायों का योगदान स्वतन्त्ररूप से विचारणीय है। इन्होंने अपने चिन्तन की पृष्ठभूमि को वैदिक विचारधारा के पूर्वाग्रहों से मुक्त रखा, अभिनव दृष्टि, शब्दावली और शैली से मण्डित किया तथा वैदिक दर्शनाचार्यों के समक्ष ऐसी चुनौतियाँ प्रस्तुत कीं, जो वैदिक दर्शनों के सम्प्रदायों के आन्तरिक मतभेदों से बिल्कुल भिन्न थीं। अतः इन चुनौतियों का उत्तर देने के लिए वैदिक दर्शनाचार्यों ने अपने ग्रन्थों में पूर्वपक्ष के रूप में उनका उल्लेख किया तथा उनके खण्डनार्थ तर्क और प्रमाण खोजने व प्रस्तुत करने के लिए बाध्य हुए। इस क्रम में मुख्यरूप से वेदान्त का बौद्ध दर्शन के साथ संवाद महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय है। वेदान्त के जिन ग्रन्थों में बौद्ध दर्शन के न्यूनाधिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं उनकी कालक्रमानुसार^२ सूची यहाँ प्रस्तुत है-

१. हेमवर्मा नामक एक भारतीय पण्डित ने एक तिब्बतीय विद्वान् के सहयोग से इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। परन्तु विधुशेखर भट्टाचार्य तथा तुशी ने तिब्बती अनुवाद से इस ग्रन्थ का पुनः संस्कृत में अनुवाद किया, जिसका प्रथम भाग कलकत्ता ओरियन्टल सीरीज (नं. २४) में छपा है। उपाध्याय, बलदेव, बौद्धमी, पृ. २०४ पर उद्धृत पाद टिप्पणी।
२. आचार्यों के कालक्रम के लिए विशेष रूप से दो ग्रन्थों को आधार बनाया गया है- (a) शर्मा, राममूर्ति कृत **अवेदा** (b) ऋषि, उमाशंकर शर्मा कृत **सर्वदर्शनसंग्रह** का अनुवाद। **सर्वदर्शनसंग्रह** से जिन आचार्यों के काल को उद्धृत किया गया है वह काल विशेषरूप से ग्रन्थानुसार है। शर्मा, राममूर्ति की रचना के लिए संकेत चिन्ह * है तथा संकेत-रहित सूचना का आधार **सर्वदर्शनसंग्रह** है।

बौद्ध सन्दर्भों की दृष्टि से वेदान्तिक साहित्य

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
-	-	ब्रसू	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद अधिकरण ४, ५, सूत्र सं. १८-३२.	-
८वीं शती का प्रारम्भ	गौडपाद	माण्डूका	चतुर्थ अध्याय, अलातशान्तिप्रकरण	-
७८८-८२० ई. *	शङ्कराचार्य	ब्रसूशाभा	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद अधिकरण, ४, ५ सूत्र सं. १८-३२	
८२० ई. */८५५ ई.	पद्मपाद	पञ्चपादिका	पृ. ७५, ८०, ८२, ८२	प्रस्तुत ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन के अर्थक्रियाकारित्व, क्षणभङ्गवाद, अनुमान प्रमाण इत्यादि सिद्धान्तों को आधार बनाकर स्वयं बौद्ध मत में असङ्गति का प्रदर्शन किया गया है। क्षणभङ्गवाद को अलोक्य-विषय बनाया गया है।
८४० ई. */८४९ ई.	वाचस्पति मिश्र	खण्डनोद्धार	चतुर्थ परिच्छेद: कारण विचार	जगत् के मिथ्यात्व और स्वप्नोपमता आदि विषयों को लेकर आचार्य शङ्कर व बौद्ध विज्ञानवाद के भेद पर चर्चा की गई है।
९०० ई. *	सर्वशास्त्रमूर्ति	संक्षेपशारीरक	द्वितीय अध्याय, कारिका २५ से ६९	

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
१०१९-११३९ ई.	रामानुजः	श्रीभाष्य	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद अधिकरण ३, ४, ५, सूत्र सं. १७-३०	प्रस्तुत ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन के नाह्यार्थवाद, क्षणभङ्गवाद, सौत्रान्तिकमत, योगाचार व माध्यमिक मत को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत कर उसका खण्डन किया गया है।
१०४० ई.	यामुनाचार्य	सिद्धित्रय	पृ. १९९ से २२३	सिद्धित्रय में तीन सिद्धियों का प्रतिपादन है आत्मा, ईश्वर और सवित्। ईश्वरसिद्धि में निरीश्वरवादी का खण्डन है और सवित्सिद्धि में बौद्ध मत के सहोपलम्भ- नियम तथा ज्ञान से ज्ञेय और ज्ञाता के अभेद का निरसन है। इसके अलावा क्षणभङ्गवाद का भी खण्डन इसमें किया गया है।
१०८० ई.	रामानुजः	वेदान्तसंग्रह	पृ. ७४, ७६	बौद्ध दर्शन के क्षणभङ्गवाद व माध्यमिक मत के शून्यवाद की अवधारणा की आलोचना की गई है।

१. उमाशङ्कर शर्मा की कृति सर्वदर्शनसंग्रह में यद्यपि आचार्यों का कालक्रम ग्रन्थानुसार उद्धृत किया गया है तथापि रामानुज की दो भिन्न-भिन्न रचनाओं के लिए दिए गए कालों में स्वयमेव असङ्गति प्रकट होती है।

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
१९वीं ई. *	निम्बार्क	वेदान्तपरिजातसौरभ	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, अधिकरण- ३, ४, ५ सूत्र सं. १८-३२	बौद्ध दर्शन के संघातवाद, क्षणभङ्गवाद, निरोधद्वय, आकाश, प्रतीत्यसमुत्पाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शून्यवाद व विज्ञानवाद के भेद पर चर्चा की गई है।
१९९०ई./१२००ई. *	श्रीहर्ष	खण्डनखण्डखाद्य	प्रथम परिच्छेद, पृ. १४ से	सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद की चर्चा की गई है।
१९९९ई./१३०३ई. *	मध्वाचार्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद अधिकरण- ७, ८, ९ सूत्र सं. १८-३२	
१२०२ई./१२२५ई. *	चित्सुखाचार्य	तत्त्वप्रदीपिका	प्रथम परिच्छेद, पृ. ११९, १२७, १२८, द्वितीय परिच्छेद, पृ. ३४२, ३४६, ३५३-३५५.	असत्ख्याति, आत्मख्याति, क्षणभङ्गवाद, धर्मभेद इत्यादि विषयों को आधार बनाकर बौद्ध दर्शन का खण्डन किया गया है।
१३५० ई. *	विद्यारण्यमुनि	विवरणप्रमेयसंग्रह	पृ. १११, १२३-१२८, १४८- १५४, १९३, २५६-२५८, २५९-२६०, ३४८-३५२	प्रस्तुत ग्रन्थ में अख्यातिवाद, आत्मख्यातिवाद के विषय में बौद्ध की आशंका और उसका परिहार किया गया है। इसके अधिष्ठान के विषय में शून्यवादियों के मत का

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
१३५० ई. *	विद्यारण्यमुनि	पञ्चदशी	पृ. १२५-१३७, ४८३-४८९	निरास, अन्तःकरण के साथ जीव, चैतन्य के स्वाभाविक सम्बन्ध के उपपादन पर विज्ञानवादियों के मत का खण्डन, ज्ञान के क्षणिकत्व का खण्डन आदि विषय भी उल्लेखनीय हैं। नित्य आत्मा के स्वरूप और परिणाम को लेकर बौद्ध दर्शन की चर्चा की गई है तथा अद्वैतवाद में दुःख की समस्या को उठाते हुए दुःख को अभावात्मक माना गया है और यह कहा गया है कि चेतना में चूँकि किसी प्रकार का दुःख नहीं है इसलिए वह पूर्ण है। विज्ञानवाद और वासना के सिद्धान्त की आलोचना की गई है। बौद्ध दर्शन के क्षणभङ्गवाद की अवधारणा पर तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से तथा मोक्ष-विचार का विवेचन किया गया है।
१३५० ई. *	"	जीवन्मुक्तिविवेक	द्वितीय प्रकरण	
१४८१-१५३३ ई. *	वल्लभाचार्य	अणुभाष्य	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, अधिकरण, ४, ५ सूत्र सं. १८-३२	

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
१५६० ई.	मधुसूदन सरस्वती	सिद्धान्तबिन्दु	पृ. ७२-७३, ८१	प्रस्तुत ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन की चर्चा, दो प्रसङ्गों (सुषुप्तावस्था व क्षणिकता) में की गई है जिसका आधार है शून्यवाद और क्षणभङ्गवाद। इसमें यह कहा गया है कि सुषुप्तावस्था में शून्यता का सर्वथा अभाव नहीं होता बल्कि जीव को ब्रह्म से ऐक्य का ज्ञान होता है।
१५६० ई.	सदानन्द	वेदान्तसार	पृ. १९४, १९९	आत्मविषयक विवेचन में बौद्ध मत के विज्ञानवाद व शून्यवाद की चर्चा की गई है।
१६वीं शती *	श्रीनृसिंहाश्रम	वेदान्ततत्त्वविवेक	पृ. १२८-१२९, ६४२.	बौद्ध दर्शन के अर्थक्रियाकारित्व व क्षणभङ्गवाद के सिद्धान्त की समालोचना की गई है।
-	भगवत्पाद	उपदेशसाहस्री	द्वितीय प्रकरण, पृ. ५३-७३, ९३-१०१	इसमें बौद्धों को वैनाशिक मानते हुए उनके संघातवाद को असंगत बताया गया है।

काल	लेखक	रचना	बौद्ध सन्दर्भ	विशेष
-	मण्डनाचार्य	ब्रह्मसिद्धि ^१	पृ. १२	प्रस्तुत ग्रन्थ में क्षणिक विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसका खण्डन किया गया है। इसके आधारस्वरूप यह कहा जाता है कि विज्ञानवादी विज्ञान को विशेष्य मानते हैं जबकि ब्रह्मवादियों के मतानुसार विज्ञान विशेषण है।
१७वीं शती * का पूर्वभाग	श्रीनिवास	वेदान्तकौस्तुभ	चतुर्थ प्रकरण	मोक्ष-विषयक विवेचन के प्रसङ्ग में बौद्ध दर्शन का उल्लेख किया गया है।
१९वीं शती का मध्य	स्वामी रामतीर्थ शङ्कर चैतन्यभारती	अन्वयप्रकाशिका (संक्षेपशरीरिका टीका) २७-६९ सर्वदर्शनसंग्रह	द्वितीय अध्याय पृ. ९-१०१, १०२-१७८	जगत् के मिथ्यात्व और स्वप्नोपमता आदि विषयों को लेकर शङ्कर व बौद्ध विज्ञानवाद के भेद पर चर्चा की गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विज्ञानवाद, शून्यवाद, स्वातन्त्र्यवाद व विवर्ततवाद, इनका तुलनात्मक स्वरूप पूर्वपक्ष और युक्तियों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

१. मिश्र बन्धु-कृत अवेदा (पृ. ३२) में ब्रह्मसिद्धि का लेखक मण्डन मिश्र को बताया गया है। शर्मा, राममूर्ति को रचना अवेदा में भी सुरेश्वराचार्य के अपर नाम के रूप में मण्डन मिश्र का उल्लेख किया गया है तथा इनका काल ८०० ई. निर्धारित है। किन्तु मण्डनाचार्यकृत ब्रह्मसिद्धि का आन्तरिक प्रमाण कहता है कि स्वयं मण्डनाचार्य के काल तक गौडपाद (छठी शती, शर्मा चन्द्रशेखर, बौधे, पृ. २२) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था (पृ. १०)। इस प्रकार ब्रह्मसिद्धि के रचनाकार एवं काल के बारे में प्राप्त उक्त सूचनाएँ परस्पर असङ्गत हैं।

प्रस्तुत सूची से स्पष्ट है कि मतभेद और विरोध के रहते हुए भी वेदान्त के आचार्यों ने बौद्ध विचारधारा को पर्याप्त महत्त्व दिया है। विश्लेषण करने पर जो तथ्य उद्घाटित होते हैं, उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है-

- (i) वेदान्त के लगभग सभी प्रधान साम्प्रदायिक ग्रन्थों में बौद्ध दर्शन को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत किया गया है।
- (ii) वेदान्ताचार्यों द्वारा बौद्ध दर्शन की समालोचना कहीं प्रत्यक्ष रूप से तथा कहीं अप्रत्यक्ष रूप से की गई है।
- (iii) वेदान्त के ग्रन्थों में प्राप्त बौद्ध मत के इन विवरणों के विस्तृत व संक्षिप्त दोनों रूप देखने को मिलते हैं।
- (iv) बौद्ध दर्शन के प्रायः सभी सम्प्रदायों का पूर्वपक्ष के रूप में उल्लेख मिलता है।
- (v) वेदान्त के आचार्यों की दृष्टि बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों के प्रति एक समान नहीं रही है।
- (vi) बौद्ध दर्शन के प्रति वेदान्ताचार्यों की वैषम्य-दृष्टि का स्वाभाविक कारण स्वयं वेदान्त एवं बौद्ध मतों के अवान्तर सम्प्रदायों की अनेकता एवं विविधता का होना है।

४. आधुनिक अध्ययन एवं अनुसन्धान

वेदान्त और बौद्ध दर्शन भारतीय और पाश्चात्य लेखकों व अनुसन्धाताओं के लिए महत्त्वपूर्ण विषय रहे हैं। इन दोनों सम्प्रदायों पर स्वतन्त्र और तुलनात्मक अनेक कार्य हुए हैं। आचार्यों के जीवन और कृतित्व पर ग्रन्थों की टीका, व्याख्या तथा अनुवाद पर भी कार्य हुए हैं। इन समस्त रचनाओं का समग्र विवरण यहाँ प्रस्तुत करना सम्भव एवं अपेक्षित नहीं है। फिर भी उल्लेखनीय है कि आधुनिक लेखकों के निष्कर्ष यह सुखद अनुभूति कराते हैं कि भारतीय दर्शन के ये विभिन्न सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में अन्तःसम्बन्ध रखते हैं। आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखने वालों में इस दृष्टि के लेखकों का ही प्राधान्य है।

विचारणीय विषय पर कतिपय लेखकों एवं पुस्तकों के नाम द्रष्टव्य हैं- उदयवीर शास्त्री, वेदङ्ग; चन्द्रधर शर्मा, बौवे; भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन; रामकृष्ण आचार्य, ब्रवैअ; सूर्यप्रकाश व्यास, बौवेका;

मन्जु, अद्वैतवाद और शून्यवाद; देवराज, भाद; हृदय नारायण एवं अर्जुन मिश्र, अवेदा; जगदीश सहाय, अवेभू; संगमलाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण; एस.एन. दासगुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास भाग दो; सुधांशु शेखर शास्त्री, दर्शनसर्वस्वम् Cateina, *The Philosophy of Mandukya Kārika*; Ram Chandra Jha, *The Vedāntic and the Buddhist Concept of Reality as interpreted by Śamkara and Nāgarjuna*; Guru Sewak Upadhyay, *Buddhism and Hinduism*; D. Rewath Thero (Editor), *Buddhism and Hinduism*; Chandradhar Sharma, *A Critical Survey of Indian Philosophy*; S.S. Roy, *Heritage of Śankara*; Santi Joshi, *Message of Śankara*; B.N.K. Sharma, *Lectures on Vedānta* इत्यादि। इनके अतिरिक्त अनेक अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध एवं प्रकाशित लेख भी हैं।

ब्रह्मसूत्र में बौद्ध सन्दर्भ

उपोद्घात में वेदान्त दर्शन के साहित्य, सम्प्रदाय व सिद्धान्त, बौद्ध दर्शन के प्रादुर्भाव, सम्प्रदाय और सिद्धान्त, बौद्ध सन्दर्भों की दृष्टि से वेदान्तिक साहित्य का सूच्यात्मक सर्वेक्षण आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया गया। अब वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध पर ग्रन्थशः व आचार्यशः विचार के क्रम में सर्वप्रथम ब्रसू में उपलब्ध बौद्ध सन्दर्भों का विवेचन अपेक्षित है।

१. ब्रह्मसूत्र : परिचय

(अ) शब्दार्थ/ तात्पर्य

वेदान्त दर्शन के व्यवस्थित इतिहास के प्रादुर्भाव में ब्रसू का विशेष महत्व है। इसमें सूत्रशैली में परब्रह्म के स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। इसीलिए यह ब्रसू है। आचार्य शङ्कर ने 'गीताभाष्य' में ब्रसू पद की व्याख्या करते हुए कहा है- ब्रह्मणः सूचकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि तैः पदैः गम्यते ज्ञायते इति (गीताभाष्य, १३/४)। ब्रसू को वेदान्त-सूत्र भी कहा जाता है क्योंकि वेदान्त दर्शन ब्रसू से ही प्रतिफलित हुआ है। इन दो नामों के अतिरिक्त इसे शारीरक-सूत्र, शारीरकमीमांसाशास्त्र तथा उत्तर-मीमांसा भी कहते हैं। आचार्य विश्वेश्वर ने 'शारीरः' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है- शरीरे भवः शारीरः अर्थात् शरीर में रहने वाला जीवात्मा ही शारीर या शारीरक नाम से पुकारा जाता है। इसी शारीर या जीवात्मा का प्रतिपादन करने वाले सूत्र को शारीरकसूत्र अथवा शास्त्र को शारीरकमीमांसाशास्त्र कहा जाता है। यह ग्रन्थ चार अध्यायों में विभक्त है, इसीलिये इसे चतुर्लक्षिणी भी कहते हैं। यह नाम इसलिए भी प्रचलित हुआ कि मीमांसासूत्र जिसमें बारह अध्याय थे, द्वादश-लक्षिणी कहलाता था। अतः वेदान्तसूत्र, शारीरक-सूत्र, शारीरक-मीमांसा, उत्तर-मीमांसा, चतुर्लक्षिणी इत्यादि ब्रसू के ही नामान्तरण हैं।

(आ) रचनाकार

प्रचलित परम्परा के अनुसार ब्रसू के रचयिता आचार्य बादरायण माने जाते हैं। ये बादरायण कौन हैं, कब और कहाँ हुए और वस्तुतः ब्रसू के वर्तमान स्वरूप

में उनका कितना योगदान है-इत्यादि समस्त महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

(इ) रचनाकाल

किसी रचनाकार के काल का प्रश्न विवादास्पद होने पर स्वाभाविक रूप से उसकी रचना के काल का प्रश्न भी विवादास्पद हो जाता है। ब्रसू के प्रसङ्ग में काल-विचार के दो पक्ष हैं- मूल ब्रसू की रचना का काल तथा उपलब्ध वर्तमान स्वरूप का रचना-काल। इस दृष्टि से रचनाकार की अपेक्षा, रचना का काल निर्धारित करना और अधिक दुरूह है।

ब्रसू की रचना का प्रधान आधार उप साहित्य है- ऐसा सभी विचारक मानते हैं।^१ अतः स्वाभाविक व निर्विवादरूप से ब्रसू के रचनाकाल की पूर्व सीमा उप के रचनाकाल से पूर्ववर्ती नहीं मानी जा सकती। किन्तु ब्रसू की पूर्वसीमा जितनी निर्विवाद है, अपर सीमा उतनी ही विवादास्पद है। इसकी अपर सीमा के विषय में विचारकों ने जो मत प्रस्तुत किये हैं, उनका वर्गीकृत परिचय इस प्रकार है-

(i) बादरायण और महर्षि व्यास को अभिन्न मानने वाले विचारकों के मतानुसार ब्रसू का निर्माण महाभारत युद्ध के पूर्व आसन्न काल में हुआ है।^२

(ii) बादरायण और व्यास का भिन्नत्व स्वीकार करने वाला वर्ग, ब्रसू में उपलब्ध बौद्धमत के निराकरण के आधार पर ब्रसू का रचना-काल द्वितीय-तृतीय शताब्दी ई.पू. (किसी भी समय) स्वीकार करता है।^३

१. मतभेद की मुख्य परम्पराएँ हैं-

(i) ब्रह्मसूत्रकार बादरायण तथा महाभारत व पुराणों के रचनाकार महर्षि वेदव्यास को नितांत भिन्न मानने वाली परम्परा। (ii) बादरायण व महर्षि वेदव्यास को अभिन्न मानने वाली परम्परा। (iii) ऐसी परम्परा जो यह मानती है कि व्यास एक उपाधि है और बादरायण के साथ व्यास शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है। (iv) वेदान्त के विचारों का प्रतिपादक बादरायण व सूत्रकार को, बादरायण से इतर व्यक्ति स्वीकार करने वाली परम्परा।

२. (a) सिन्हा, हेन्द्रप्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. २८९.

(b) श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अवेभू, पृ. १६.

(c) राधाकृष्णन् भाद-११, पृ. ३६८.

(d) सिंह, ज्ञान्ती देवी, गौडपाद दर्शन : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. ९.

३. (a) शास्त्री, उदयवीर, वेदङ्ग, पृ. ११४-११५.

(b) Max Mullar, Six Systems of Indian Philosophy, p. 113.

४. (a) तृतीय शती ई.पू. में अशोककालीन रचना कथावस्तु से ज्ञात होता है कि उस समय बौद्धमत १८ शाखाओं में विभक्त हो चुका था। सांक्रत्यायन, राहुल, बौद्धदर्शन, पृ. ७७-७८.

(iii) बादरायण को बुद्ध का निकटतम पूर्ववर्ती अथवा समकालिक मानने वाले विद्वानों ने ब्रसू का रचना-काल ४०० वर्ष ई.पू. निर्धारित किया है।

(iv) उपर्युक्त परम्पराओं से नितांत भिन्न विचार रखने वाले कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो ब्रसू को तीन चरणों में लिखा गया मानते हैं। इनके अनुसार इन सूत्रों का निर्माता कोई एक व्यक्ति नहीं है। इनके मत में लगभग ४००-४५० ई. में ब्रसू का वर्तमान स्वरूप संपादित हुआ।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि यदि बादरायण और ब्रह्मसूत्रकार एक व्यक्ति माने जाते हैं तब बादरायण का बुद्ध से परवर्ती होना अवश्यंभावी है। किन्तु यदि बादरायण और ब्रह्मसूत्रकार दो व्यक्ति हैं तब स्पष्ट रूप से यह सम्भावना है कि बादरायण बुद्ध से पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं और परवर्ती भी। यह बात केवल बुद्ध के सन्दर्भ में, बादरायण के लिए कही जा सकती है किन्तु यदि अन्य प्रमाण बादरायण को बुद्ध का परवर्ती सिद्ध करते हैं तो वह उसी दृष्टि से विचारणीय है। ब्रसू जिस वर्तमान स्वरूप में उपलब्ध है उसके अनुसार वह न केवल बुद्ध के पश्चात् अपितु उन बौद्ध दार्शनिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा के बाद ही रचा गया जिन मान्यताओं का खण्डन इस सूत्र ग्रन्थ में मिलता है अर्थात् ब्रसू के वर्तमान स्वरूप के आधार पर इसके रचनाकाल की अपर सीमा- द्वितीय-तृतीय शती ई.पू. से लगाकर ४००-४५० शती हो सकती है।

(ई) रचना-प्रक्रिया

लेखक व काल के विषय में प्राप्त विविध सूचनाओं के समान ही ब्रसू के प्रणयन की प्रक्रिया भी निर्विवाद नहीं है। ब्रसू के प्रादुर्भाव के विषय में विचारकों के दो वर्ग हैं।

(b) द्वितीय शती ई.पू. के प्रारम्भ में सर्वास्तिवादियों के महान् आचार्य आर्य-कात्यायनी पुत्र की प्रौढ़ रचना अभिधर्मज्ञानप्रस्थान दार्शनिक क्षेत्र में आ जाती है। इसके अलावा प्रथम शती ई.पू. की जगदभाववादी विचारों की स्पष्टतः प्रतिपादक रचना अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'जगन्नास्तित्ववादिनी' विचारधारा को भी इसी समय (२ शती ई.पू.) में इतना महत्त्व प्राप्त हो गया था कि उसका निराकरण मात्र 'उपलब्धि' व 'अनुपलब्धि' शब्दों के बल पर किया गया।

(c) दासगुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास-१, पृ. ४१८.

(d) आचार्य, रामकृष्ण, ब्रवेअ, पृ. १८-२०.

१. (a) शास्त्री, उदयवीर, ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शनम्), विद्योदयभाष्यम्, पृ. ६-८.

(b) Frazer, Literary History of India, p. 196.

२. Hajime, Nakamura, History of Vedanta, p. 436.

प्रथम वर्ग वह है जो यह मानता है कि वेदान्त अर्थात् उप के विविध वाक्यों में सङ्गति स्थापित करते हुए वेदान्त-सूत्रों (ब्रसू) का निर्माण किया गया। आचार्य शङ्कर इस पक्ष का समर्थन करते हैं। उन्होंने लिखा है- वेदान्तवाक्यकुसुम-प्रथनार्थत्वात् सूत्राणाम् (ब्रसूशाभा, १/१/३६.)। दूसरी विचारधारा जो यह स्वीकार करती है कि वेदान्त के प्रतिपादक सिद्धान्त पूर्वतः विद्यमान थे और उसके अनुकूल उप वाक्यों का चयन किया गया और उनमें सङ्गति स्थापित की गई। सूत्रकार ने औपनिषदिक वाक्यों/मान्यताओं अथवा सिद्धान्तों का संक्षिप्तीकरण, व्यवस्थापन व उनकी समीक्षा कर उन्हें ग्रन्थ-विशेष ब्रसू के रूप में प्रस्तुत किया तथा वेदान्त दर्शन के व्यवस्थित इतिहास की नींव रखी। यद्यपि ब्रसू की पृष्ठभूमि में समस्त उप साहित्य सामान्यरूप से विद्यमान था तथापि कुछ विचारकों की मान्यतानुसार छान्दोग्यउप के प्रमाणों का आधिक्य होने के कारण इस उप का ब्रसू से विशेष सम्बन्ध रहा है। पुनः उन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि ब्रसू का वर्तमान स्वरूप जो उपलब्ध है उसके अतिरिक्त एक संक्षिप्त आधाररूप पूर्व सूत्र-ग्रन्थ भी रहा है जिसका सम्बन्ध सम्भवतः सामवेद की परम्परा से था। कालान्तर में जब ब्रसू ने अपना एक निश्चित स्वरूप (सिद्धान्त भाग) ग्रहण कर लिया तब यह आवश्यकता हुई की अन्य सम्प्रदायों के विषय में भी खण्डन की दृष्टि से कुछ कहा जाए। इस दृष्टि से ब्रसू में अन्य दर्शनों का खण्डन पक्ष जोड़ा गया। इस प्रकार ब्रसू का निर्माण कई चरणों में सम्पन्न हुआ।

(उ) कलेवर

ब्रसू में कुल मिलाकर ५५५ सूत्र हैं। सूत्रकार ने विषय की दृष्टि से इन सूत्रों को चार अध्यायों व सोलह पादों में विभक्त किया है और विषयानुसार इनको पृथक्-पृथक् नाम भी दिये हैं। प्रथम अध्याय 'समन्वयाध्याय' है। द्वितीय अध्याय को अविरोधाध्याय कहते हैं। तृतीय अध्याय साधनाध्याय तथा चौथा फलाध्याय कहा जाता है। तदन्तर प्रत्येक अध्याय को चार-चार पादों में विभक्त किया गया है। वेदान्त-सूत्रों के अध्याय एवं पाद-विभाजन के अतिरिक्त इनसे छोटा एक और विभाग है जिसे 'अधिकरण' कहते हैं। अधिकरणों की रचना एक या अनेक सूत्रों को

१. Nakamura, Hajime, History of Vedanta, p. 429.

२. Ibid, p. 429-32.

३. ब्रसू के सूत्रों की कुल संख्या ५५४ है, श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अवेभू, पृ. १७.

मिलाकर की गई है। प्रत्येक अधिकरण के भीतर पाँच अवयव होते हैं जो क्रमशः विषय, विशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और फल हैं। तर्क की दृष्टि से द्वितीय अध्याय का द्वितीय पाद (तर्कपाद) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें अन्यदर्शनों की प्रौढ़-युक्तिपूर्वक समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

यद्यपि ब्रसू के विषय परस्पर सङ्गत और सुसम्बद्ध हैं, उनमें किसी स्वतन्त्र विषय के प्रतिपादक सूत्रों का प्रक्षेप नहीं है तथापि यह खेद का विषय है कि उनमें 'पाठ-भेद' की समस्या अवश्य उत्पन्न हो गई है। प्रत्येक भाष्यकार द्वारा स्वीकृत पाठ, अन्य भाष्यकारों के पाठ से किसी न किसी रूप में भिन्नता रखता है।

ग्रन्थ के कलेवर को पृ. ३५ पर चार्ट के माध्यम से संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

(ऊ) खण्डनात्मक पक्ष

ब्रसू के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इसके प्रतिपाद्य विषयों की भी अपनी एक परिधि है इसमें केवल उन्हीं विषयों का मुख्यतः समावेश है जो प्राचीन उप के प्रतिपाद्य हैं। इतना अवश्य है कि उप के प्रतिपाद्य को एक सुव्यवस्थित दर्शन का रूप देने के कारण 'स्वपक्ष-स्थापन' के साथ 'परमत-खण्डन' का भी उक्त परिधि में समावेश हो गया है और सम्भवतः यही इस ग्रन्थ का सर्वाधिक मौलिक एवं ऐच्छिक पक्ष है जिसे इसका योगदान कहा जा सकता है।

ब्रसू के द्वितीय अध्याय का द्वितीय पाद 'तर्कपाद', परमत-खण्डन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस पाद में सूत्रकार ने सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, पाशुपत और पाञ्चरात्र, इन छः मतों के विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों का निराकरण किया है। सूत्रकार द्वारा निराकृत मतों का विवरण पृ. ३६ पर चार्ट के रूप में द्रष्टव्य है।

१. पाठ-भेद की निम्नलिखित मुख्य समस्याएँ हैं-

- (i) अधिकरण भेद.
- (ii) सूत्रों का स्वरूपतः न्यूनाधिक्य.
- (iii) सूत्रों के क्रम में भेद.
- (iv) सूत्रों के स्वरूप-विभाजन में भेद.
- (v) सूत्रों में शब्दों का न्यूनाधिक्य.
- (vi) सूत्रों में किसी अंश का पाठ-भेद

ब्रह्मसूत्र का कलेवर

अध्याय	प्रथम पाद		द्वितीय पाद		तृतीय पाद		चतुर्थ पाद		प्रतिपाद्य विषय	योग	
	सूत्र	अधि.	सूत्र	अधि.	सूत्र	अधि.	सूत्र	अधि.		सूत्र	अधि.
प्रथम	३१	११	३२	७	४३	१३	२८	८	ब्रह्म के स्वरूप एवं दृश्यमान जगत् तथा जीवात्मा के साथ उसके सम्बन्ध का प्रतिपादन।	१३४	३९
द्वितीय	३७	१३	५४	८	५३	१७	२२	९	ब्रह्मविषयक सिद्धान्तों के विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों का तर्क, श्रुति, स्मृति से निराकरण।	१५७	४७
तृतीय	२७	६	४१	८	६६	३६	५२	१७	ब्रह्म-विद्या प्राप्ति के साधनों तथा उपायों का प्रतिपादन।	१८६	६७
चतुर्थ	१९	१४	२१	११	१६	६	२२	७	ब्रह्म-विद्या के विभिन्न साधनों द्वारा साधकों के अधिकारानुरूप प्राप्त होने वाले फलों का प्रतिपादन।	७८	३८
महायोग	११४	४४	१३९	३४	१७८	७२	१२४	४१		५५५	१९१

ब्रह्मसूत्र के खण्डनात्मक पक्ष का विवरण

क्रम	सम्प्रदाय	सन्दर्भ	सूत्र संख्या
१.	सांख्य	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद सूत्र संख्या (१-१०) प्रधानकारणवाद का खण्डन, रचनानुपपत्त्याधिकरण-१	१०
२.	वैशेषिक	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, सूत्र संख्या (११-१७) परमाणुकारणवाद का खण्डन, महदीर्घाधिकरण-२	७
३.	बौद्ध	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद सूत्र संख्या (१८-२३) सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद का खण्डन, समुदायाधिकरण-४ (१८-२७ तक) अभावाधिकरण-५ (२८-३२ तक)	१५
४.	जैन	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, सूत्र संख्या (३३-३६) एकस्मिनसंभवाधिकरण-६	४
५.	पाशुपत	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, सूत्र संख्या (३७-४१) पत्यधिकरण-७	५
६.	पाञ्चरात्र	द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, सूत्र संख्या (४२-४५)	४

२. ब्रह्मसूत्र में बौद्ध पक्ष

(अ) सन्दर्भ

तर्कपाद में सूत्रकार ने सांख्य, वैशेषिक, जैन, पाशुपत और पांचरात्र इन मतों के विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों के निराकरण के क्रम में कुल १५ सूत्रों (सूत्र सं. १८-३२) द्वारा 'बौद्ध मत' की समीक्षा की है। सूत्रकार अपनी व्याख्या के अनुसार इन सूत्रों को दो अधिकरणों 'समुदायाधिकरण-४' 'अभावाधिकरण-५' में विभक्त करता है। इसमें 'समुदायाधिकरण' के अन्तर्गत १० (सूत्र सं. १८-२७) व 'अभावाधिकरण' में ५ (सूत्र सं. २८-३२) सूत्र समाविष्ट हैं।

(आ) सम्बद्ध अधिकरणद्वय की सार्थकता

ब्रसू के सभी अधिकरणों के नामकरण का आधार क्या रहा है और उनकी सार्थकता कितनी है यह एक व्यापक समस्या है। अधिकरण का यह विभाजन ग्रन्थकार का ही रहा है, यह भी एक अवान्तर समस्या है। किन्तु इस समस्या पर सम्पूर्ण रूप से विचार का यहाँ अवसर नहीं है तथा ऐसा करना अप्रासंगिक भी होगा। यहाँ केवल बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित दो ही उक्त अधिकरणों के नामों की सार्थकता विचारणीय है।

अधिकरण शब्द का अर्थ है- प्रकरण। इस पृष्ठभूमि में यदि यह माना जाए कि ब्रसू ने नामों का चयन पूर्वपक्ष के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर किया है, तो यह समाधान 'समुदायाधिकरण' अथवा समुदाय शब्द से चिह्नित 'सर्वास्तिवाद' के सन्दर्भ में तो उचित प्रतीत होता है क्योंकि समुदाय विशेष की तत्त्वमीमांसा में कार्यकारणभाव प्रधान है। इस कार्यकारणभाव का केन्द्र समुदाय है। दूसरे शब्दों में, बौद्ध दर्शन की तत्त्वमीमांसा के कार्यकारणवाद की पहिचान कराने के कारण व्यवहृत समुदाय शब्द अथवा समुदायाधिकरण की संज्ञा युक्तिसंगत है।

उपर्युक्त अधिकरण की भाँति 'अभावाधिकरण' की सार्थकता का निर्णय सरल और निर्विवाद नहीं है। वेदान्त और बौद्ध के परस्पर संवाद में अभाव शब्द ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। बौद्ध दर्शन का कोई भी सम्प्रदाय अपनी तत्त्वमीमांसा में अभाव की अवधारणा को उल्लेखनीय महत्त्व नहीं देता है। इसलिए सूत्रकार द्वारा इस शब्द का प्रयोग समुदाय की भाँति नहीं माना जा सकता। इस शब्द से सूत्रकार का वास्तविक तात्पर्य क्या है, इसका निर्णय करने के दो प्रधान आधार हैं- (१) इस अधिकरण में सम्मिलित सूत्रों पर विचार (२) इस शब्द पर ब्रसू के परवर्ती भाष्यकारों की टिप्पणियाँ। जहाँ तक प्रथम विकल्प का प्रश्न है, इस अधिकरण में प्रयुक्त ५ सूत्रों में दो शब्द महत्त्वपूर्ण आए हैं- (१) अभाव और (२) क्षणिक। क्षणिक शब्द सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद दोनों में सामान्य है। सर्वास्तिवाद का खण्डन सूत्रकार समुदायाधिकरण में कर चुका है इसलिए इस अधिकरण का क्षणिक शब्द विज्ञानवाद के सन्दर्भ में प्रयुक्त है, ऐसा माना जा सकता है। अभाव शब्द का सम्बन्ध बौद्ध तत्त्वमीमांसा से साक्षात् न होते हुए भी ब्रसू के शङ्कर आदि परवर्ती भाष्यकारों ने इसे क्षणभङ्गवाद और शून्यवाद से घनिष्ठ रूप से जोड़ दिया है। इसलिए इन प्रतिष्ठित भाष्यकारों के सन्दर्भ से इस अधिकरण में विज्ञानवाद और शून्यवाद का खण्डन माना जा सकता है और यही इसकी सार्थकता है।

(इ) सम्प्रदाय

बौद्ध-दर्शन के चार प्रधान दार्शनिक सम्प्रदाय हैं (i) वैभाषिक, (ii) सौत्रान्तिक, (iii) विज्ञानवाद अथवा योगाचार व (iv) माध्यमिक अथवा शून्यवाद। ब्रसू के १५ सूत्रों में बौद्ध मत को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सूत्रों में कहीं भी बौद्ध मत के आचार्यों, उनसे सम्बन्धित सम्प्रदायों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। किन्तु सूत्रों के विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि सूत्रकार सर्वास्तिवाद व

विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में मान्यता देता है। ब्रसू में शून्यवाद है या नहीं- यह आगे विचारणीय है।

(ई) सिद्धान्त

सूत्रों में प्रयुक्त समुदाय, प्रतिसंख्या, अप्रतिसंख्या, इतरेतर-प्रत्ययत्व, पूर्वनिरोध, क्षणिक इत्यादि पारिभाषिक शब्द जिन अर्थों व भावों में प्रयुक्त हैं वे एकमात्र बौद्ध दर्शन में ही परिगृहीत हैं। अतः इन पारिभाषिक शब्दों को आधार बनाते हुए ब्रसू में बौद्ध दर्शन के अधोलिखित सिद्धान्त अथवा बिन्दु समीक्षार्थ निर्धारित किये जा सकते हैं-

- (i) समुदायवाद
- (ii) प्रतीत्यसमुत्पाद
- (iii) संस्कृत व असंस्कृत धर्म
- (iv) क्षणभङ्गवाद
- (v) विज्ञानवाद

सम्प्रति बौद्धों के इन सिद्धान्तों अथवा बिन्दुओं का संक्षिप्त विवरण ब्रसू के आधार पर ही इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

सर्वास्तिवाद

- (i) समुदाय आन्तर और बाह्य दो प्रकार के होते हैं (२/२/१८)
- (ii) अविद्या आदि द्वादश निदानों (द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पाद) में परस्पर कार्य-कारणभाव है (२/२/१९)।
- (iii) क्षणभङ्गवाद के अनुसार उत्तर-क्षण के उत्पन्न होने पर पूर्व-क्षण निरुद्ध हो जाता है (२/२/२०-२७)।
- (iv) कार्य की उत्पत्ति में चार प्रकार के हेतु होते हैं (२/२/२१)।
- (v) प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध और आकाश ये तीनों असंस्कृत धर्म हैं जो संस्कृत धर्मों की अपेक्षा नित्य हैं (२/२/२२-२४)।
- (vi) ज्ञान के अनन्तर उत्पन्न हुआ स्मरण ही अनुस्मृति है (२/२/२५)
- (vii) क्षणभङ्गवाद असत् से सत् की उत्पत्ति का सिद्धान्त है (२/२/२६-२७)।

विज्ञानवाद

- (i) विज्ञान से व्यतिरिक्त बाह्य अर्थ की सत्ता नहीं है (२/२/२८)।
- (ii) स्वप्न-सादृश्य के आधार पर बाह्यार्थ (जाग्रतावस्था) का निषेध किया जा सकता है (२/२/२९)।
- (iii) वासना-वैचित्र्य के कारण ही प्रत्ययों में विचित्रता होती है (२/२/३०-३१)।

(उ) खण्डनात्मक युक्तियाँ

ब्रह्मसूत्रकार ने बौद्ध पक्ष को उपर्युक्त स्वरूप में प्रस्तुत करने के बाद स्वदृष्ट्या उसके खण्डन में अनेक खण्डनात्मक युक्तियाँ दी हैं।

सर्वास्तिवाद

(i) परमाणु-समूह और स्कन्ध-समूह दोनों ही अचेतन हैं। अतः समुदाय बनाने वाला कोई एक ऐसा चेतन कर्त्ता होना आवश्यक है जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् होने के साथ-साथ समुदाय से नितान्त भिन्न हो (२/२/१८)।

(ii) स्वभाववाद के नियमानुसार (प्रतीत्यसमुत्पाद से) समुदाय की उत्पत्ति मान लेने पर भी समुदाय का ज्ञान प्राप्त करने वाला कोई चेतन कर्त्ता होना चाहिये (२/२/१९)।

(iii) पूर्वकाल के पदार्थ की सत्ता क्षणिक है। अतः उसे दूसरे क्षण में उत्पन्न होने वाली सत्ता का हेतु नहीं माना जा सकता (२/२/२०)।

(iv) क्षणभङ्गवाद में हेतु से पदार्थ की उत्पत्ति की प्रतिज्ञा स्वयमेव बाधित हो जाती है (२/२/२१)।

(v) कार्य को सहेतुक मानने पर अथवा कार्यपर्यन्त हेतु की स्थिति है, ऐसा स्वीकार करने पर क्षणिकत्व-प्रतिज्ञा की हानि होती है।

(vi) क्षणिक अनुभवकर्त्ता आत्मा के स्मरण-काल में नहीं रहने से तथा संस्कारादि के अभाव से स्मृति नहीं हो सकती; चूँकि हमें स्मृति होती है अतः अनुभव करने वाला आत्मा क्षणिक नहीं है (२/२/२५)।

(vii) असत् से सत् की उत्पत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध है (२/२/२६)।

(viii) असत् से सत् की उत्पत्ति मानने पर कर्म-फल की व्यवस्था असन्तुलित हो जाएगी (२/२/२७)।

विज्ञानवाद

(i) बाह्य जगत् का अभाव नहीं है क्योंकि पञ्चज्ञानेन्द्रियों से उसकी उपलब्धि (अनुभूति) होती है (२/२/२८)।

(ii) भाव और अभाव परस्पर सापेक्ष हैं। अतः अभाव के लिए भाव का होना अनिवार्य है (२/२/२८)।

(iii) स्वप्नादि के दृष्टान्त से जाग्रदवस्था का ज्ञान निराधार नहीं हो सकता क्योंकि स्वप्न और जाग्रत् (व्यावहारिक) जीवन की दो अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। जैसे इनके धर्म में भेद है वैसे ही व्यवहार और परमार्थ में भी भेद है (२/२/२९)।

(iv) बाह्य पदार्थ का ज्ञान वासना के प्रति कारण है। चूँकि बाह्य पदार्थों की उपलब्धि नहीं होती है अतः कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव होगा (२/२/३०)।

(v) भाव-पदार्थ की उपलब्धि नहीं होती है इसलिए भी उसका कोई स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता अथवा उसकी भावरूपता का निर्धारण नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही यदि भाव पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो वह भी संभव नहीं है क्योंकि भाव-पदार्थ को क्षणिक मानने से उसका प्रत्यक्षात्मक ज्ञान संभव नहीं (२/२/३१)।

अन्तिम सूत्र (२/२/३२) में सूत्रकार ने यह मत व्यक्त किया है कि बौद्ध सिद्धान्त सभी प्रकार से असिद्ध है। यह युक्ति सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद दोनों सम्प्रदायों की सभी अवधारणाओं पर समानरूप से लागू होती है।

(ऊ) बौद्ध सन्दर्भ में ब्रह्मसूत्र की खण्डन-शैली

सूत्रकार ने तर्कपाद में निराकृत बौद्ध मत को श्रुतियों से स्वतन्त्र मानकर उनका खण्डन किया है। इसलिए वह उसके खण्डन में कहीं भी श्रुति-विरोध को हेतु के रूप में प्रयुक्त न कर स्वतन्त्र रूप से युक्तियों के द्वारा उनके सिद्धान्तों की अनुपपन्नता और विप्रतिषिद्धता प्रदर्शित करता है। सूत्रकार ने सर्वमान्य तर्कों का प्रयोग करते हुए भी जहाँ तक हो सका है वहाँ तक अपनी ओर से बाह्य युक्तियों का प्रयोग नहीं किया है। दर्शन-जगत् में खण्डन की इस पद्धति को प्रसंग व प्रसक्ति के नाम

से जाना जाता है।^१ इसमें सर्वप्रथम पूर्वपक्ष के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया जाता है। ततः उसमें आपत्तियाँ दिखलाकर अन्ततः पूर्वपक्ष के सिद्धान्त को ही भ्रान्तियों व असंगतियों से परिपूर्ण सिद्ध किया जाता है। सूत्रकार द्वारा बौद्ध दर्शन के खण्डन में प्रयुक्त इस शैली का अनुकरण अन्य दर्शन-सम्प्रदायों के खण्डन में भी दिखाई देता है। किन्तु उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कुछ विचारक ऐसा भी मानते हैं कि वर्तमान ब्रसू की खण्डनात्मक शैली पर नागार्जुन आदि पूर्ववर्ती बौद्ध आचार्यों का प्रभाव सम्भव है। उक्त मत की पुष्टि में रोचक तथ्य यह है कि ब्रसू में सर्वास्तिवाद के खण्डन में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं वे उन तर्कों से अपने मूल रूप में समानता रखते हैं जिनका कि विकास स्वयं नागार्जुन ने सर्वास्तिवाद-सम्मत कार्यकारणवाद के खण्डन में किया है।^२

(ऋ) ब्रह्मसूत्र में बौद्ध सन्दर्भों पर (अन्य विद्वानों की) टिप्पणियाँ

ब्रसू में प्राप्त बौद्ध दर्शन के खण्डन पर अनेक आधुनिक व्याख्याकारों ने बहुविध टिप्पणियाँ की हैं। समीक्षा की दृष्टि से उनका पर्याप्त महत्त्व है। अतः यह आवश्यक है कि उनमें से कतिपय प्रधान टिप्पणियों को सूत्रानुसार वर्गीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाए जिससे विचारणीय सूत्रों की समीक्षा में ऐतिहासिकता, व्यापकता और प्रामाणिकता लायी जा सके। भरत सिंह उपाध्याय^३ ने ब्रसू में प्रतिपादित ब्रह्म-सिद्धान्त को बौद्ध सिद्धान्त के प्रतिकूल माना है तथा इन बौद्ध सिद्धान्तों के विकास का काल ब्रसू के बाद माना है।

लेखक की यह टिप्पणी बहुत साधारण है क्योंकि स्वयं ब्रसू में बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों और पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख यह बताता है कि बौद्ध दर्शन की (समुदायवाद, क्षणभङ्गवाद, असंस्कृत धर्म, विज्ञानवाद आदि) अवधारणाएँ ब्रसू से पूर्व प्रतिष्ठा पा चुकी थीं। अन्यथा ब्रसू जैसे सूत्र-ग्रन्थों में उन्हें स्थान मिलना भी सम्भव नहीं था। मुख्य समस्या यह है कि ब्रसू में प्रतिपादित बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि क्या है और ब्रसू ने इस प्रसङ्ग में बौद्ध दर्शन को किस रूप में प्रस्तुत किया है। उपाध्याय की उक्त टिप्पणी इस प्रधान समस्या के समाधान में कोई सहायता नहीं करती अपितु सामान्यरूप से दोनों का संकेत मात्र करती है।

१. Nakamura, Hajime, *History of Vedanta*, p. 481.

२. Ibid

३. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ९४०.

उपाध्याय ने, वेदान्त और बौद्ध की परम्पराओं में मतभेद के उल्लेख के साथ यह भी कहा है कि सम्यक् सम्बुद्ध इन सब वादों और प्रतिवादों से परे थे।

उक्त विचार के अनेक आयाम हैं। बुद्ध के सरल उपदेश, वेदान्त के साहित्य से प्रभावित हैं अथवा नहीं, यह स्वतन्त्र विचार का विषय है तथा दूसरी ओर बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों के सभी आचार्य यह मानते हैं कि उनकी मान्यताओं के बीज बुद्ध के उपदेशों में विद्यमान हैं और यदि यह सत्य है तो बुद्ध के विचार भी वेदान्त से भिन्न ही सिद्ध होते हैं।

उपाध्याय ने ब्रह्मसूत्रकार के द्वारा बौद्ध विचारों के प्रत्याख्यान का उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु उनमें पूर्वापर काल की असङ्गति स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने बौद्ध दार्शनिक विचारधारा को ब्रसू से उत्तरकालीन बताते हुए कहा है कि सूत्रकार ने परवर्ती बौद्धों की प्रतिकूलता की कल्पना करके उसका खण्डन किया। यह टिप्पणी सर्वथा असंगत प्रतीत होती है।

उपाध्याय की साधारण टिप्पणियों की अपेक्षा उदयवीर शास्त्री की टिप्पणी कथ्य को कुछ आगे बढ़ाती है। उन्होंने सूत्रकार का प्रधान प्रयोजन ब्रह्म की सत्ता को सुसिद्ध करना माना है और विरोधी विकल्पों का खण्डन इसी लक्ष्य की पूर्ति में सहायक बताया है।

यह टिप्पणी भी ब्रसू और अन्य दर्शनों पर सामान्यरूप से लागू होती है तथा बौद्ध दर्शन के लिए इसमें कोई विशेष कथ्य नहीं है।

सम्प्रति, ब्रसू में बौद्ध विचारों के खण्डन का स्वरूप क्या है, यह आधुनिक विद्वानों के बीच विवादास्पद समस्या है। एक ओर उदयवीर शास्त्री, अपनी टिप्पणियों में यह कहते हैं कि (ब्रसू २/२/१८-३२) सूत्रों में बौद्ध मत अथवा किसी भी बौद्ध शाखा का निराकरण नहीं है और इसीलिए उन्होंने प्रतिसंख्या-अप्रतिसंख्या निरोध, जैसे शब्दों को, बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्द न मानकर, इनको सम्प्रदाय-निरपेक्ष माना है तथा इन शब्दों का प्राचीन स्रोत बौद्ध साहित्य से इतर स्वीकार किया है किन्तु बिना प्रमाण के इस विचार को स्वीकार करना संभव नहीं है।

१. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ९४०.

२. वेदह, पृ. ५३-५४.

३. वही, पृ. ५६.

दूसरी ओर एक अन्य विद्वान् ने यह स्वीकार किया है कि ब्रसू में बौद्ध दर्शन की शून्यवादी शाखा का उल्लेख नहीं है अर्थात् इससे यह ध्वनि निकलती है कि ब्रसू में बौद्ध दर्शन की अन्य दो शाखाओं (सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद) का उल्लेख है। विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि इनकी टिप्पणियाँ परस्पर संगति नहीं रखती हैं।

३. समीक्षा

वेदान्त एवं बौद्ध भारतीय दर्शन की दो ऐसी समृद्ध चिन्तनधाराएँ हैं जिनमें विचारों के आदान-प्रदान की अथवा उनमें सैद्धान्तिक तर्क-वितर्क की सुदीर्घ परम्परा रही है। वेदान्त दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ, ब्रसू इनके परस्पर प्रत्यक्ष संवाद का प्रथम प्रमाण है। ब्रसू से बौद्ध और वेदान्त के जाग्रत् व लिखित सम्बन्ध का केवल इतिहास ही आविर्भूत नहीं होता बल्कि इसमें साक्षात् संवाद का क्रम भी यहीं से प्रारम्भ होता है। ब्रह्मसूत्रकार ने १५ सूत्रों में बौद्ध दर्शनों की चर्चा करते हुए भी बौद्ध मत के आचार्यों व उनसे सम्बन्धित सम्प्रदायों व सिद्धान्तों का कोई स्पष्ट नामोल्लेख नहीं किया है। अतः यह सूत्रग्रन्थ स्वयं भाष्यकारों को इसका तात्पर्य स्पष्ट करने का अवसर देता है। इस वस्तुस्थिति से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं- (i) सूत्र अपने आप में सुस्पष्ट नहीं हैं। (ii) भाष्यकारों को अवसर मिलने का अर्थ उनके मत के अनुसार सूत्रों की व्याख्या को अवसर मिलना है तथा इस आधार पर निश्चित ही अनेक विवादों और व्याख्याओं का जन्म लेना स्वाभाविक है।

प्रथम दृष्ट्या सूत्र को अस्पष्ट मानते हुए भी प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के आधार पर यह निश्चित अनुमान किया जा सकता है कि सूत्रकार समुदायाधिकरण-४ के अन्तर्गत १० सूत्रों में तथा अभावाधिकरण-५ के अन्तर्गत ५ सूत्रों में, क्रमशः सर्वास्तिवाद व विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करता है।

इन १५ सूत्रों में ब्रह्मसूत्रकार ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उसे मुख्यतया तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (i) दर्शन के सामान्य शब्द (समुदाय, उत्पत्ति, हेतु/निमित्त, विच्छेद, अनुस्मृति, असत्, अभाव) आदि। (ii) परिभाषिक शब्द (हेतु, निरोध, प्रतिसंख्या, अप्रतिसंख्या, क्षणिक, प्रत्यय)। (iii) सामान्य शब्द (उदासीन, यौगपद्य, पूर्व-उत्तर)। यद्यपि सूत्रकार द्वारा सूत्रों में

१. 'ब्रसू में शून्यवाद आदि का जो प्रसंग आया है, उससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह 'नागार्जुन' के शून्यवाद की ओर ही संकेत करता है। हिन्दू लेखकों को बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का सूक्ष्म परिचय था।' दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शन का इतिहास-१, पृ. ४२६.

समीक्ष्य सिद्धान्त का भी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है तथापि सूत्रों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों को आधार बनाने पर अर्थात् उनका विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है सूत्रकार द्वारा बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त की समीक्षा का प्रधान बिन्दु क्षणभङ्गवाद है। अन्य सभी शब्द अथवा समस्याएँ इसी अवधारणा के अन्तर्गत हैं। क्षणिक के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण शब्द निरोध है क्योंकि निरोध ही वह मुख्य समस्या है जो क्षणों के प्रवाह के सातत्य को अवरुद्ध करती है।^१ इसलिये ब्रह्मसूत्र में प्रस्तुत बौद्ध विचारधारा का एक छोर क्षणभङ्गवाद है वहीं प्रतिसंख्या-अप्रतिसंख्या जैसे शब्द निरोध के विचार से जुड़े हुए हैं तथा प्रत्यय शब्द भी क्षणिक प्रवाह के पूर्वोत्तर क्षण का परिचायक है। इसे हेतु का स्थानापन्न भी कहा जा सकता है।

क्षणभङ्गवाद के विरुद्ध जो आपत्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं अर्थात् जिन युक्तियों के माध्यम से क्षणभङ्गवाद को सर्वथा असिद्ध (२/२/३२) माना गया है उनके दो प्रधान आधार हैं -

(i) क्षणभङ्गवाद को मानने पर समुदाय किसी भी प्रकार स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता और यदि उसके स्वरूप को मान भी लिया जाए तो उसकी प्राप्ति अर्थात् उसके ज्ञान को प्राप्त करने वाला कोई नित्य प्रमाता नहीं है और नित्य प्रमाता के बिना न तो समुदाय साकार और सिद्ध हो सकता है और न उसका कोई ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही हो सकता है।

(ii) क्षणभङ्गवाद में प्रथम क्षण के सर्वथा सिद्ध होने पर द्वितीय क्षण का प्रादुर्भाव होता है किन्तु इससे एक के बाद दूसरे तत्त्व की उत्पत्ति का चाहे जैसे व्याख्यान किया जाए किन्तु यह विचार या तो असत् से सत् की उत्पत्ति की ओर ले जाता है अथवा कारण और कार्य में या पूर्व और उत्तर क्षण में किसी प्रकार के सम्बन्ध का निषेध करता है। असत् से सत् की उत्पत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध है तथा कारण और कार्य में सम्बन्ध का अभाव भी अव्यावहारिक है, प्रमाणसिद्ध नहीं है।

अत एव ब्रह्मसूत्रकार द्वारा बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त की समीक्षा का प्रधान बिन्दु क्षणभङ्गवाद ही है और महत्त्वपूर्ण तर्क यह है कि अचेतनों के क्षणिक प्रवाह का सातत्य मान लेने पर भी यह गम्भीर समस्या बनी रहती है कि उस प्रवाह का निरोध कैसे हो। जिन प्रतिसंख्या-अप्रतिसंख्या रूप दो उपायों से निरोध का विकल्प

१. इन विचारणीय १५ सूत्रों में क्षणिक शब्द का प्रयोग सूत्रकार ने प्रायः अन्त २/२/३१ में किया है तथा निरोध शब्द का प्रयोग तीसरे और पाँचवें सूत्र में किया है।

क्षणभङ्गवाद प्रस्तुत करता है उसे युक्तिसङ्गत नहीं कहा जा सकता क्योंकि क्षणभङ्गवाद के मूल भाव के वह विपरीत है और इन्हें मानने से स्वयं क्षणभङ्गवाद की सर्वव्यापकता प्रभावित होती है।

सूत्रकार ने क्षणभङ्गवाद के विरुद्ध जो युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं, उनके माध्यम से वह यही सिद्ध करना चाहता है कि नित्य ज्ञाता और चेतन तत्त्व को मानना परमावश्यक है क्योंकि सृष्टि के उत्पाद और निरोध जैसे विपरीत क्रम को चेतन ही नियन्त्रित कर सकता है। क्षणभङ्गवाद न तो भौतिक कार्यकारणवाद की समुचित व्याख्या करने में सफल हुआ है और न ही पदार्थ के ज्ञान की उसमें कोई स्थायी व्यवस्था है। तीसरी मुख्य आपत्ति निर्वाण या मोक्ष के प्रसंग में है अर्थात् क्षणभङ्गवाद के सन्दर्भ में किसका, कैसे और क्यों निर्वाण होता है, इस प्रश्न का सन्तोषप्रद समाधान नहीं हो पाता है।

उपर्युक्त समस्त विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सूत्रकार की वस्तुतः यह नीति रही है कि उसने सम्प्रदायों का नामोल्लेख न करते हुए भी आलोचना हेतु एक ऐसे सिद्धान्त (क्षणभङ्गवाद) का चयन किया है जो वस्तुतः बौद्ध दर्शन के (शून्यवादातिरिक्त) सभी सम्प्रदायों में समानरूप से विद्यमान है। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्म का जो स्वरूप है उस क्रम में खण्डन के लिए ही सही सूत्रकार द्वारा बौद्ध दर्शन को १५ सूत्रों में विवेचित किया जाना जहाँ एक ओर अन्य दर्शनों के खण्डनात्मक सूत्रों के अनुपात में बौद्ध दर्शन की वरीयता को सिद्ध करता है वहीं दूसरी ओर स्वयं सूत्रकार के दृष्टिकोण में इस दर्शन के महत्त्व को भी प्रतिपादित करता है।

सूत्रकार द्वारा क्षणभङ्गवाद का खण्डन किए जाने का एक आधारभूत कारण यह रहा है कि स्वयं उनके अपने सिद्धान्त (ब्रह्मवाद अर्थात् ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप) से क्षणभङ्गवाद बिल्कुल भिन्न प्रकृति का है। ब्रह्म के चिदात्मक स्वरूप की आंशिक अभिव्यक्ति विज्ञानवादियों के विज्ञान तत्त्व में मानी जा सकती है। तथापि ब्रह्म के सत् व नित्य स्वरूप से समानता व सङ्गति रखने वाले तत्त्व का बौद्ध दर्शन में सर्वथा अभाव है। अतः सत्यता व नित्यता के प्रधान विरोधी सिद्धान्त के रूप में क्षणभङ्गवाद की आलोचना करना स्वाभाविक है और इसे सूत्रकार ने अत्यन्त सहजरूप में ग्रहण किया है। उसने क्षणभङ्गवाद के खण्डन में जो युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं वे व्यावहारिक हैं, उनमें प्रतिपक्षी अथवा सिद्धान्त के प्रति किसी प्रकार के अनादर का कोई भाव नहीं दर्शाया गया है बल्कि क्षणभङ्गवाद को मानने पर व्यवहारतः क्या समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं, मात्र इसका ही स्पष्टीकरण है। दूसरे शब्दों में, व्यावहारिक युक्तियों द्वारा प्रतिपक्षी के सिद्धान्त की विसङ्गतियों का प्रदर्शन करना

वस्तुतः परस्पर संवाद का ही एक आयाम है। इसे दोष नहीं कहा जा सकता और न ही सूत्रकार की इस प्रवृत्ति को खण्डन की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः यह पूर्वपक्ष में देखी गई विसंगतियों के उद्घाटन का आधारभूत, गम्भीर व ऐतिहासिक प्रयास है। यहाँ उल्लेखनीय है कि ब्रह्मसूत्रकार ने बौद्ध दर्शन के प्रति सिद्धान्त विशेष को लेकर जो आपत्तियाँ की हैं, उनका उत्तर भी परवर्ती बौद्धाचार्य शान्तरक्षित ने अपने ग्रन्थ 'तत्त्वसंग्रह' में दिया है। इतना ही नहीं क्षणभङ्गवाद तो बौद्ध दर्शन का एक ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जिस पर मात्र वेदान्तियों ने ही नहीं बल्कि जैन, न्याय-वैशेषिक, शैव आदि और यहाँ तक कि बौद्धाचार्य नागार्जुन ने भी आपत्तियाँ उठाई हैं।

अतः सूत्रकार द्वारा आदर व सम्भावना से परिपूरित आलोचना का यह प्रयास वस्तुतः परम्पराद्वय के साक्षात् सम्बन्धों का एक अच्छा व सफल श्रीगणेश है तथा भारतीय दर्शन के विकास में इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसी नींव पर परवर्ती वेदान्तियों ने परस्पर सम्बन्ध का प्रासाद खड़ा किया है।



माण्डूक्यकारिका में बौद्ध सन्दर्भ

किसी भी आचार्य के जीवन-परिचय को प्राप्त करने का आधार अन्तः-प्रमाण और बाह्य प्रमाण होते हैं। कभी उस आचार्य के द्वारा रचित ग्रन्थों में उसके जीवन से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ या संकेत मिल जाते हैं और कभी समकालीन या परवर्ती विद्वानों के ग्रन्थों में उसके जीवन-विषयक सूत्र न्यूनाधिक रूप में और व्यवस्थित या अव्यवस्थित रूप में मिल जाते हैं। जहाँ तक आचार्य गौडपाद का प्रश्न है, इनके ग्रन्थों में रचनाकार के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। अतः अन्तःप्रमाण का पक्ष शून्य है।

ब्रह्म के पश्चात् और शङ्कराचार्य से पूर्व प्रादुर्भूत हुए, आचार्य गौडपाद के जीवन के परिचय का निकटतम माध्यम, कुछ इतिहासकार एवं लेखकों द्वारा रचित धर्म, दर्शन एवं इतिहास के ग्रन्थ हैं। इनमें प्रासङ्गिक रूप से गौडपाद के जीवन-परिचय का उल्लेख किया गया है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उन्हें बङ्गदेशीय स्वीकार किया जाता है।^१ गुरु-शिष्य परम्परा सम्बन्धी एक अन्य विवरण के अनुसार गौडपाद को शुकदेव का शिष्य अथवा शङ्कराचार्य के प्रगुरु के रूप में भी सम्मान प्राप्त है।^२

१. गौडपाद का काल

गौडपाद के कृतित्व, सिद्धान्त और योगदान पर विचार करने से पूर्व उनके प्रादुर्भाव-काल पर विचार आवश्यक है। गौडपाद के प्रादुर्भाव-काल की समस्या पर विचार करने वाले भारतीय दर्शन के इतिहासकारों में कतिपय उल्लेखनीय नाम उनकी मान्यताओं के साथ ये हैं-

१. वेदान्तदर्शनर इतिहास के लेखक प्रज्ञानन्द सरस्वती का मत। प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक नैष्कर्म्यसिद्धिकार सुरेश्वराचार्य का श्लोक प्रमाणरूप से उद्धृत करता है-
एवं गौडैर्वाविदैर्नः पूज्यैरर्थः प्रभाषितः। अज्ञानमात्रोपाधिः सन्नहमादिद्विगोचरः।।

(४/४४)

२. शाङ्कर सम्प्रदाय में प्रचलित आचार्यस्तव का मंगलाचरण-
नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुक्रं गौडपादं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।।
श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादञ्च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यान्स्मद्गुरुन्सन्ततमानतोऽस्मि।।

स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती के अनुसार गौडपाद, नागार्जुन (ईसा की द्वितीय शती) से पूर्व प्रादुर्भूत हुए हैं। देवराज, आचार्य की कालतिथि पाँचवीं शती निर्धारित करते हैं। राधाकृष्णन् को गौडपाद का समय ५५० ई. मान्य है। इसी प्रकार अन्य विद्वान् चन्द्रधर शर्मा व उमाशङ्कर शर्मा ऋषि क्रमशः गौडपाद की कालावधि ६ शती व ७५० ई. स्वीकार करते हैं। इन सभी लेखकों ने अपनी पुस्तकों में अपने-अपने मत के समर्थन में आवश्यक तर्क एवं प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जिनका उल्लेख यहाँ करना पुनरुक्ति होगी।

काल-विषयक प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करने पर गौडपाद के काल की पूर्व सीमा द्वितीय शती व अपर सीमा ७५० ई. अर्थात् ८वीं शती निर्धारित होती है।

इस अवधि में लगभग ६०० वर्षों का उल्लेखनीय अन्तर है। परम्परा गौडपाद को शङ्कर का प्रगुरु मानती है। अतः इस आधार को स्वीकार करने पर गौडपाद व शङ्कर में लगभग ५० वर्षों से अधिक का अन्तर मानना उचित नहीं है। यहाँ समस्या शङ्कर के काल की भी है। यदि शङ्कर का काल परम्परया ७८८-८२० ई. स्वीकार किया जाता है तो गौडपाद का काल ७३८ ई. सिद्ध होता है। उमाशङ्कर शर्मा ऋषि का मत लगभग इसी की पुष्टि करता है।

गौडपाद के नामधारी अन्य आचार्य भी भारतीय दर्शन के इतिहास में उल्लिखित हैं तथा उनके अपने शास्त्र और सिद्धान्त हैं। इनका अन्य शास्त्र, सम्प्रदाय व आचार्यों से सम्बन्ध भी है। अतः अद्वैत वेदान्त के आचार्य गौडपाद के काल-निर्णय के प्रसङ्ग में गौडपाद नामधारी अन्य आचार्यों और उनसे सम्बद्ध विषयों का प्रसङ्ग भी यहाँ अवलोकनीय है। इस प्रस्तुत विवरण के माध्यम से माण्डूका के लेखक के काल और इतिवृत्त का स्पष्टतर प्रकाशन हो सकेगा।

(अ) पतञ्जलि एवं गौडपाद

रामभद्र दीक्षित के मतानुसार गौडपाद पतञ्जलि के साम्प्रदायिक शिष्य

१. वेदान्त दर्शनर इतिहास, पृ. १४७-८३.
२. भाद, पृ. ५०२.
३. भाद-११, पृ. ४५२ (पाद टिप्पणी).
४. बौवे, पृ. २२.
५. सर्वदर्शनसंग्रह, परिशिष्ट.
६. Pandey, Sangamlal, **Pre-Shamkara Advaita Philosophy**, p. 59.
७. (a) पतञ्जलि-चरित, पृ. ३०५.

(b) वैद्य, शी.वे. राधाकृष्ण शास्त्री द्वारा प्राचीन शंकरविजय आदि ग्रन्थों से संकलित सामग्री के आधार पर प्रणीत रचना श्रीशंकरविजयमकरन्द में यद्यपि प्रधान रूप से

थे। इन्होंने पतञ्जलि के पर्याप्त अनन्तर, महाभाष्य का प्रचार-प्रसार नष्ट हो जाने पर, अपने प्रिय शिष्य चन्द्राचार्य के सहयोग से उसका जीर्णोद्धार किया था। चूंकि पतञ्जलि का काल विवादास्पद है^१ इसलिए वह गौडपाद के काल-निर्धारण की समस्या का कोई निश्चित समाधान करने में सहयोगी नहीं बन सकता।

पतञ्जलि और गौडपाद में साम्प्रदायिक सम्बन्ध का प्रसङ्ग इसलिए भी उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि दोनों के दार्शनिक सम्प्रदाय सर्वथा भिन्न हैं। जहाँ तक **माण्डूका** के लेखक गौडपाद के अतिरिक्त इसी नाम के अन्य आचार्यों का प्रश्न है, उनसे पतञ्जलि का सम्बन्ध हो सकता है, किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ की दृष्टि से यह विचार यहाँ अप्रासङ्गिक है।

(आ) गौडपाद और सांख्यकारिका

कामेश्वर मिश्र^२ ने ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित **सांख्यकारिका** (१५० ई.)^३ का व्याख्याकार गौडपाद को बताया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गौडपाद के नामधारी अनेक व्यक्तित्व हो चुके हैं और उनकी रचनाएँ भी विषय और सिद्धान्त की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए **माण्डूका** का रचनाकार ही **सांख्यकारिका** का व्याख्याकार गौडपाद है- यह कहना कठिन है। अतः इस प्रसङ्ग में उदयवीर शास्त्री का मत^४ समीचीन प्रतीत होता है जो **माण्डूका** के लेखक और **सांख्यकारिका** के टीकाकार में स्पष्टरूप से भेद को स्वीकार करता है।

शङ्कराचार्य का ही जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है तथापि उनके पूर्वचार्यों का विवरण प्रस्तुत करने के क्रम में पतञ्जलि, गौडपाद एवं गोविन्दपाद का विवरण भी पृ. ११-२५ में उपलब्ध होता है। इससे यह सूचना मिलती है कि वेदान्त की परम्परा में गौडपाद से पूर्ववर्ती आचार्य पतञ्जलि हुए हैं।

१. इतिहास की दृष्टि से पतञ्जलि के काल-विषयक भिन्न-भिन्न मत उपलब्ध होते हैं। रामभद्र दीक्षित (**पतञ्जलिचरित**, पृ. ३०८-९) के मतानुसार गौडपाद पतञ्जलि के साम्प्रदायिक शिष्य थे। उनके कथनानुसार- भारतीय तिथिलेख शुंगवंश का आरम्भ लगभग १२०० ई.पू. मानता है। इस वंश का संस्थापक पुष्यमित्र था। पतञ्जलि को महाभाष्य के कतिपय प्रयोगों **इह पुष्यमित्रं याजयामः...** इत्यादि के अनुसार पुष्यमित्र का समकालिक स्वीकार किया जा सकता है। उदयवीर शास्त्री इस मत का खण्डन करते हुए यह कहते हैं कि पतञ्जलि का पुष्यमित्र के साथ गठजोड़ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। पतञ्जलि का काल इस काल के कतिपय शताब्दी पूर्व ही माना जाना चाहिए। शास्त्री, उदयवीर, वेदइ, पृ. ३१०.
२. **ब्रसूशाभा, चतुःसूत्री**, पृ. ३८.
३. ऋषि, उमाशङ्कर शर्मा, **सर्वदर्शनसंग्रह**, अनुक्रमणिका.
४. **सांख्य दर्शन का इतिहास**, गौडपाद प्रसंग, पृ. ४०५-६.

२. गौडपाद-प्राक् वेदान्त-साहित्य

पूर्व पृष्ठों में गौडपाद के परिचय एवं काल के बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। इनमें से काल को कतिपय पूर्वोत्तर पक्षों के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्रसङ्गानुसार यहाँ अद्वैत वेदान्त के आचार्य गौडपाद और उनकी प्रधान रचना **माण्डूका** ही मुख्य विवेच्य है। **माण्डूका** का आधार **माण्डूउप** है। इसलिए इस आचार्य का उप साहित्य से साक्षात् सम्बन्ध स्थापित होता है। इसके साथ ही इस आचार्य के प्रादुर्भाव से पूर्व वेदान्त का आधारग्रन्थ **ब्रसू** लिखा जा चुका था, इसलिए उससे भी इस आचार्य का सम्बन्ध होना चाहिए।

(अ) गौडपाद एवम् उपनिषद्

वेदान्त दर्शन का उप^१ से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। उप की गणना वेदान्त-दर्शन की प्रस्थानत्रयी^२ में की जाती है। इन्हें वेदान्त दर्शन का श्रुतिप्रस्थान स्वीकार किया जाता है। वस्तुतः उप में सत्य-सम्बन्धी इतने सिद्धान्त हैं, तत्त्व-सम्बन्धी मान्यताओं में इतनी विविधता है कि कोई भी दर्शन-सम्प्रदाय (आस्तिक अथवा नास्तिक) उनमें अपना अभिलषित सिद्धान्त ढूँढ़ सकता है। उप के मूल विचार को सूत्रबद्ध करने वाले **ब्रसू** तथा उस पर लिखे गए भाष्य भी उप के इसी अपरिमित महत्त्व की पुष्टि करते हैं।

भारतीय दर्शन विभिन्न सम्प्रदायों पर उप का व्यापक प्रभाव इस बात से भी स्पष्ट होता है कि बिना किसी अपवाद के सभी वैदिक दर्शन-सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों का आदि स्रोत उप को मानते हैं तथा अपने पक्ष की पुष्टि हेतु उप-मन्त्रों

१. उप की ऐतिहासिकता, संख्या, रचनाकाल आदि के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। प्रथमतः इन्हें ऐतिहासिक कालक्रमानुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- (क) प्राचीन, (ख) मध्यकालीन (ग) अर्वाचीन। द्वितीयतः विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सूचनानुसार इनकी संख्या भी भिन्न है। **उपनिषद्-वाक्य महाकोष** में २२३ उप के नाम प्राप्त होते हैं। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित **कल्याण** के उप अंक में २२० उप के नाम प्राप्त होते हैं। **मुक्तिकोपनिषद्** में इनकी संख्या १०८ उल्लेखित है। प्राचीन उप में ११ उप प्रधान माने गये हैं, उनमें से भी १० ऐसे उप हैं जिन पर शङ्कराचार्य ने भाष्य लिखा है। ये हैं- ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डू, प्रश्न तैत्तिरीय, ऐतरेय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य। इनमें भी **छान्दोग्य** और **बृहदारण्यक** सबसे प्राचीन माने जाते हैं।

२. 'प्रस्थान' का अर्थ है- जिनके ऊपर ब्रह्मविद्या आधारित है (प्रतिष्ठति ब्रह्मविद्या येषु तत् प्रस्थानम्) त्रय का अर्थ है- तीन। इस प्रकार उप (श्रुति), गीता (स्मृति) व ब्रसू (न्याय) तीन प्रस्थान हैं जिन पर वेदान्त दर्शन आधारित है।

को उद्धृत करते हैं। इनमें वेदान्त तो सीधे उप पर आधारित है।^१ इन वैदिक दर्शनों के अलावा, आधुनिक शोधकर्ताओं ने अवैदिक कहे जाने वाले चार्वाक, बौद्ध^२ एवं जैन विचारधाराओं का भी मूल उप में खोजा व उन्हें सिद्ध किया है।

उप में प्राप्त वैचारिक विविधता उन्हें सार्वभौम स्थान दिलाती है। अद्वैत वेदान्त के प्रणेता, आचार्य गौडपाद का दर्शन इन्हीं औपनिषदीय विचारों का विकसित रूप है। भारतीय दर्शन के अन्य विचारकों ने भी अपने ग्रन्थों में गौडपादीय दर्शन के इस औपनिषदीय स्वरूप की पुष्टि की है।^३

गौडपादाचार्य को जो वैदिक-साहित्य उपलब्ध था, उसमें **बृहदारण्यक-उप**, **ब्रसू** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु उपलब्ध इस वैदिक-साहित्य में से आचार्य सर्वाधिक प्रभावित उप से हुए और उप के अन्तर्गत भी उनकी रुचि विशेषकर **माण्डूउप** में रही। **माण्डूउप** जो स्वयं विषय-वस्तु की दृष्टि से अत्यन्त संक्षिप्त ग्रन्थ है^४, वेदान्त के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। आचार्य गौडपाद अपने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन इस **माण्डूउप** पर स्वतन्त्र-कारिका (**माण्डूका**) लिखकर करते हैं।^५ आधुनिक विचारक चन्द्रधर शर्मा के मतानुसार गौडपादाचार्य का दर्शन **माण्डूक्य**,

१. उल्लेखनीय हैं कि मीमांसा दर्शन उप की कर्मकाण्डमूलक व्याख्या करता है तथा वेदान्त दर्शन ज्ञान-मूलक विवेचना प्रस्तुत करता है।
२. प्रो. बर्ग व प्रो. रानाडे के मतानुसार अजातवाद, शून्यवाद का मूल **छान्दोग्योपनिषद्** में उस मन्त्र में प्राप्त होता है जिसके अनुसार सृष्टि के आदि में एकमात्र असत् की सत्ता थी और बाद में उससे सत् की सृष्टि हुई (असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत, ६.२.१) **कठोपनिषद्** के (येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येकं नायमस्तीति चैके, (१/१/२०) मन्त्र में बौद्धों के अनात्मवाद के बीज उपलब्ध हैं।
३. (a) शर्मा चन्द्रधर, **बौद्ध**, पृ. १०४.
 (b) श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, **अवेधू**, पृ. १९-२०.
 (c) दासगुप्ता, एस.एन. **भारतीय दर्शन का इतिहास-१**, पृ. ४२७-२८.
 (d) राधाकृष्णन्, भाद-११, पृ. ४००.
 (e) Roy. S.S., **Heritage Sankara**, p. 57.
४. **माण्डूउप** का सम्बन्ध अथर्ववेद की **माण्डूक्यशाखा** से है। इसमें केवल १२ मन्त्र हैं।
५. **माण्डूउप** की आधी-अधूरी तीन व्याख्याएँ मिलती हैं। कूरनारायण की विशिष्टाद्वैतवादी, मध्व की द्वैतवादी पुरुषोत्तम की शुद्धाद्वैतवादी। Conio, Caterina, **The Philosophy of Mandukya-karika**, p. 199.

बृहदारण्यक और छान्दोग्य पर तो निर्भर है ही साथ ही उन्होंने ब्रसू और गीता का भी आश्रय लिया है।

(आ) माण्डूक्यकारिका एवं ब्रह्मसूत्र

भारतीय दर्शन के इतिहास में वेदान्त का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इस मत को सर्वप्रथम सिद्धान्त रूप में समन्वित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय ब्रसू को है।

वेदान्त के इतिहास में विकास की दृष्टि से ब्रसू के बाद और आचार्य शङ्कर की रचना ब्रसूशाभा से पहले, जिस प्रतिष्ठित आचार्य व ग्रन्थ का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह है आचार्य गौडपाद व उनकी रचना माण्डूका। यद्यपि ब्रसू का भी प्रधान प्रतिपाद्य ब्रह्म है। तथापि उसकी प्रक्रिया कुछ इस प्रकार की है जिससे उसे निर्विवादरूप से अद्वैतवादी या द्वैतवादी नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए भिन्न-भिन्न भाष्यकारों ने उसपर भिन्न-भिन्न भाष्य लिखे। किन्तु वेदान्त या ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत जिस अद्वैतवाद की मान्यता है उसका प्रारम्भ स्पष्टतः गौडपाद ने किया है। माण्डूका अद्वैत वेदान्त की आधार-शिला मानी जाती है। इस ग्रन्थ के माध्यम

१. बौवे, पृ. १०४.

२. (a) इस ग्रन्थ को आगम-शास्त्र, माण्डूक्यवार्तिक और वेदान्तमूल इत्यादि नामों द्वारा अभिहित किया जाता है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ४ प्रकरणों (आगम, वैतथ्य, अद्वैत और अलातशान्ति) में विभक्त है जिनमें क्रमशः २९, ३८, ४८ व १०० श्लोक हैं। माण्डूका के सम्बन्ध में दो विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् सम्पूर्ण माण्डूका को एक ही ग्रन्थ मानते हैं जिसके ४ महत्वपूर्ण भाग हैं। किन्तु विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार उपर्युक्त चारों प्रकरण एक ही ग्रन्थ के भाग नहीं हैं वे ४ स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अवेधु पृ. १६-१७.

(b) Conio Caterina के मतानुसार ब्रसू से ज्यादा माण्डूका को कुछ लोग महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि ब्रसू की व्याख्या में कई भाष्य लिखे गये जबकि माण्डूका एक भाष्य के माध्यम से इतनी प्रसिद्ध हुई। *The Philosophy of Mandukya-karika, Introduction.*

३. आचार्य गौडपाद ब्रसू के स्वरूप व उसके सिद्धान्त-पक्ष से परिचित थे अथवा नहीं, यह वस्तुतः एक स्वतन्त्र शोध का विषय है क्योंकि इस विषय पर स्व गौडपाद की रचना माण्डूका में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। अन्तःप्रमाण के अतिरिक्त बाह्य प्रमाणों के रूप में, गौडपाद व उसके दर्शन पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययनकर्ताओं के ग्रन्थों में भी वस्तुतः इस समस्या के सन्दर्भ में कोई विचार नहीं किया गया है जबकि इतिहासदृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है।

से आचार्य ने पहली बार वेदान्त के इतिहास में ब्रसू से पृथक् मात्र माण्डूउप का आश्रय लेते हुए स्वतन्त्ररूप में अपने विचारों का प्रतिपादन किया तथा अद्वैत-वेदान्त को एक व्यवस्थित दार्शनिक निकाय के रूप में प्रतिष्ठित किया।

पृष्ठभूमि की इस विभिन्नता से प्रभावित ग्रन्थद्वय (ब्रसू व माण्डूका) का स्वरूप भी स्वयं में विशिष्ट प्रकार का है। ब्रसू (जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है) सूत्र-शैली में लिखा गया है। इसका सूत्रात्मक स्वरूप स्वयं इस बात का द्योतक है कि श्रुतियों में तत्त्व-सम्बन्धी जिन बातों को बहुत विस्तार से कहा जा चुका है सूत्रकार ने उन प्रतिपाद्य-पुष्पों को मात्र सूत्रों के माध्यम से एक दर्शन-माला का स्वरूप दिया है। जबकि गौडपाद की कारिका चूँकि सिद्धान्त विशेष (अद्वैत) की स्थापना के उद्देश्य से लिखी गई है इसलिए वह विषय-वस्तु के प्रतिपादन अथवा प्रस्तुतीकरण में अधिक स्पष्ट है तथा आचार्य को इसमें अपनी बात कहने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ है। एक ओर जहाँ ब्रसू के समन्वयात्मक एवं सूत्रात्मक स्वरूप ने मन्तव्य की स्पष्टता हेतु कालान्तर में अनेक भाष्यों की आवश्यकता को जन्म दिया वहीं दूसरी ओर गौडपाद के ग्रन्थ का प्रभाव इतना व्यापक था कि परवर्ती आचार्य शङ्कर ने उप पर भाष्य लिखने के क्रम में माण्डूउप पर भाष्य न लिखकर माण्डूउप पर आधारित माण्डूका पर भाष्य लिखकर उसके सम्मान में श्रीवृद्धि की।

ग्रन्थ के स्वरूप की भिन्नता का एक आयाम, उसकी तर्कना-पद्धति है। सूत्रकार ब्रसू में जिस तर्कना-पद्धति का प्रयोग करता है उसे परिश्रान्ति-निरूपण विधि कहते हैं। जबकि गौडपाद का दर्शन अथवा उनकी कारिका द्वन्द्वन्याय का अनुगमन करती है। अर्थात् ब्रह्मसूत्रकार जहाँ इस विधि का प्रयोग, स्पष्टरूप से विपरीत मतों का खण्डन करने में करता है तथा स्वयं के प्रतिपाद्य-विषय को प्रामाणिक बनाता है। वहीं गौडपाद ने अन्य दर्शनों का सीधे खण्डन न कर, उनका प्रयोग 'स्व-सिद्धान्त' स्थापना की दृष्टि से क्रमिक सोपान के रूप में किया है। इस

१. इस विधि में समस्त सम्भावित विपरीत मतों का खण्डन कर प्रामाणिक विषय को प्रामाणिक मान लिया जाता है। सांख्य के अचेतन-कारणवाद का खण्डन कर ब्रसू में चेतनकारणवाद की स्थापना इसी विधि से की गई है। मिश्र, हृदयनारायण, अर्जुन, अवेदा, पृ. २९.
२. The Dialectic was thus a rejection of views by *reductio ad absurdum* argument. Technically this was known as *Prasanga*. Singh. Jaidev, *The concept of Buddhist Nirvana*, Introduction, p. 18.

कथन की पुष्टि में ग्रन्थद्वय (ब्रसू, माण्डूका) में उल्लिखित 'बौद्ध दर्शन' का स्वरूप द्रष्टव्य है। इसमें ब्रह्मसूत्रकार ने बौद्धदर्शन के सिद्धान्त की समीक्षा का प्रधान बिन्दु, क्षणभङ्गवाद स्वीकार किया है किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध जो आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं वे बौद्धों के प्रति उनके एकाङ्गी दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इसके विपरीत माण्डूका का (सन्दर्भ-विशेष में किया गया) अध्ययन, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि आचार्य गौडपाद बौद्धों के प्रति अधिक सहनशील थे। उन्होंने मत विशेष को मात्र तार्किक दृष्टि से उल्लिखित नहीं किया बल्कि उससे अपने सिद्धान्त की सङ्गति के प्रश्न पर भी विचार किया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध पक्ष को प्रस्तुत करने में उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के प्रयोजन, प्रतिपाद्य विषय व शैली में भिन्नता स्पष्ट है।

३. गौडपाद का कृतित्व

आचार्य गौडपाद के आविर्भाव-काल की तरह ही उनकी कृतियों के विषय में भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है।^१ जैकोबी^२ के मतानुसार उन्होंने उत्तरगीता पर भाष्य लिखा था जो वाणीविलास प्रेस श्रीरङ्गम् से प्रकाशित है। इसके अलावा गौडपाद को ईश्वरकृष्णविरचित सांख्यकारिका के टीकाकार^३ तथा पतञ्जलिकृत व्याकरणमहाभाष्य के जीर्णोद्धारकर्ता के रूप में भी जाना जाता है^४। उत्तरतापिनी उप व दुर्गासप्तशती की व्याख्या आदि कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ भी गौडपाद के नाम से मिलते हैं।^५

इन सभी विवादास्पद रचनाओं से परे माण्डूका आचार्य गौडपाद की एक ऐसी रचना है जिसके सन्दर्भ में सभी विद्वान् एकमत हैं तथा जिसमें प्रसङ्गानुसार बौद्ध दर्शन के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

१. द्र.- शास्त्री, उदयवीर, सांख्य दर्शन का इतिहास (गौडपाद-प्रसंग) पृ. ४०५-०६ एवं मिश्र, कामेश्वर विरचित ब्रसूशाभा चतुःसूत्री, पृ. ३८.
२. उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन-११, पृ. ९५७ पर उल्लिखित मत.
३. मिश्र, कामेश्वर, ब्रसूशाभा, चतुःसूत्री, पृ. ३८.
४. द्र.- कविराज, गोपीनाथ कृत 'अच्युत' नाम से प्रकाशित हिन्दी शाङ्कर-भाष्य की भूमिका, पृ. २२ में, रामकृष्ण दीक्षित के पतञ्जलिचरित नामक ग्रन्थ की सूचना मिलती है जिसमें पृ. ३०५ पर गौडपाद का प्रसंग द्रष्टव्य है।
५. शास्त्री, उदयवीर, सांख्य दर्शन का इतिहास, पृ. ४०५-४०६.

माण्डूक्यकारिका : कलेवर एवम् प्रतिपाद्य

उप साहित्य में **माण्डूउप** प्रतिष्ठित उप है। माण्डूउप का सम्बन्ध अथर्ववेद की 'माण्डूक्यशाखा' से है। इसमें केवल बारह मन्त्र हैं। इस उप पर गौडपाद ने दो सौ पन्द्रह श्लोकों की एक टीका लिखी है जिसे वेदान्त शास्त्र के इतिहास में **माण्डूका** के नाम से जाना जाता है। **माडूक्योपनिषद्** पर गौडपादविरचित यह माण्डूका अद्वैत-सिद्धान्त का प्रथम उपलब्ध निबन्ध-ग्रन्थ कहलाती है।

गौडपाद विरचित **माण्डूका** चार प्रकरणों में विभक्त है- (i) आगम प्रकरण (ii) वैतथ्य प्रकरण (iii) अद्वैत प्रकरण (iv) अलातशान्तिप्रकरण। इनमें क्रमशः २९, ३८, ४८ व १०० कारिकाएँ हैं। लेखक ने इसके आगमप्रकरण में **माण्डूउप** के सूत्रों की व्याख्या करते हुए ओंकारस्वरूप अद्वैत-आत्मतत्त्व का निरूपण किया है। द्वितीय वैतथ्यप्रकरण में जगत्-प्रपंच के मिथ्यात्व को युक्तियों द्वारा सिद्ध किया गया है। तृतीय अद्वैत प्रकरण में श्रुतियों तथा प्रबल युक्तियों के आधार पर अजातवाद व अस्पर्शयोग का समर्थन करते हुए उपनिषद्-निरपेक्ष आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। चतुर्थ अलातशान्तिप्रकरण है जो बौद्ध सन्दर्भ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सद्वाद, असद्वाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद आदि मतों की समालोचना इस प्रकरण का आकर्षक पहलू है।

४. गौडपाद का दर्शन

(अ) अजातवाद

तत्त्वमीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष कार्य-कारणभाव है। सामान्यतया यह माना जाता है कि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। कार्य-कारण भाव का कोई भी स्वरूप माना जाए, कार्य के प्रादुर्भाव के लिए कारण का पूर्वभाव आवश्यक है। कारण से किस नियम के अनुसार कार्योंत्पत्ति होती है इस विषय पर भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में परस्पर मतभेद हैं। किन्तु कारण की सत्ता अथवा उपस्थिति एक आवश्यक एवं सामान्य तत्त्व है।

१. Conio Caterina के मतानुसार **माण्डूउप** को श्रुति तथा साधना के एक उपाय के रूप में स्वीकार किया जाता है, यद्यपि उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, Introduction.

गौडपाद के दार्शनिक मत को यदि किसी एक शब्द से व्यक्त किया जा सकता है तो वह शब्द है- अजातवाद। यही शब्द और मत भारतीय दर्शन के इतिहास में गौडपाद की स्वतन्त्र पहचान कराने के लिए प्रसिद्ध है। इस मत के अनुसार, ब्रह्म अथवा परमतत्त्व अपरिणामी, कूटस्थ और नित्य है। अतः यह न स्वयं उत्पन्न होता है, न इससे किसी की उत्पत्ति होती है। अर्थात् यह सभी दृष्टियों से उत्पत्ति और विनाशशील नहीं है। बाह्य जगत् अथवा प्रपञ्च और इसकी प्रतीति अर्थात् सत्ता के रूप में अनुभूति का कारण भ्रान्ति है। दूसरे शब्दों में, व्यवहार की दृष्टि से इस प्रतीति का कारण मन का स्पन्दन है। मन की अवस्थाएँ जाग्रत्, स्वप्न आदि हैं और इन अवस्थाओं से ऊपर उठने पर जगत् की मिथ्या प्रतीति का भी स्वतः निवारण हो जाता है। यह मन अथवा चित्त भी वस्तुतः उत्पन्न नहीं होता और इसलिए इसके विनाश का भी कोई औचित्य नहीं है।

इस प्रकार परमतत्त्व चित्त और विषय सभी पर अजातवाद अथवा अनुत्पत्तिवाद लागू होता है। पारमार्थिक सत्य पूर्ण और परम होने के कारण अजात है और इस परम तत्त्व के अतिरिक्त चित्त आदि सभी मात्र व्यावहारिक होने के कारण अजात हैं। अतः अजात ही सत्य है।

आचार्य ने अजातवाद की साधक युक्तियाँ भी प्रस्तुत की हैं। इनमें से प्रधान यह है कि जो सत् है उससे किसी की उत्पत्ति सम्भव नहीं है क्योंकि तब उसका सत् का स्वरूप प्रभावित होता है। परमसत् के अतिरिक्त कुछ है नहीं इसलिए जिन वस्तुओं की व्यवहार की दृष्टि से उत्पत्ति बताई जाती है वे स्वयमेव उत्पन्न हो नहीं सकती। इसी प्रकार अन्य युक्तियाँ भी इस मत को पुष्ट करती हैं।

उपर्युक्त अजातवाद के अन्तर्गत ही गौडपाद की अन्य दार्शनिक मान्यताएँ और अवधारणाएँ भी हैं। एक मुख्य विशेषता गौडपाद के दर्शन की यह है कि परमतत्त्व के साक्षात्कार के उपायों का केन्द्र-बिन्दु वह चित्त को मानते हैं। यह मान्यता

१. (क) सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः।

तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते।।

असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते।

वय्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते।। माण्डूका, ३/२७-२८.

(ख) अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै।

जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते।। वही, ४/१३.

(ग) ३/२, १९, २० इत्यादि।

परम्परागत वेदान्त की विचारधारा से भिन्न प्रतीत होती है तथा आगे यथास्थान विचार किया जाएगा कि इस विशिष्टता के लिए गौडपाद, बौद्ध विचारधारा के ऋणी हैं अथवा नहीं।

(आ) ब्रह्म का स्वरूप

वेदान्त दर्शन की अद्वैतवादी शाखा के प्रथम व्याख्याता के रूप में गौडपाद सर्वसिद्ध है। यद्यपि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ परमसत् अद्वैत क्यों और कैसे, के विषय का प्रतिपादन करता है तथापि इसका तृतीय प्रकरण (अद्वैत) युक्तियों के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने के कारण विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत अद्वैत प्रकरण में गौडपाद परमसत् के अद्वैत स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं- ब्रह्म जन्मरहित, निद्रारहित, स्वप्नशून्य, नामरूप से रहित, नित्य, प्रकाशस्वरूप और सर्वज्ञ है; उसमें किसी प्रकार की कोई क्रिया नहीं है।^१

कारिकाकार ने ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करने में जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, उसे मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (i) भावात्मक शब्दावली, (ii) निषेधात्मक अथवा अभावात्मक शब्दावली।

भावात्मक शब्द, जिसके द्वारा गौडपाद ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हैं, वह है सकृद्विभातम् अर्थात् ब्रह्म नित्य, प्रकाशस्वरूप अथवा चिद्रूप है। (ii) यद्यपि यह सर्वज्ञ शब्द ज्ञाता या कर्ता का बोधक है और इसका सम्बन्ध क्रिया से है किन्तु ब्रह्म को स्वरूपतः निष्क्रिय कहने वाले वेदान्ती ब्रह्म की सर्वज्ञता का तात्पर्य उसके स्वरूप की ज्ञानरूपता से करते हैं। उनके अनुसार कोई ज्ञान, क्रिया तब बनता है जब कोई बाह्य विषय हो और उसका ज्ञान प्राप्त किया जाए किन्तु आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना, क्रिया नहीं है। अतएव ब्रह्म, चिद्रूप अथवा शुद्ध ज्ञानरूप है। उल्लेखनीय है कि बौद्ध विज्ञानवादियों ने विज्ञानतत्त्व को भी विशुद्ध चिद्रूप ही स्वीकार किया है।

१. अजमनिद्रमस्वप्नमनामकरूपकम्।

सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथंचन। माण्डूका, ३/३६; इस कारिका के अलावा ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करने वाली अन्य कारिकाएँ हैं- ३/२, ८, १२, १९, २०, २१, २२, २६, २७, २८, ३७, ३८, ३९।

निषेधात्मक शब्दों के अन्तर्गत, आचार्य ने ब्रह्म को अज, निद्रारहित, स्वप्नशून्य, नामरूप से रहित, क्रियारहित, वाणीव्यापार से रहित, चिन्तन से परे, शान्त, समाधिरूप, अचल, निर्भय आदि विशेषणों से युक्त स्वीकार किया है। यद्यपि इन सारे विशेषणों के मूल में क्रिया है तथापि वह ब्रह्म स्वरूपतः इनसे परे, क्रियारहित, निष्क्रिय अर्थात् अज है।

(इ) जीव का स्वरूप

गौडपाद के अनुसार स्वरूपतः अज ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद होना सम्भव नहीं है। माया के जादू से भेद की मिथ्या प्रतीति हो सकती है (माण्डूका, ३/१९, २०)। यह संसारी जीव, ऐसी ही एक मिथ्या प्रतीति का परिणाम है (वही, ३/३)। घटाकाश के दृष्टान्त के आधार पर गौडपाद जीव को न तो आत्मा से उत्पन्न मानते हैं और न ही उसका अंश स्वीकार करते हैं (वही, ३/३, ५, ७, ८)। व्यवहार के स्तर पर रूप, कार्य और संज्ञा की दृष्टि से चेतना में जो भेद प्रतीत होता है उसका निषेध करते हुए गौडपाद ने जीव को परमात्मास्वरूप ही स्वीकार किया है (वही, ३/६)।

(ई) जगत् का स्वरूप

गौडपाद ने माण्डूका में जगत् की उत्पत्ति के अनेक प्रयोजन उद्धृत किये हैं जो विभिन्न दार्शनिकों के द्वारा प्रतिपादित किए जाते हैं और वे कहते हैं कि इन मतों के प्रतिपादक स्वयं एक दूसरे का खण्डन करते हैं। वेदान्त मत में यह परमात्मा का स्वभाव है जिससे जगत् उत्पन्न और लय होता हुआ-सा प्रतीत होता है (माण्डूका, ३/३, १०, १५, २४)। अन्यथा जगत् की न उत्पत्ति हुई और न जगत् कहीं है (वही, ३/२५)। गौडपाद जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन स्वप्न व जाग्रदवस्था के दृष्टान्तों के आधार पर करते हैं (माण्डूका, ३/२९, ३०)।

उप की रुचि परमतत्त्व के प्रतिपादन में और ब्रह्मात्मैक्य-भाव के निरूपण में अधिक थी। वहाँ जगत् के मिथ्यात्व और जीवों के नानात्व का निषेध करना महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं माना गया है। ब्रह्मसूत्रकार ने ब्रह्म को जगत् का कारण स्वीकार किया है। जबकि गौडपाद ने न तो जगत् की सत्ता ही स्वीकार की और न ही ब्रह्म को उसका कारण बताया। उन्होंने अद्वैतवाद के इतिहास में पहली बार जगत् का मिथ्यात्व मुखरित स्वर में सिद्ध किया।^२

२. गौडपाद जिस द्वैत को स्वीकार कर निषेध करते हैं, वह वास्तव में बाह्य पदार्थों की चित्त से स्वतन्त्रता और उनकी नित्यता है। Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 124.

(उ) ब्रह्म - जीव का सम्बन्ध

गौडपाद, माण्डूका में ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध का विवेचन आकाश व घटाकाश के दृष्टान्त के आधार पर करते हैं (३/३, ४, ६, ५-९, १३, १४)। उनके मतानुसार परमात्मा, आकाश के समान सूक्ष्म, निरवयव और सर्वव्यापक है। किन्तु माया के प्रभाव से, जिस प्रकार महाकाश, घट आदि उपाधियों के द्वारा घटाकाश के रूप में अवच्छिन्न हुआ-सा जान पड़ता है; उसी प्रकार शरीरादि उपाधियों के सम्पर्क से परब्रह्म ही भिन्न-भिन्न रूपों में जीव-भाव से प्रादुर्भाव हुआ-सा आभासित होता है। किन्तु व्यवहार की इस मिथ्यादृष्टि का विनाश हो जाने पर, उपाधि रूप घट अथवा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप (अद्वैतरूप) का ज्ञान हो जाता है। आशय यह है कि स्वरूप से अज ब्रह्म की जीव के रूप में न तो उत्पत्ति होती है और न ही लय होता है; जीव व ब्रह्म में परमार्थतः अभेद का सम्बन्ध है।

(ऊ) आत्मज्ञान में समाधि की भूमिका

गौडपाद के अनुसार दिखाई देने वाला यह सम्पूर्ण द्वैत मन की कल्पना है। इसलिए वह कहते हैं कि अद्वय मन स्वप्न तथा जाग्रदवस्था दोनों में समानरूप से द्वैत बनकर भासता है। अतएव उन्होंने चैतन्य (चित्त) की चार अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए उनके परस्पर भेद को समझाया है। माण्डूका में गौडपाद समाधि का उल्लेख (३/३४, ३५) आत्मज्ञान के सन्दर्भ में करते हुए कहते हैं कि- यद्यपि चारों अवस्थाओं में चित्त की स्थिति (स्वरूप) भिन्न-भिन्न होती है और हमें इसका ज्ञान होना चाहिए तथापि आत्मज्ञान के लिए विशेषरूप से हमें सुषुप्तावस्था के चित्त का ज्ञान होना चाहिए जिसे समाधि कहते हैं। वस्तुतः उसका सम्बन्ध इसी सुषुप्तावस्था से है। सुषुप्तावस्था चित्त की ऐसी अवस्था है जिसमें ज्ञेय और ज्ञान दो नहीं रहते बल्कि विशुद्ध अहं (चित्त) का बोध रह जाता है। गौडपाद के अनुसार यह पूर्णशान्ति (आत्मानुभूति) की अवस्था नहीं है बल्कि वह इससे भी परे चेतना के चौथे स्तर तक जाने की बात कहते हैं, जहाँ इस विशुद्ध अहं का भी लोप हो जाता है। यही तुरीयावस्था अथवा मोक्षावस्था है।

५. माण्डूक्यकारिका में बौद्ध सन्दर्भ

वेदान्त के इतिहास में गौडपाद कृत माण्डूका को अद्वैत मत के प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ होने का श्रेय प्राप्त है।^१ इस कारिका-ग्रन्थ में वेदान्तीय अद्वैतवाद की

१. (a) उपनिषद्कार मनीषियों के पश्चात् उप की ऐकेश्वरवादी, विचारधारा का निरूपण सम्भवत आचार्य गौडपाद ने ही सर्वप्रथम किया था। उन्होंने स्वयं भी किसी अन्य

स्थापना के साथ ही जिस अन्य दर्शन-सम्प्रदाय का प्रधान रूप से उल्लेख है, वह- बौद्ध दर्शन है। यद्यपि इसके प्रथम तीन प्रकरणों में, बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख मिलता है तथापि गौडपाद ने अपनी इस रचना के अलातशान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण में १०० कारिकाओं के प्रतिपाद्य विषय के अन्तर्गत, आवश्यकतानुसार बौद्ध दर्शन का उल्लेख किया है।^१ यहाँ इस प्रकरण से कतिपय उन्हीं कारिकाओं का चयन किया गया है जिनमें साक्षात् रूप से बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्दों, सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है अथवा जिन कारिकाओं में बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ की गई हैं। इसका विवरण कारिकाशः इस प्रकार है- ४/ १, ५, ९, १०, १५, २२, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ४४, ४५, ५०, ५१, ५२, ५४, ५७, ६२, ७२, ७३, ७४, ८०, ८१, ८३, ८४, ८८, ९८ और ९९।

(अ) पारिभाषिक शब्द

माण्डूका में बौद्ध दर्शन से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दों का बाहुल्य है।^२ संक्षेप में कुछ उल्लेखनीय शब्द ये हैं- विज्ञान^३, स्वभाव^४, संघात^५, धर्म^६, शून्य^७ आदि। रचनाकार द्वारा बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि वह बौद्ध दर्शन से मात्र सामान्य परिचय नहीं रखता था। उसने उस शास्त्र के

अद्वैतवादी ग्रन्थ या विज्ञान का वर्णन नहीं किया है। माण्डूका के अतिरिक्त अन्य कोई अद्वैतवादी उप टीका इससे पूर्व नहीं पाई जाती। यहाँ तक कि इस सम्बन्ध में बादरायण का भी उल्लेख नहीं किया गया है। इन सबसे यह स्पष्ट है कि आचार्य गौडपाद ही ऐकान्तिक अद्वैतवाद के प्रणेता थे।

दासगुप्ता, एस.एन., भारतीय दर्शन का इतिहास-१, पृ. ४२७.

(b) मिश्र, अर्जुन, अवेदा, पृ. ३५.

१. बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त माण्डूका में गौण रूप से सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, लोकायत, शैव, पाशुपत आदि सम्प्रदायों का भी उल्लेख है। तथापि अन्य दर्शनों के प्रस्तुतीकरण में गौडपाद उतने गंभीर नहीं हैं। Conia, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 154.
२. इसमें कोई सन्देह नहीं कि चतुर्थ प्रकरण (अलातशान्ति) में बौद्ध प्रभाव अन्य तीन प्रकरणों की अपेक्षा अधिक है। *Ibid*, p. 214.
३. समस्त पारिभाषिक शब्दों की सूची के लिए परिशिष्ट- ३ व ४ द्रष्टव्य.
४. ४/४५, ५०-५२.
५. १/९, ३/२२.
६. ३/३.
७. २/८, ४/१, ५, ६, ८, १०, २१, ३३, ४६, ५३, ५८, ६०, ९२, ९६, ९८, ९९.
८. ४/६७.

तकनीकी शब्दों का भी अभ्यास किया था। साथ ही इस प्रयोग से उनकी बौद्ध दर्शन के प्रति आस्था व रुचि का भी आभास मिलता है।

गौडपाद की बौद्ध दर्शन के प्रति दृष्टि और आस्था का एक प्रमाण कारिकाओं में बुद्ध विषयक अनेक उल्लेख हैं^१। इस समस्त सन्दर्भों का विश्लेषण करने पर आचार्य की दृष्टि में बुद्ध का यह व्यक्तित्व उभरता है-

जो समस्त धर्मों को अर्थात् बुद्धि-ग्राह्य जीव और जगत् रूपी पदार्थों को उसके अनादि अनंत रूप में जानता हो, जिसकी त्रिपुटी में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी का भेद नहीं है तथा जो स्वयं इस त्रिपुटी से परे, स्वभावतया प्रकाशरूप, ज्ञानी और मुक्त है, वह बुद्ध है।

ऐसे व्यक्तित्व वाले बुद्ध को आचार्य गौडपाद श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते हैं तथा उनकी वन्दना करते हैं-

ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्मान् यो गगनोपमान्।

ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदां वरम्॥ माण्डूका, ४/१

(आ) अन्य विवरण

माण्डूका में, ग्रन्थकार ने कहीं भी बौद्ध-मत के आचार्यों, ग्रन्थों व उनसे सम्बन्धित सम्प्रदायों का स्पष्टतः नामोल्लेख नहीं किया है। तथापि कारिकाओं में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों यथा- संघात (३/३), अजाति (४/४), विज्ञान (४/४५, ५०-५२) आदि के वर्गीकरण एवं विश्लेषण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान सम्प्रदायों सर्वास्तिवाद (हीनयान), योगाचार विज्ञानवाद एवं माध्यमिक शून्यवाद (महायान) को विचारार्थ स्वीकार किया है। जहाँ तक कारिकाओं में बौद्ध सिद्धान्तों के साक्षात् उल्लेख का प्रश्न है, वह एकमात्र-अस्पर्शयोग (४/२) है। तथापि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के आधार पर कहा जा सकता है कि वह बौद्ध दर्शन के अधोलिखित सिद्धान्तों से परिचित था-

संघातवाद (पारिभाषिक शब्द, संघात, ३/३), प्रतीत्यसमुत्पाद (पारिभाषिक शब्द, हेतुफलजाति, ४/४५), संस्कृत एवं असंस्कृत धर्म (पारिभाषिक शब्द, धर्म एवं आकाश, क्रमशः ४/१, ५, ६, ८, १० ... १/२, ३/४, ६, ९, १२), विज्ञानवाद (पारिभाषिक शब्द, विज्ञान, ४/४५, ५०-५२), स्वभाववाद (पारिभाषिक

१. ३/८, ४/१, १९, ३४, ३५, ३९, ४२, ७५, ७९, ८०, ८८, ९२, ९८, ९९.

शब्द, स्वभाव, १/९, ३/२२, परतन्त्र ४/२४), अजातवाद (पारिभाषिक शब्द, अजाति, ४/४), शून्यवाद (पारिभाषिक शब्द, अद्वय, ४/४५, ६२, शून्य ४/६७)।

माण्डूका का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों ने भी अपने विवेचन के अन्तर्गत गौडपाद और बौद्ध दर्शन के उक्त सम्प्रदायों के सम्बन्ध और प्रभाव को स्वीकार किया है।^१

(इ) शैली

विषय-वस्तु के प्रतिपादन का ढङ्ग अथवा उसकी विधि शैली कही जाती है। इस शैली के माध्यम से ही प्रत्येक शास्त्र अपने-अपने प्रतिपाद्य विषय का विवेचन करता है। आचार्यों द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों में उनकी इस सामान्य व विशेष शैली का यह भेद स्पष्टतः देखा जा सकता है। दर्शन के इतिहास में, नागार्जुन, शङ्कर जैसे कुछ प्रमुख अद्वैतवादी आचार्य हुए हैं जिन्होंने अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से सम्पूर्ण दर्शन-जगत् को अपना बहुमूल्य योगदान किया है।

दर्शन में अद्वैतवादी विचारधारा को स्वीकार करने वाले इन आचार्यों के समक्ष समस्या यह नहीं है कि वे अद्वैत तत्त्व की किस प्रकार व्याख्या अथवा सिद्धि करें। अपितु मुख्य समस्या यह है कि वे द्वैत अथवा व्यवहार की किस प्रकार ऐसी व्याख्या करें जिससे उनके अद्वैत तत्त्व की रक्षा हो सके। प्रायः सभी अद्वैतवादी, अद्वैत तत्त्व को अनिर्वचनीय, कार्यकारणभाव एवं प्रमाणमीमांसा से परे मानते हैं। ऐसी स्थिति में उस अद्वैत तत्त्व को शब्दों में व्यक्त करने, उसकी व्याख्या करने तथा उसकी सिद्धि में प्रमाण प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता वहाँ नहीं है। द्वैत की व्याख्या शब्दाधीन और प्रमाणगम्य होती है। अतः अद्वैतवादियों के लिए भी द्वैत के स्वरूप और अद्वय तत्त्व से उसके सम्बन्ध की व्याख्या ही मुख्य चुनौती है।

वेदान्तीय अद्वैतवाद के प्रणेता आचार्य गौडपाद ने द्वैत के स्वरूप की व्याख्या की इस समस्या का समाधान अपनी शैली विशेष के आधार पर करने का प्रयास किया है। गौडपाद के लिए अद्वैतवादी विचारधारा को स्वीकार करने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि उसमें द्वैतवाद के लिए कोई स्थान नहीं है बल्कि उनकी यह स्थापना है कि ये सारे द्वैतवादी दर्शन वस्तुतः अद्वैत की यात्रा के सोपान हैं। अतः

१. (a) Dr. Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 72, 73, 80, 84, 87, 88, 89, 94, 109.

(b) सिंह, ज्ञान्ती देवी, गौडपाद दर्शन : एक आलोचनात्मक अध्ययन।

(c) Bhattacharya, Bidhushekhar, *Agamsastra of Gaudapada*.

वे अपने दर्शन में किसी भी द्वैतवादी सम्प्रदाय का विरोध या खण्डन नहीं करते बल्कि अद्वैतवादी तत्त्वमीमांसा की इस यात्रा में अन्य द्वैतवादी सम्प्रदायों के सोपान निश्चित कर अन्ततः उन सभी का समाहार अपने अद्वैतवाद में करते हैं।

दूसरे शब्दों में, आचार्य गौडपाद ने अद्वैत की व्याख्या के प्रयोजन से द्वैत को ही विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है तथा उसी के अन्तर्गत तर्क व दृष्टान्त दिए हैं। गौडपाद से पूर्व वेदान्त के ग्रन्थों में श्रुति-आधारित तर्क की ही प्रधानता थी, स्वतन्त्र तर्क के उपयोग का स्थान और अवसर नहीं था अथवा आचार्य करना नहीं चाहते थे किन्तु गौडपाद ने वेदान्त तत्त्व और विशेषरूप से अद्वैत तत्त्व की स्थापना के प्रसङ्ग में श्रुति के अतिरिक्त स्वतन्त्र तर्क का भी उपयोग किया।^१ स्वतन्त्र तर्कों के इस प्रयोग से गौडपाद की तत्त्वमीमांसा को बल तो अवश्य मिला किन्तु तर्कों का विस्तार अपने साथ-साथ अस्पष्टता और कहीं-कहीं विसङ्गतियों को भी लेकर आया है।^२

द्वैत के स्वरूप तथा अद्वैत से उसके सम्बन्ध की इस समस्या का आचार्य गौडपाद से पूर्ववर्ती दो बौद्ध अद्वैतवादी सम्प्रदाय (शून्यवाद व विज्ञानवाद) भी साक्षात्कार कर चुके थे। अतः उनका भी कुछ प्रभाव गौडपाद पर पड़ना स्वाभाविक था।^३

गौडपाद स्वयं भी इस यथार्थ से सुपरिचित थे। वे बौद्ध आचार्यों के अनुभव का लाभ उठाना चाहते थे तथा दूसरी ओर बौद्ध विचारधारा से भिन्न ब्रह्मवाद अथवा

१. **ख्याप्यमानामजातिं तैरनुमोदामहे वयम्।**

विवदामो न तैः सार्धमविवादं निबोधत।। माण्डूका, ४/५.

२. (a) गौडपाद की तर्क व युक्ति के प्रति आस्था है, इसका प्रमाण माण्डूका की ये कारिकाएँ हैं ३/२, ४/३ इत्यादि.

(b) विधुशेखर भट्टाचार्य के मतानुसार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गौडपाद के तर्क श्रुति पर आधारित होते हैं किन्तु श्रुति-वाक्यों में जहाँ परस्पर विरोध है वहाँ आचार्य का स्पष्ट मत (कारिका ३/२३ में) है कि जो युक्तिसंगत श्रुतिवाक्य हैं उन्हीं को स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसे तर्कों के अतिरिक्त स्वतन्त्र तर्क भी उन्होंने दिए हैं।

Caterina, Conio, The Philosophy of Mandukya-Karika, p. 74.

३. Gaudapada tries to put forward all the arguments at his disposal to prove the unreality of beings, in such a way that some of them seem in contrast with the others. Let us take for instance karika 10 of the IV Book in which it is said that all things (sarva Dharma) are by nature free from decay and death (Jaramarananirmuktah). This apparently is quite in the opposition to the above argument according to which things have a beginning and an end. **Ibid, p. 73.**

४. गौडपाद-कारिका की २/१-३; ३/२९-३०; २/७ इन विशेष कारिकाओं का सन्दर्भ देते हुए गौडपाद की शैली पर विज्ञानवाद व शून्यवाद के प्रभाव को दर्शाता है। **Ibid, p. 72.**

वेदान्त की तत्त्वमीमांसा जो उनकी दृष्टि में अद्वैतवाद था, की रक्षा भी करना चाहते थे। अतः उन्होंने अपने आत्मवाद को प्रस्तुत करने में अप्रत्यक्ष रूप से बौद्ध नीति अर्थात् बौद्ध शब्दावली^१, उदाहरण, दृष्टान्त व तर्कों का आश्रय लिया।^२ उदाहरण के लिए विज्ञानवाद, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति जैसी अवस्थाओं के माध्यम से बाह्य जगत् की विज्ञान-निर्भरता को प्रतिपादित करता है। गौडपाद ने भी अपने अद्वैतवाद को चित्त की अवस्थाओं के विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत किया^३ तथापि गौडपाद के दर्शन में ये मानसिक अवस्थाएँ प्रतिपाद्य-विषय न बनकर दृष्टान्त के रूप में आईं।^४ गौडपाद वस्तुतः इस विश्लेषण के आधार पर यह सिद्ध करना चाहते थे कि ये मानसिक अवस्थाएँ दृष्टान्त हैं, कार्यकारणभाव के उदाहरण हैं, ब्रह्म इनसे परे हैं जबकि विज्ञानवाद में ये दृष्टान्त होने के अतिरिक्त पारमार्थिक तत्त्व-चित्त की अनुभूति के माध्यम भी हैं।

१. **In fact the doctrine about the dharmas cannot be understood apart from the Buddhist background of Gaudapada's Karika and a theoretical appraisal of such a background is indispensable to establish a logical connection between the karikas.** Caterina, Conio, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 82.
२. गौडपाद का दर्शन आत्मवाद माना जाता है और बौद्धों का अनात्मवाद तथापि तर्कों के धरातल पर दोनों में समानता है। उदाहरण, तर्क की आवश्यकता सत्य के प्रतिपादन में नहीं अपितु असत्य क्या है इसको समझाने में है। बौद्धों की यह नीति गौडपाद में स्थानान्तरित हुई। *Ibid*, p. 83.
३. (a) माण्डूका, १.३, ४ व ५.
 (b) नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यम-
 लक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते
 स आत्मा स विज्ञेयः॥ माण्डूउप, १.७.
 (c) Dreams and waking experience are assimilated to each other on ground which are of an epistemological and owe a lot to the Vijnanavada tradition. Vaitathya is established mainly on his score. Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukyakarika*, p. 72.
४. (a) यथा स्वप्ने द्रव्याभासं स्पन्दते मायया मनः।
 तथा जाग्रद्द्रव्याभासं स्पन्दते मायया मनः॥ माण्डूका, ३.२९.
 (b) अद्वयं च द्रव्याभासं मनः स्वप्ने न संशयः।
 अद्वयं च द्रव्याभासं तथा जाग्रन्न संशयः॥ वही, ३.३०.

शून्यवाद की तर्कना-पद्धति का भी गौडपाद पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। शून्यवाद व्यवहार से भिन्न परमार्थ को मानता है तथा व्यवहार की व्याख्या करते हुए उसे सापेक्ष व सस्वभाव बता कर संवृत्ति-सत्य कहता है। गौडपाद भी जगत् को अनित्य, कार्यकारणभाव से जुड़ा मानते हैं तथा इसे पारमार्थिक सत्य न कहकर संवृत्ति-सत्य कहते हैं तथा पारमार्थिक सत्य को इस संवृत्ति सत्य से सर्वथा परे बताते हैं। विचारकों का ऐसा मानना है कि गौडपाद द्वारा सत्य को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त न कह कर दो प्रकार के सत्य कहना वस्तुतः बौद्ध प्रभाव को स्वीकार करना है। शाश्वतवाद और उच्छेदवाद से बचने की गौडपाद की यह नीति यद्यपि शून्यवादियों के समान है तथापि गौडपाद ने जगत् के प्रसङ्ग में जिस कार्यकारणभाव का आश्रय लिया है, वह सौत्रान्तिक व विज्ञानवाद के क्षणभंगवाद से तो भिन्न है किन्तु नागार्जुन के सापेक्षतावाद के समक्ष उसकी मौलिकता शून्य रह जाती है क्योंकि नागार्जुन के दर्शन में इस सापेक्षता और सस्वभावता का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसमें कार्यकारणभाव, प्रमाण, प्रमाणाधीनता इत्यादि अवधारणाओं का समावेश हो जाता है।

इस विश्लेषण के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि गौडपाद के विचारों में एक लचीलापन है। वे दोनों विपरीत विचारधाराओं की अच्छाइयों को लेकर स्वमत की स्थापना तो करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्द, उदाहरण, दृष्टान्त व तर्कों का प्रयोग भी किया तथापि अव्यवस्थित तर्कों के इस प्रयोग से जहाँ कारिका का स्वरूप अस्थिर हो गया वहीं उनकी तत्त्वमीमांसा और अधिक स्पष्ट होने की अपेक्षा उलझ कर रह गई। वह सत्य के स्वरूप की उतनी स्पष्टता से व्याख्या नहीं कर पाए जितनी कि उनके परवर्ती आचार्य शङ्कर ने की।*

१. It may be observed here that these two truths are not specified in the Upanishads and I am inclined to think that Samkara has accepted them in his system from the Buddhism through Gaudapada. वि. भट्टाचार्य उद्धृत Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 91.
२. The Method of argument is not a systematic one, for the author passes from one argument to another, sometimes in a manner which is far from clear. The reason for this lies also in the fact that Gaudapada's thought has various sources. Ibid, p. 71.
३. The answer of Gaudapada is less clear, because the complexities of his sources and the uncertainty of his thought. We shall omit therefore his metaphysical conclusions for the moment. Ibid, p. 76.
४. Only with Samkara and his followers will the *vivarta* doctrine be established as an attempt to solve this problem. In Gaudapada this doctrine is not clearly formulated but only hinted at. Ibid, p. 89.

आधुनिक विचारकों ने भी गौडपाद पर बौद्ध दर्शन के इस प्रभाव को स्वीकार किया है तथा इस प्रभाव को ग्रहण करने के कारण गौडपाद पर स्वयं अपने सिद्धान्त के प्रति असमंजस में होने की ओर संकेत किया है।

६. प्रासङ्गिक अध्ययन एवम् अनुसन्धान

गौडपाद-कारिका में बौद्ध सन्दर्भों व पारिभाषिक शब्दों के विवरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि इन सन्दर्भों का वेदान्त और बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध की पृष्ठभूमि में विश्लेषण किया जाए। स्वतन्त्ररूप से इनके विश्लेषण व विवेचन से पूर्व इस बिन्दु पर अध्ययन करने वाले लेखकों के कार्यों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

अनेक आधुनिक विद्वानों ने गौडपाद और बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध पर विचार किया है। इनमें से कतिपय उल्लेखनीय नाम हैं- राधाकृष्णन्, भरत सिंह उपाध्याय, चन्द्रधर शर्मा, जगदीश सहाय, एस.एस. रॉय आदि।

गौडपाद और बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध पर उपर्युक्त विद्वानों ने जो कुछ विचार कर अपने निष्कर्ष दिए हैं उनका वर्गीकरण करने पर अधोलिखित बिन्दु सुनिश्चित होते हैं। अर्थात् गौडपाद और बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध को प्रकाशित करने वाले ये प्रधान विचार-बिन्दु हैं- (i) उप, गौडपाद और बौद्ध दर्शन (ii) गौडपाद और शून्यवादी माध्यमिक दर्शन (iii) गौडपाद और विज्ञानवाद।

१. (a) **It may be maintained that the methodology of the negative dialectic is not Upanisadic. The arguments given by Gaudapada were never given by any Vedantin of the Brahmanical tradition. They are reminiscent of the Mulamadhyamakakarika and the Vignahavyavartani of Nagarjuna and of the Madhyamakavatara and Prasannapada of Chandrakirti. Nagarjuna and Chandrakirti, it appears, found an inlet into the Vedanta through Gaudapada.** Roy, S.S., *Haritage Samkara*, p. 19.

(b) गौडपाद की कारिकाएँ माध्यमिकों के निषेधात्मक तर्क को उप के भावात्मक आदर्शवाद के साथ एक पूर्ण इकाई के अन्दर संयुक्त करने का प्रयास है। राधाकृष्णन्, भाद- ११, पृ. ४००

(c) नागार्जुन की माका और गौडपाद की माण्डूका के सन्तुलन का जहाँ तक प्रश्न है; वह स्पष्ट करता है कि गौडपाद ने नागार्जुन की प्रक्रिया को स्वीकार किया है। शास्त्री उदयवीर, वेदइ, पृ. ३९७.

(d) माध्यमिक तर्क-वितर्क का प्रचुर प्रयोग कर सिद्ध करते हैं कि कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। गौडपाद द्वारा प्रतिपादित अजातवाद का सिद्धान्त मूलतः माध्यमिक-सिद्धान्त है। T.M.P. Mahadevan, *Gaudapada*, p. 194.

२. **There is no doubt that our author recognizes the principle of contradiction.** Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukyakarika*, p. 75.

(अ) उपनिषद्, गौडपाद एवं बौद्ध दर्शन

उपनिषद्, बुद्ध एवं गौडपाद

छठीं शताब्दी ई.पू. में भारतवर्ष में प्रादुर्भूत हुई बौद्ध विचारधारा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं आधारभूत व्यक्तित्व बुद्ध हैं। बुद्ध, भारतीय दर्शन के इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने प्रचलित तत्त्वमीमांसीय चर्चाओं से परे हट कर, सम्पूर्ण चराचर जगत् के मनोविज्ञान को समझा तथा उनकी चिरस्थायी वेदना का निवारण करने के लिए आवश्यक उपाय किए। सांसारिक दुःखों के विनाश के लिए, कठोर तपश्चर्या के बल पर, सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के बाद बुद्ध ने जहाँ एक ओर धार्मिक उपदेष्टा का स्वरूप निभाया वहीं दूसरी ओर उन उपदेशों को स्वयं अपने आचरण में उतार कर, कर्मयोगी एवं समाज-सुधारक के रूप में भी उच्च आदर्शवाद के मानदण्ड स्थापित किये। प्रज्ञा और शील के समन्वयात्मक व्यक्तित्व वाले बुद्ध ने स्वयं कोई ग्रन्थ नहीं लिखा और न ही किसी सम्प्रदाय विशेष की स्थापना की थी तथापि उनके वचनों को आधार बनाकर धर्म-दर्शन के अनेक सम्प्रदाय विकसित हुए तथा गुरु-शिष्य की भिन्न-भिन्न परम्पराएँ चलीं। यह गंगा जो बुद्ध की उपदेशरूपी गंगोत्री से निकली वह विश्वव्याप्त हुई। बुद्ध-वचनों द्वारा उपदिष्ट यह बौद्ध धर्म जिन-जिन देशों में फैला, आचार्य, शिष्य व अनुयायियों की शृंखला के रूप में भारतीय बौद्ध परम्परा से जुड़ता गया। बुद्ध के व्यक्तित्व के इस सम्पूर्ण विस्तार को भिन्न-भिन्न साहित्य में विविध प्रकार से वर्णित किया गया है। हीनयानी साहित्य जहाँ एक बुद्ध के व्यक्तित्व का गुणगान करते हैं। वहीं दूसरी ओर महायानी परम्परा के साहित्य में ३ से लेकर २४ बुद्धों के आविर्भाव की घटनाओं का वर्णन मिलता है। इस विचारधारा के मतानुसार निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर बोधि प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति बुद्ध बन सकता है। आशय यही है कि माया व शुद्धोदन के पुत्र मात्र के रूप में जन्म लेने वाला बालक बुद्ध, इस स्तर तक आते-आते एक अवधारणा बन गया। प्रज्ञा, शील, करुणा, शान्ति, मैत्री आदि इस अवधारणा के स्वरूप की अभिव्यक्ति के प्रतीक बन गए। इस प्रकार बौद्ध विचारधारा में बुद्ध व्यक्ति नाम से प्रारम्भ होनेवाली यात्रा अन्ततः बुद्धत्व पर आकर समाप्त हुई।

सातवीं शती में प्रादुर्भूत हुए आचार्य गौडपाद को, वेदान्त दर्शन के इतिहास में अद्वैतवाद के प्रणेता होने का गौरव प्राप्त है। इनसे पूर्व वेदान्ताचार्यों में सम्पूर्ण प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखने की परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। तथापि इन्होंने स्पष्ट नीति से मात्र एक उप को आधार बनाकर, उस पर भाष्य लिखा और अद्वैतवादी मत की आधारशिला रखी। अद्वैतवाद की स्थापना हेतु **माण्डूक्य** पर गौडपादकृत

माण्डूका को अद्वैत वेदान्त के प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ होने का श्रेय प्राप्त है। किन्तु इस ग्रन्थ की व्याख्या के रूप में एकमात्र आचार्य शङ्कर का भाष्य ही उपलब्ध होता है; भाष्यों के आधार पर विकसित सम्प्रदायों अथवा टीका-प्रटीकाओं के रूप में गुरु-शिष्य की परम्परा का निर्वाह वस्तुतः आचार्य शङ्कर से प्रारम्भ होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि बुद्ध और गौडपाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में पर्याप्त अन्तर है। बुद्ध, बौद्ध विचारधारा के प्राण-तत्त्व हैं, एक अवधारणा हैं जबकि गौडपाद व्यक्तिरूप में वेदान्त दर्शन के मात्र एक आचार्य। इनसे परे उप साहित्य की कोटि में आते हैं। अतः असमान आधार के कारण उप, बुद्ध और गौडपाद तुलनीय नहीं हैं। तथापि प्रसङ्ग के आग्रह से इनमें तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक कालक्रमानुसार उप पूर्ववर्ती हैं, बुद्ध और आचार्य गौडपाद क्रमशः परवर्ती। अतः बुद्ध व गौडपाद पर उप का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

आधुनिक विचारकों ने उप, बुद्ध और गौडपाद के परस्पर सम्बन्ध की समस्या पर विचार किया है। उन्होंने इस समस्या को जिन विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषित किया है, उसका एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु है- उप से बुद्ध का सम्बन्ध।

उपनिषद् से बुद्ध का सम्बन्ध

चन्द्रधर शर्मा^१, भरत सिंह उपाध्याय^२ आदि विद्वानों ने बुद्ध पर औपनिषदिक विचारों के प्रभाव को स्वीकार किया है। उनकी यह मान्यता विचारणीय है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में कहीं भी, उप के किसी वाक्य को उद्धरणरूप में प्रस्तुत नहीं किया है जिससे उक्त तथ्य की पुष्टि हो सके। सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि बुद्ध-वचनों पर आधारित पालि-साहित्य में इस सन्दर्भ में किसी प्रकार का कोई संकेत उपलब्ध नहीं होता है। दूसरे, परवर्ती बौद्धाचार्यों ने भी अपने व्याख्यानों में, बुद्ध पर उप के इस प्रभाव को स्वीकार नहीं किया है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में विद्वानों का उक्त मन्तव्य निराधार सिद्ध हो जाता है। तथापि परोक्षरूप से यदि औपनिषदिक विचार एवं बुद्ध वचनों की तुलना की जाय तथा उनके विचारों में पाई जाने वाली समानता का विश्लेषण किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड की प्रतिक्रियास्वरूप उप लिखे गये थे। बुद्ध का आविर्भाव भी तत्कालीन सामाजिक

१. बौद्धे, पृ. २०९.

२. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ८०.

अव्यवस्था को दूर कर प्रज्ञा और शील की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए हुआ था। चूंकि दोनों समान परिस्थितियों में एक ही समस्या से जूझ रहे थे; दोनों का लक्ष्य एक ही था। अतः अनजाने में आई वैचारिक समानता का पाया जाना स्वाभाविक था। इस समानता के आधार पर सम्पूर्ण बुद्ध-मन्तव्य को उप से प्रभावित स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उक्त पक्ष के अतिरिक्त, विचारकों ने गौडपाद, उप एवं बौद्ध धर्म-दर्शन के परस्पर सम्बन्ध पर कुछ सामान्य व आलोचनात्मक टिप्पणियाँ की हैं जिन्का विश्लेषण एवं मूल्याङ्कन यहाँ अपेक्षित है-

एस.एन.दासगुप्ता अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन का इतिहास- (पृ. ४२७-२८) में बौद्ध धर्म एवं उपनिषदीय धर्म को सैद्धान्तिक रूप से समान बताकर अन्ततः इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि गौडपाद, बौद्ध धर्म से विशेष प्रभावित थे। सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि, उप विशुद्ध दार्शनिक ग्रन्थ हैं तथा इनमें द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत आदि सभी प्रकार के विचार बीज रूप में पाये जाते हैं। इनको किसी एक सिद्धान्त की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। अतः औपनिषदीय धर्म से बौद्ध धर्म की सैद्धान्तिक समानता एवं उस आधार पर गौडपाद का बौद्ध धर्म से प्रभावित होना, यह वक्तव्य स्वयमेव असङ्गत सिद्ध हो जाता है।

देवराज (पृ. ५०३, ५०६) ने भाद नामक अपने ग्रन्थ में गौडपाद एवं बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करते हुए कहा है कि वास्तव में गौडपाद भी अन्य वेदान्तियों की तरह उप के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करना चाहते थे तथापि वे उस समय के बौद्ध विचारों से इतने अधिक प्रभावित थे कि परम्परा से वैदिक आचार्य होकर भी उन्होंने बौद्ध के अजातवाद को स्वीकार कर लिया था। अतः इस आधार पर गौडपाद को विचारों की दृष्टि से प्रच्छन्न बौद्ध की संज्ञा दी जा सकती है।

उपर्युक्त मत की आलोचना में यह कहा जा सकता है कि अजातवाद मात्र बौद्धों द्वारा प्रतिपादित नया सिद्धान्त नहीं है। बौद्धों से पूर्व मुण्डकोपनिषद् में अजातवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। वेदान्तीय परम्परा के एक अन्य ग्रन्थ योगवाशिष्ठ (३.७.४०, ४.२.८) में भी कई स्थलों पर अजातवाद के उद्धरण मिलते हैं। अतः मात्र इस आधार पर कि गौडपाद ने बौद्धों द्वारा प्रस्तावित अजातवाद को स्वीकार कर लिया था, आचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहना युक्ति सम्मत नहीं है।

(आ) गौडपाद एवं माध्यमिक दर्शन

वेदान्त एवं बौद्ध, भारतीय दर्शन के इतिहास की दो भिन्न चिन्तन-परम्पराएँ हैं। गौडपाद, वेदान्त दर्शन की अद्वैतवादी शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं तथापि बौद्ध विचारधारा में नागार्जुन के शून्यवाद को अद्वयवाद के प्रतिपादक सिद्धान्त होने का गौरव प्राप्त है। भिन्न-भिन्न परम्पराओं के माने जाते हुए भी सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों आचार्यों की आधारभूमि एक है। यह विचारणीय है कि आचार्यद्वय में से वस्तुतः किसको दर्शन के इतिहास में अद्वैतवाद के प्रथम प्रतिष्ठापक होने का सम्मान प्राप्त है, किसका दर्शन अद्वैतवाद के सही स्वरूप की अभिव्यक्ति में सक्षम है, इनमें से कौन अद्वैतवाद से परिचित था अथवा किसने किसको कितना प्रभावित किया, दोनों के अद्वैतवाद में साम्य अथवा वैषम्य का निरूपण सायास आया है अथवा सहज ही उसकी अभिव्यक्ति हुई है आदि।

वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या का दूसरा प्रमुख आधार गौडपाद और नागार्जुन के अद्वैतवाद की तुलनात्मक समालोचना है। सन्दर्भ विशेष में प्रस्तुत आधुनिक विद्वानों की टिप्पणियों को अधोलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (i) सिद्धान्त में समानता। (ii) शैली में समानता।

(i) सिद्धान्त में समानता

गौडपाद और नागार्जुन के दार्शनिक सिद्धान्तों में साम्य अथवा परस्पर प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए विचारकों ने तीन प्रधान सिद्धान्तों को आधार बनाया है- शून्यवाद, मायावाद और अजातवाद।

उदयवीर शास्त्री (वेदङ्ग, पृ. ३९८) एवं प्रज्ञानन्द सरस्वती ने शून्यवाद व मायावाद के सन्दर्भ में तुलनात्मक टिप्पणी की है। शास्त्री की पुस्तक में, उद्धृत प्रज्ञानन्द (वही, पृ. ३९५-३९६.) की मान्यतानुसार गौडपाद के मायावाद ने नागार्जुन को प्रभावित किया है। सरस्वती के इस मत से कि, गौडपाद का सिद्धान्त मायावाद है, स्वयं ग्रन्थ-लेखक भी सहमत हैं। इससे भिन्न व आगे बढ़कर वह यह भी स्वीकार करता है कि गौडपाद के मायावाद व नागार्जुन के शून्यवाद में साम्य है। इस साम्य की पुष्टि के लिए लेखक ने दो प्रमाण दिए हैं- (i) गौडपाद द्वारा बुद्ध के प्रति आदरभाव प्रकट करना। (ii) मायावाद को प्रच्छन्न बौद्ध समझे जाने की ऐतिहासिक परम्परा।

१. (a) शास्त्री, उदयवीर, वेदङ्ग, पृ. ३९७.

(b) उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ९८४.

(c) शर्मा, चन्द्रधर, बौद्ध, पृ. २२१-२२.

प्रज्ञानन्द सरस्वती के वक्तव्य के सम्बन्ध में पूर्वतः यह विचारणीय है कि नागार्जुन व गौडपाद में कौन पूर्ववर्ती एवं परवर्ती है क्योंकि सैद्धान्तिक प्रभाव का जहाँ तक प्रश्न है सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि परवर्ती पूर्ववर्ती को कथमपि प्रभावित नहीं कर सकता। अधिकांश विद्वान् नागार्जुन को गौडपाद से पूर्ववर्ती स्वीकार करते हैं। अतः इस आधार पर गौडपाद द्वारा नागार्जुन को प्रभावित किए जाने का प्रसङ्ग निराधार है।

दूसरे, गौडपाद का सिद्धान्त वेदान्त के इतिहास में अजातवाद के नाम से प्रसिद्ध है। मायावाद की सिद्धान्त रूप में प्रतिष्ठा का श्रेय वेदान्त के ही परवर्ती आचार्य शङ्कर को दिया जाता है। ऐसी स्थिति में गौडपाद के सिद्धान्त को मायावाद कहना सुसङ्गत नहीं है। अतः यदि गौडपाद का सिद्धान्त मायावाद नहीं है तो स्वयं प्रज्ञानन्द सरस्वती का यह वक्तव्य कि शून्यवाद, मायावाद से प्रभावित है, पुनः निराधार सिद्ध हो जाता है।

गौडपाद का सिद्धान्त मायावाद है अथवा नहीं, यह प्रश्न उदयवीर शास्त्री की टिप्पणी के सन्दर्भ में भी जिज्ञास्य है। जहाँ तक गौडपाद के मायावाद व नागार्जुन के शून्यवाद में साम्य का प्रश्न है तो यह कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती तथा परवर्ती अथवा समकालिक किसी भी परिस्थिति में आचार्यों के सिद्धान्तों में समानता आ सकती है। प्रथमतः बुद्ध के प्रति आदरभाव प्रकट करने से गौडपाद स्वयं बुद्ध के परवर्ती तो सिद्ध होते हैं किन्तु नागार्जुन व गौडपाद में काल की दृष्टि से कौन पूर्ववर्ती है, किसने किसको प्रभावित किया यह स्पष्ट नहीं होता। द्वितीय, यदि मायावाद के कारण प्रच्छन्न बौद्ध होने का आरोप है, तो इस प्रमाण के आधार पर गौडपाद (जिनका सिद्धान्त मायावाद बताया गया है) नागार्जुन के परवर्ती सिद्ध होते हैं। स्वयं लेखक ने भी ग्रन्थ के अग्रिम पृष्ठों में इस तथ्य को स्वीकार किया है। पुनः यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या माया की अवधारणा के कारण वेदान्तियों को प्रच्छन्न बौद्ध समझे जाने की परम्परा उचित है अथवा नहीं, क्योंकि बुद्ध अथवा बौद्ध दर्शन से भी पूर्व उप साहित्य में मायावाद के वैचारिक सन्दर्भ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

चन्द्रधर शर्मा^१, राधाकृष्णन्^२, देवराज^३, एवं कमला देवी^४ ने गौडपाद व नागार्जुन के सन्दर्भ में क्रमशः अजातवाद और शून्यवाद का तुलनात्मक विश्लेषण

१. शास्त्री, उदयवीर, वेदङ्ग, पृ. ३९५-३९८.
२. बौवे, पृ. १०७-१०९.
३. भाद-११, पृ. ४००.
४. भाद, पृ. ५०२.
५. मधुसूदन सरस्वती की अद्वैतसिद्धि, पृ. ३५-३६.

किया है। चन्द्रधर शर्मा के मतानुसार शून्यवाद व अजातवाद दोनों एक ही सिद्धान्त हैं। राधाकृष्णन् के कथनानुसार अजातवाद व शून्यवाद दोनों कार्यकारणभाव से परे हैं। अतः दोनों के ही दर्शनों में परिवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि परिवर्तन के लिए किसी की उत्पत्ति व उसका सत् होना आवश्यक है। गौडपाद व नागार्जुन की सृष्टि की इस समान व्याख्या पर कमला देवी ने सहमति प्रकट की है तथा देवराज ने गौडपाद द्वारा नागार्जुन के अजातवाद का समर्थक होने की पुष्टि की है।

उपर्युक्त सभी विचारों के प्रति यह कहा जा सकता है कि प्रथमतः दो सिद्धान्तों में भाव व विचार की दृष्टि से समानता होने का तात्पर्य दोनों का एक होना नहीं है। दूसरे, यह भी विचारणीय है कि नागार्जुन का शून्यवाद और गौडपाद का अजातवाद वस्तुतः क्या एक ही सिद्धान्त है? संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि नागार्जुन के शून्य को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त कहा जाता है जबकि गौडपाद अजातवाद द्वारा जिस तत्त्व की सिद्धि करते हैं, वह सत् है।

(ii) शैली की समानता

अनेक विचारकों ने गौडपाद व नागार्जुन के ग्रन्थों में उपलब्ध कारिकाओं की भाषा व भावों की समानता के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है कि गौडपाद ने नागार्जुन की प्रक्रिया को स्वीकार किया है।

उपर्युक्त मतों के विश्लेषण में स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती के इस मत का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कारिकाओं की समानता के आधार पर नागार्जुन को गौडपाद से प्रभावित बताया है। सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि यद्यपि बहुमत नागार्जुन द्वारा गौडपाद को प्रभावित किए जाने की पुष्टि करता है तथापि आचार्यद्वय का काल-निर्धारण, उनके पूर्ववर्ती होने का निर्विवाद विश्लेषण ही इस समस्या का वस्तुतः सही समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

(इ) गौडपाद और विज्ञानवाद

अजातवाद की मान्यतानुसार ब्रह्म की ही एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है। इस ब्रह्म की अनुभूति अथवा उसके साक्षात्कार का प्रधान आधार चित्त है। गौडपाद ने

१. (a) उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ९७३, ९८४-९८५.

(b) शास्त्री, उदयवीर, वेदङ्ग, पृ. ३९७.

२. वही, उल्लिखित मत, पृ. ३९५.

अपनी रचना में चित्त का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है उसका सामान्य आधार उप है। उप में भी विशेषरूप से आचार्य ने माण्डूक्य का चयन किया है। अतः उनकी चित्त की अवधारणा भी विशेषरूप से माण्डूक्य पर आधारित एवं व्याख्यायित है। दूसरी ओर बौद्ध दर्शन का एक सम्प्रदाय विज्ञानवाद है जो चित्त की प्रधानता पर बल देता है; वह उसे विज्ञान कहता है। यह विज्ञान, विज्ञानवादियों का पारमार्थिक तत्त्व है तथा इस तत्त्व विशेष पर आधारित उनका सिद्धान्त विज्ञानवाद कहलाता है। विज्ञानवाद के प्रधान आचार्य वसुबन्धु व प्रधान ग्रन्थ विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि है। जिस प्रकार गौडपाद की चित्त-विषयक मान्यता की पृष्ठभूमि उप है। उसी प्रकार आचार्य वसुबन्धु ने अपने सिद्धान्त को बुद्ध-वचन से जोड़ा है- चित्तमात्रं भो जिनपुत्राः। बुद्ध-वचन में हीनयान और महायान दोनों के बीज विचाररूप में विद्यमान थे। अतः वसुबन्धु ने उनके विचारों एवं महायान अथवा चित्तमात्रतावाद के विचार का चयन किया एवं सिद्धान्तरूप में विज्ञानवाद की स्थापना की। इस प्रकार गौडपाद का ब्रह्माद्वैतवाद अथवा अजातवाद तथा वसुबन्धु का विज्ञानवाद, चित्त को विशेष महत्त्व देने के कारण तुलनीय है।

अजातवाद में चित्त की भूमिका

यहाँ यह जिज्ञास्य है कि व्यवहार रूप में जिस जीव-जगत् की अनुभूति होती है, वस्तुतः वह क्या है? गौडपाद के मतानुसार व्यवहार में इस प्रतीति का कारण मन अर्थात् चित्त का स्पन्दन है।^१ जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति, व्यवहार के स्तर पर मन की ये तीन अवस्थाएँ हैं। तीन अवस्थाओं वाला यह अद्वय चित्त स्वयं नहीं उत्पन्न होता है अपितु माया के प्रभाव से स्वप्न-जाग्रतावस्था अथवा जीव व जगत् के द्वैतरूप में भासता है।^२ दूसरे शब्दों में स्वप्न व जागृति, मन अथवा चित्त के ही विलास हैं। इन तीन अवस्थाओं से परे मन की एक चतुर्थ अवस्था भी है जिसे तुरीय कहते हैं। सुषुप्तावस्था के चित्त व तुरीयावस्था के चित्त^३ में ज्ञाता-ज्ञेय

१. मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित् सचराचरम्।

मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते।। माण्डूका, ३/३१.

२. (a) यथा स्वप्ने द्रव्याभासं स्पन्दते मायया मनः।

तथा जाग्रद्द्रव्याभासं स्पन्दते मायया मनः।। वही, ३/२९.

(b) अद्वयं च द्रव्याभासं मनः स्वप्ने न संशयः।

अद्वयं च द्रव्याभासं तथा जागृत्र संशयः।। वही, ३/३०.

३. माण्डूका, १/११.

का द्वैत नहीं रहता। तथापि अहं अर्थात् “मैं हूँ” बोध भी समाप्त हो जाता है। यह ब्रह्मानुभूति की अवस्था है।^१ इस प्रकार गौडपाद का दर्शन न केवल चित्त पर आधारित है अपितु उसके ब्रह्माद्वैत में चित्त की स्थिति विशेष को ब्रह्म कह कर उसकी प्रशंसा की गई है।

विज्ञानवाद में चित्त की भूमिका

विज्ञानवाद के प्रधान आचार्य वसुबन्धु व प्रधान ग्रन्थ उनकी कृति विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि है। अतः विज्ञान की चित्त-विषयक मान्यता का प्रतिनिधित्व वसुबन्धु व उनकी कृति विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि करती है। चित्त के अन्य पर्याय मन, विज्ञान, विज्ञप्ति हैं।^२ वसुबन्धु ने विंशतिका की प्रथम कारिका में प्रतिज्ञा, हेतु व उदाहरण देकर विज्ञानवाद की स्थापना की है। वह यह स्पष्ट कहते हैं कि- विज्ञप्ति हा एकमात्र निरपेक्ष सत् है और तीनों लोक धातु-कामधातु, रूपधातु और अरूपधातु इस विज्ञप्ति अथवा चित्त के आभासमात्र हैं। यद्यपि योगाचार विज्ञानवाद में विज्ञप्ति अथवा चित्त को मूल तत्त्व माना गया है तथापि उसका विश्लेषण करने पर उसे दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (i) आलयविज्ञान, (ii) प्रवृत्तिविज्ञान। आलयविज्ञान, विज्ञानों की एक सन्तति है जिसमें विज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं और निरुद्ध होते हैं किन्तु वे निरुद्ध होने के पूर्व अपनी वासना, जो नए विज्ञानों को उत्पन्न करती है, उसमें छोड़ जाते हैं। आलयविज्ञान में इनका संग्रह होता है। ये आलयविज्ञान में बीजरूप में पड़े रहते हैं और समुचित परिस्थितियों में पुनः प्रकट होते हैं। वसुबन्धु, इस आलय-विज्ञान को ही विज्ञप्तिमात्रता कहते हैं। प्रवृत्तिविज्ञान, आलय-विज्ञान की ही विषय-विषयी रूप में अविद्याजन्य व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार वसुबन्धु ने विज्ञान अथवा चित्त के आधार पर व्यवहार के सभी पक्षों अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक विषयों की चर्चा करते हुए^३ अन्ततः इस तत्त्व को अविज्ञेय माना है तथापि वह यह भी कहते हैं कि यह विज्ञान, बुद्ध द्वारा ही जानने योग्य है तथा उन्होंने इस अनिर्वचनीय तत्त्व का अपनी सामर्थ्यानुसार वर्णन किया है।^४ इस

१. वही, १/१०.

२. चित्तं मनश्चविज्ञानं संज्ञा वैकल्पवर्जितः।

विकल्पधर्मतां प्राप्ताः श्रावका न जिनात्मजाः।। लंकावतारसूत्र, ३/४०.

३. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, कारिका, १, १०.

४. वही, कारिका, २१.

प्रकार अद्वैत-वेदान्त में जो स्थान ब्रह्म का है वही स्थान विज्ञानवाद में चित्त अथवा विज्ञान का है।

विधुशेखर भट्टाचार्य^१ उप, विज्ञानवाद एवं गौडपाद के सम्बन्धों पर तुलनात्मक टिप्पणी करते हैं। विधुशेखर न सिर्फ गौडपाद के ब्रह्माद्वैतवाद को महायानियों के विज्ञानवाद का विकसित रूप मानते हैं अपितु उप में विज्ञानवाद की पुष्टि करते हुए वह स्वयं महायानियों को उससे प्रभावित भी स्वीकार करते हैं। चन्द्रधर शर्मा^२ भी स्वयं इस कथन से पूर्ण सहमति रखते हैं। इनके अलावा राहुल सांकृत्यायन^३ ने भी उप में अद्वैत विज्ञानवाद के होने की पुष्टि की है तथा कामेश्वरनाथ मिश्र^४ ने बौद्ध महायानसूत्रों पर आधारित वसुबन्धु के विज्ञानवाद को इस औपनिषदिक विज्ञानवाद के अत्यन्त निकट बताया है। गोविन्दचन्द्र^५ ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि विज्ञानवाद की एक रहस्यमयी अनुभूति के रूप में प्रथम अभिव्यक्ति उप में हुई थी तथा मैत्रेय, वसुबन्धु ने इसे बाद में योगाचार विज्ञानवाद के नाम से विकसित किया।

उपर्युक्त विचारकों के वक्तव्य के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि उप, दार्शनिक साहित्य के इतिहास का वह गोमुख है जिसने अपने विविध अंगों से विभिन्न विचारधाराओं को जन्म दिया है। उप में द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी आदि अनेक सिद्धान्तों के विचार बीजरूप में विद्यमान हैं। अतः इनकी वैचारिक-विविधता को किसी एक सिद्धान्त के नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। दूसरे, बृहदारण्यक उप (२/१५-१७) विज्ञानमय पुरुष का विशद निरूपण करता है तथा तैत्तिरीयोपनिषद् (३.१), ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए चैतन्य की पाँच अवस्थाओं की चर्चा करता है और उनमें से एक अवस्था विज्ञानमय कोश की है; जिसके अन्तर्गत यह कहा है कि विज्ञान ब्रह्म है। इसके आधार पर नहीं कहा जा सकता कि उप विज्ञानवाद का प्रतिपादन करता है। यदि यह मान लिया जाए कि इस विज्ञानमय-कोश और विज्ञानवादियों के विज्ञानवाद (जो स्वयं भी चित्त पर आधारित सिद्धान्त है) में समानता है, तो भी समानता या निकटता का अर्थ

१. **The Agamshashtra of Gaudapada, Introduction, p. CXXXII.**

२. **बौवे, पृ. १०७.**

३. **दर्शनदिग्दर्शन, पृ. ३९२.**

४. **बौद्ध विज्ञानवाद : चिन्तन एवं योगदान, पृ. २०.**

५. **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ. ४००.**

सैद्धान्तिक होता है, एकता नहीं। दूसरे, विज्ञानवादियों का विज्ञानवाद, उप के इस तथाकथित विज्ञानवाद का विकसित रूप तो कथमपि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बौद्ध विचारधारा का विज्ञानवादी सम्प्रदाय जिस चेतना को स्वीकार करता है और समस्त संसार को उस चेतना का आभासरूप स्वीकार करता है उसकी यह चेतना उप में विवेचित चेतना की तरह निष्क्रिय व नित्य न होकर क्षणिक व क्रियाशील है। दूसरे, उप इस विज्ञानमयकोश से भी ऊपर आनन्दमय-कोश की व्याख्या करते हैं तथा ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं जबकि विज्ञानवाद इस विज्ञान तत्त्व पर आकर ही रुक जाता है। उप की इस प्रक्रिया को अर्थात् चित्त के विश्लेषण के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप की अभिव्यक्ति को गौडपाद ने अपनाया है। उसने जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति चित्त की इन तीन अवस्थाओं की व्याख्या करते हुए, इन तीनों से परे एक चतुर्थ स्तर की कल्पना की है। तुरीय नामक इस चतुर्थ स्तर पर आकर गौडपाद ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। जबकि विज्ञानवादियों के विज्ञानवाद में सुषुप्ति के स्तर तक आकर ही विज्ञानाद्वैत का प्रतिपादन हो जाता है। यद्यपि गौडपाद के अद्वैतवाद और विज्ञानवादियों के विज्ञानवाद दोनों चैतन्य की समान पृष्ठभूमि पर अवस्थित हैं तथापि दोनों में न सिर्फ चित्त के स्वरूप को लेकर भेद है बल्कि चित्त की अवस्थाओं के क्रम को लेकर भी भेद है। विज्ञानवादी, चित्त को साध्य मानते हैं जबकि गौडपाद साधन। ऐसी स्थिति में उप के तथाकथित विज्ञानवाद से महायान के विज्ञानवाद को जोड़ना तथा इस आधार पर विज्ञानवाद व गौडपाद के सिद्धान्त में समानता दिखलाकर गौडपाद के अद्वैतवाद को महायानियों के विज्ञानवाद का विकसित रूप स्वीकार करना; यह मन्तव्य वस्तुतः अपने आप में अस्पष्ट एवं असंगत है।

राधाकृष्णन् के मत में, गौडपाद के अजातवाद के अनुसार यह सम्पूर्ण संसार वास्तव में चित्त का स्पन्दन है; स्वरूपतः न तो कुछ उत्पन्न होता है और न ही कोई किसी अन्य को उत्पन्न कर सकता है। यह स्वीकार करने वाले गौडपाद एक ओर तो चित्त के आधार पर व्यवहार की अनुभूति का प्रारम्भ मानते हैं, तथा चित्त पर आधारित इस व्यवहार का निषेध करने के लिए विज्ञानवाद (जो स्वयं भी बाह्यार्थ का खण्डन करता है) की युक्तियों का प्रयोग करते हैं। अतः युक्तिगत समानता के आधार पर गौडपाद व

विज्ञानवाद दोनों को प्रत्ययवादी अथवा आत्मनिष्ठतावादी माना जा सकता है। तथापि दूसरी ओर गौडपाद जब स्वयं चित्त का भी अतिक्रमण कर ब्रह्म तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, तो इससे उन पर चित्त की पारमार्थिकता के प्रतिवाद का दोष भी लगाया जा सकता है।

राधाकृष्णन् का यह मत विचारणीय है। गौडपाद ने अपने अद्वैतवाद को चित्त की अवस्थाओं के विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया है। अतः इस दृष्टिकोण से गौडपाद का दर्शन एक सीमा तक मनोवैज्ञानिक माना जा सकता है। किन्तु यदि यह मान लिया जाता है कि गौडपाद विज्ञानवाद से प्रभावित थे और उन्होंने विज्ञान की युक्तियों का प्रयोग चूंकि अपने अद्वैतवाद के प्रस्तुतीकरण में, सहायक के रूप में किया है तो युक्तिगत समानता के आधार पर गौडपाद व विज्ञानवाद दोनों को प्रत्ययवादी अथवा आत्मनिष्ठतावादी स्वीकार किया जाना चाहिए।

सम्प्रति, प्रथमतः यह कहा जा सकता है कि विज्ञानवाद, बौद्ध धर्म की नहीं अपितु दर्शन की शाखा है। दूसरे, स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती जैसे कुछ विचारक ऐसे भी हैं जिन्होंने ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से गौडपाद के पश्चात् नागार्जुन को माना है तथा नागार्जुन पर गौडपाद के प्रभाव को स्वीकार किया है। अतः इस मत से राधाकृष्णन् के मत का विरोध स्पष्ट हो जाता है। इसके अलावा गौडपाद, चित्त से भी ऊपर उठकर अद्वैत ब्रह्म की सत्ता को प्रतिपादित करते हैं। इस आधार पर उन्हें आत्मनिष्ठतावादी नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक प्रश्न है गौडपाद द्वारा चित्त की पारमार्थिकता के निषेध किए जाने का; तो जैसा कि पूर्व में कहा गया, गौडपाद के चित्त और विज्ञानवाद के चित्त में पर्याप्त वैषम्य है। गौडपाद की चेतना स्वरूपतः उप में विवेचित चेतना की तरह निष्क्रिय व नित्य है। जबकि विज्ञानवादियों की चेतना क्षणिक व क्रियाशील है। अतः गौडपाद यदि चित्त का अतिक्रमण करते भी हैं तो इसका अर्थ है कि वह उसके क्षणिकत्व व उसकी क्रियाशीलता का विरोध करते हैं, मूलतः चित्त की पारमार्थिकता का निषेध नहीं करते। दूसरे, विज्ञानवादियों ने इस चित्त को परतत्त्व मानकर साध्य मान लिया है जबकि गौडपाद के दर्शन में चित्त ब्रह्मानुभूति का साधनमात्र है; अतः गौडपाद जब ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं तो इसका सीधा सरल तात्पर्य यही है कि वह चित्त अथवा चैतन्य की चरमावस्था का निरूपण करते हैं। उनके इस निरूपण में चित्त की पारमार्थिकता के निषेध किये जाने का भाव

कहीं नहीं होता। विज्ञानवाद से गौडपाद के चित्त-विषयक विश्लेषण के इस अन्तर को आधुनिक विचारकों ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में पुष्ट किया है।

७. समीक्षा

वेदान्त के व्यवस्थित इतिहास का आरम्भ ब्रसू से होता है। इसके बाद उपलब्ध, दूसरी महत्वपूर्ण रचना माण्डूका है। दोनों में बौद्ध सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। किन्तु दोनों के काल में महत् अन्तर है। ब्रसू से गौडपाद के मध्य एक ऐसा समय कल्पित किया जा सकता है जब वेदान्त एवं बौद्ध विचारधाराएँ सम्बन्ध की दृष्टि से अत्यन्त निकट थीं। ये विचारधाराएँ एक दूसरे की पूरक मानी जाती हैं, इन्हीं विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व गौडपाद करते हैं। गौडपाद के बाद इस सद्भावपूर्ण सम्बन्ध का विकास न हो सका।

गौडपाद से पूर्व बौद्ध विचारधारा में, नागार्जुन जैसे आचार्य हो चुके थे जो स्पष्टतः अद्वयवादी थे। अतः वेदान्त के अद्वैतवाद का उनसे निकट सम्बन्ध सहज है।

ब्रसू ने बौद्ध विचारधारा को पूर्वपक्ष के रूप में अंशतः ग्रहण किया है। उसमें क्षणभङ्गवाद, कार्यकारणवाद, तत्त्वमीमांसा आदि बौद्ध अवधारणाओं पर युक्तिपूर्वक आक्षेप किए गए किन्तु गौडपाद ने बौद्ध विचारधारा को अत्यधिक व्यापक रूप में स्वीकार किया। उन्होंने उप के साथ बुद्ध को भी आदर दिया और दोनों को अपरिहार्य माना। वे यह मानते थे कि उप और बुद्ध में पारमार्थिक दृष्टि से कोई विरोध नहीं है। दूसरे शब्दों में, गौडपाद ने पूर्व प्रचलित वेदान्त और बौद्ध के खण्डनात्मक इतिहास को, अविरोध की दिशा दी। गौडपाद द्वारा अविरोध के इस अध्याय का

१. (a) विज्ञानवाद का प्रतिपादन करना आचार्य गौडपाद का उद्देश्य नहीं था। विज्ञानवाद के मूलभूत सिद्धान्त को उन्होंने तस्मान्न जायते चित्तं, एवं न जायते चित्तं, एवं न चित्तजा धर्माः आदि कह कर उड़ा दिया है और संभवतः उन्हें विध्वंसित न होने के लिए आगाह भी कर दिया है- एकमेव विज्ञानन्तो न पतन्ति विपर्यये। अतः आचार्य गौडपाद विज्ञानवादियों के अत्यन्त समीप तो हैं, किन्तु उनमें एकात्मभाव उन्होंने नहीं किया है। उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. ९७३.

(b) गौडपादाचार्य कार्य-कारणभाव की अनुपपत्ति दिखलाते हैं।... ऐसा लगता है कि गौडपादाचार्य को 'विज्ञानवाद' भी सम्मत नहीं हैं; क्योंकि उसमें भी उत्पत्ति विद्यमान है। देवराज, भाद, पृ. ५०८.

(c) लेखक के मतानुसार माण्डूका में अस्पर्शयोग का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह बौद्धों के अस्पर्शयोग से भिन्न है। Roy, S.S., The Heritage Samkara, p. 56.

अनुसन्धान न केवल, गौडपाद के अद्वैतवादी विचारों की नवीनता का आधार ही बना बल्कि उनके इस प्रयास ने यह भी सिद्ध कर दिया कि बौद्ध, वेदान्त से सर्वथा भिन्न अथवा उसकी सर्वथा विरोधी विचारधारा नहीं है।

आधुनिक विचारकों ने पारिभाषिक शब्द, दृष्टान्त और तर्क-पद्धति के माध्यम से गौडपाद पर आए बौद्ध प्रभाव को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है किन्तु उनके स्वरूप व विस्तार को लेकर मतभेद हैं।

बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान विचारों अथवा सिद्धान्तों से गौडपाद का निकट सम्बन्ध स्थापित होता है और ये तीनों पक्ष उसकी कारिकाओं के माध्यम से भी प्रकट होते हैं। (i) पारमार्थिक सत्य, व्यवहार से सर्वथा भिन्न है। (ii) जगत् अथवा व्यवहार का पारमार्थिक सत्य से सम्बन्ध (iii) पारमार्थिक सत्य की अनुभूति का मार्ग अथवा उपाय। इन तीनों बिन्दुओं पर कहीं गौडपाद की विचारधारा, शून्यवाद के निकट आती है और कहीं विज्ञानवाद के। किन्तु यह निश्चित है कि विज्ञानवाद और शून्यवाद के समक्ष जो भी समस्या रही, गौडपाद ने उसी का समाधान करने का प्रयास किया।

गौडपाद, यद्यपि वेदान्त-प्रतिपादित अद्वैत ब्रह्म की स्थापना का लक्ष्य रखते हैं तथापि उन्होंने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए श्रुति का आश्रय लेने के अतिरिक्त स्वतन्त्र तर्क व दृष्टान्तों का आश्रय लेने की जो नीति अपनाई थी, उस पर भी बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है।

अद्वैत के प्रतिपादन में द्वैत सर्वथा उपेक्षणीय नहीं होता। अतः कारिका-ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से कहा जा सकता है कि गौडपाद के द्वैत पर विज्ञानवाद का प्रभाव रहा है। कुछ लेखक गौडपाद को वसुबन्धु से परवर्ती मानते हैं। अतः वसुबन्धु के साहित्य और विचारधारा से गौडपाद का परिचित होना स्वाभाविक है।

गौडपाद में वेदान्त और बौद्धों के सम्बन्धों का जो स्वरूप दिखाई देता है, उसे वेदान्त-बौद्ध-सम्बन्ध का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। क्योंकि एक ओर ब्रह्म तथा दूसरी ओर शङ्कर की तुलना में गौडपाद की बौद्ध दर्शन के प्रति दृष्टि और प्रवृत्ति सहनशीलता और सामञ्जस्य की है जबकि शङ्कर में गंभीर विस्तार, तीक्ष्ण तर्क, सम्प्रदायों की अनेकता, विचारों की स्पष्टता, पूर्वपक्ष का पर्याप्त उल्लेख इत्यादि सभी होने पर भी उनका मूल भाव बौद्ध विधि से बौद्ध विचार का खण्डन ही है (इस पक्ष पर अग्रिम परिच्छेद में विस्तार से विचार किया जाएगा)।

गौडपाद, वेदान्त और बौद्ध के सद्भावपूर्ण सम्बन्ध के उदाहरण मात्र नहीं हैं अपितु किसी लुप्त परम्परा के प्रतिनिधि भी हैं और उनका ग्रन्थ इसका अभिव्यञ्जक है क्योंकि ब्रह्म और गौडपाद में एक लम्बा अन्तराल है। गौडपाद के ग्रन्थ में उल्लिखित बौद्ध सन्दर्भों का विश्लेषण-विवेचन उन्हीं निष्कर्षों की पुष्टि करता है जो निष्कर्ष स्वतन्त्ररूप से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले लेखकों ने निकाले हैं। उन निष्कर्षों की कारिका-ग्रन्थ में समागत बौद्ध सन्दर्भों से सटीक और गहराई से पुष्टि होती है।



चतुर्थ परिच्छेद

शारीरकभाष्य में बौद्ध सन्दर्भ

१. आचार्य शङ्कर

(अ) प्रादुर्भाव

भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के इतिहास में आचार्य शङ्कर अप्रतिम प्रतिभावान् थे। एक अलौकिक विभूति के रूप में उनका स्मरण किया जाता है। परम्परागत आस्था उन्हें भगवान् शङ्कर के पुनर्प्रादुर्भाव के रूप में मानती है। जबकि सामान्य धारणा के अनुसार वे अद्वैत वेदान्त के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रामाणिक आचार्य होने के साथ ही वैदिक संस्कृति के दार्शनिक व्याख्याता और उसके पुनरुद्धारक थे।

यद्यपि आचार्य शङ्कर ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं तथापि उनकी प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं होती है। अनेक ग्रन्थों में उनके जीवन पर प्रकाश भी डाला गया है किन्तु उनमें परस्पर सङ्गति का अभाव है। अतः उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। फिर भी शङ्कर के जीवन-विषयक प्राप्त साहित्य के आधार पर संक्षेप में उनकी जीवनी का कथात्मक स्वरूप प्रस्तुत है।^१

आचार्य शङ्कर नामक इस अद्वितीय विभूति का जन्म सुदूर दक्षिण केरल प्रान्त के कालड़ी नामक अग्रहार में कैप्पिल्लि वंशज, अतिगोत्र, कृष्णयजुर्वेदीय, तैत्तिरीय शाखा, नम्बूदिर ब्राह्मण दम्पति, श्री शिवगुरु व सती आर्यम्बा के घर, वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था।^२ बचपन से ही शङ्कर बहुत ही शान्त,

१. आचार्य शङ्कर के इस जीवन-परिचय को यहाँ स्वामी अपूर्वानन्द की रचना आचार्य शङ्कर के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ, आचार्य शङ्कर की यथातथ्यरूप में जीवनी नहीं है, अपितु शिवावतार शङ्कर के चरणों में श्रद्धांजलि मात्र है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त आचार्य शङ्कर की जीवनी के लिए द्र. पुस्तकें-

(a) शर्मा, रामगोपाल, आद्य श्रीशङ्कराचार्य : आविर्भाव-काल.

(b) मिश्र, जयराम, आदिशङ्कराचार्य जीवन व दर्शन

२. आचार्य शङ्कर के जन्म के वर्ष, तारीख और तिथि के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं। स्वामी अपूर्वानन्द के मतानुसार शङ्कर का आविर्भाव ६८६ ई. में वैशाख शुक्ल तृतीया, सौर १२ तारीख के शुभ मध्याह्नकाल में हुआ था। आचार्य शङ्कर, पृ. ५.

धीर और तीक्ष्णबुद्धि थे। इन्होंने तीन वर्ष की अवस्था में ही मातृभाषा मलयालम के अनेक ग्रन्थों व वेद, उप, पुराण आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। इसी तृतीय वर्ष में उनका चूड़ाकरण संस्कार भी सम्पन्न हुआ। बालक शङ्कर की इस प्रतिभा को देखकर जन्म के पाँचवें वर्ष में, उनकी माता आर्यम्बा ने उनका उपनयन संस्कार कर, उन्हें गुरुकुल भेज दिया। जिन शास्त्रों के अध्ययन में मेधावी छात्रों को बीस वर्ष तक लग जाते थे, अपनी प्रतिभा व गुरु के आशीर्वाद से उन ग्रन्थों का अध्ययन, बालक शङ्कर ने दो वर्षों के अन्दर ही कर लिया था।^१ इस प्रकार सात वर्ष की अल्प आयु में शङ्कर ने गुरुकुल की शिक्षा समाप्त की और घर लौट आए। एक वर्ष तक माता की सेवा में तत्पर होकर उन्होंने जन्म के आठवें वर्ष में, कालटी के पूर्णा (चूर्णा) नदी-तट पर आकस्मिक घोर दुर्घटना से बच कर^२ मानसिक आतुर संन्यास लेकर नर्मदा नदी-तट पर रहने वाले गुरु श्री गोविन्दपाल से शास्त्रोक्त संन्यास-दीक्षा व ब्रह्मविद्या-शिक्षा प्राप्त की। यतिवर शङ्कर चार वर्ष तक गुरु गोविन्दपाल के सान्निध्य में रहे तथा एक दिन गुरु की आज्ञा व वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से काशी की ओर प्रस्थान किया। ऐसा माना जाता है कि काशी पहुँचकर शङ्कर को भगवान् शिव के साक्षात् दर्शन हुए थे तथा शिव ने शङ्कर को प्रस्थानत्रय पर भाष्य की रचना का आदेश दिया था। काशी में रहकर भाष्य-रचना के इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा करना कठिन था क्योंकि यहाँ एकांत उनके लिए दुर्लभ था। अतः इस महान् उद्देश्य के साथ आचार्य शङ्कर शिष्यों सहित उत्तर दिशा की ओर बदरीनाथ पहुँचे और यहाँ पहुँचकर उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया।

शङ्कर एकमात्र वीतराग परिव्राजक ही नहीं थे, अपितु एक आचार्य भी थे। सत्य की विशुद्ध ज्वाला उनके अन्तस्तल में प्रज्वलित हो रही थी। अतः एक आचार्य के रूप में उन्होंने स्थान-स्थान^३ पर भ्रमण किया और विभिन्न मतों के आचार्यों के साथ संवाद और शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए। परम्परागत वर्णनों के

१. सायण माधवाचार्य के ग्रन्थानुसार शङ्कर ने बचपन में ही रहस्यों के साथ समस्त विद्याएँ (अनेक क्षेत्रों में गुरु की सहायता लिए बिना) अधिगत कर ली थीं। उस बालक ने न्याय, सांख्य, मीमांसा, पातञ्जल, दर्शनशास्त्र, सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक और वैभाषिक आदि बौद्ध दर्शन, जैन व चार्वाक दर्शन का भी अध्ययन कर लिया था। इसके अतिरिक्त इतिहास, पुराण, स्मृतिशास्त्र में भी वह पारंगत थे। स्वामी अपूर्वानन्द, **आचार्य शङ्कर**, पृ. ९ (पाद टिप्पणी)।

२. विद्र- वही, पृ. १७-२२.

३. ऋषिकेश, देवप्रयाग, श्रीनगर, विष्णुप्रयाग, धौलिंगंगा, पाण्डुकेश्वर, ज्योतिर्धाम, केदारनाथ, मथुरा, शृंगेरी, सौराष्ट्र, शारदापीठ आदि कई महत्त्वपूर्ण स्थलों पर शङ्कर गए थे।

अनुसार वे अपनी विजययात्राओं में कुमारिल^१ (प्रयागराज में) तथा मण्डन मिश्र (माहिष्मती में) के सम्पर्क में आए जिनमें से आगे चलकर मण्डन मिश्र उनके शिष्य बन गये और सुरेश्वराचार्य^२ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस यात्रा में शङ्कर ने अद्वैतवाद तथा सनातन वैदिक धर्म का रक्षण और प्रचार करने के लिए श्रुति व पुराणों के आधार पर चार वेदों व चार उपदेष्टव्य महावाक्यों के लिए चार दिशाओं में चार मठों^३ की स्थापना की और अपने चार प्रमुख शिष्यों^४ को तत्तत् स्थानों पर प्रतिष्ठित किया।

धर्मदिग्विजय-यात्रा के अन्त में, कश्मीर पहुँचकर उन्होंने वहाँ के प्राचीन सर्वज्ञपीठ पर (प्रख्यात शार्दीग्राम) आरोहण भी किया। यहाँ से आचार्य शङ्कर केदारनाथ गए तथा केदारनाथ पहुँचकर उन्होंने मन्दिर के समीप (कैवल्यधाम) में, अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया। इस प्रकार लोककल्याण व वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना के लिए प्रादुर्भूत हुए आचार्य शङ्कर जन्म के बत्तीसवें वर्ष में इस संसार से तिरोहित हो गए।

भारतीय संस्कृति के इतिहास-पटल पर आचार्य शङ्कर का जन्म साधारण घटना नहीं है। इसका ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक महत्त्व है। उनका प्रादुर्भाव एक ऐसी युगान्तकारी घटना थी जिसने पूर्व वैदिक काल के स्वर्णयुग को आत्मसात् करके, वर्तमान के असङ्गत वैविध्य को गम्भीरता से अनुभव किया और आगामी युगों-युगों के लिए लोककल्याणकारी वैदिक संस्कृति को सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान किया।

परम्परागत वर्णनों से ज्ञात होता है कि आठवीं शती के उत्तरार्द्ध (शङ्कराचार्य के प्रादुर्भाव काल) में सम्पूर्ण भारत की धार्मिक व दार्शनिक स्थिति अत्यन्त विश्रृंखलित थी। भारतीय समाज धर्म, दर्शन व तन्त्र के नाम पर तीन प्रधान मतों (वैदिक, आगमिक व अवैदिक) में विभक्त था।

१. दक्षिण भारत की एक परम्परा के अनुसार शङ्कर कुमारिल के शिष्य थे।
२. प्रोफेसर हिरियन्ना ने सुरेश्वर तथा मण्डन मिश्र के एक होने पर आपत्ति की है तथा इस मत के समर्थन में प्रमाण उपस्थित किये हैं। द्र.- 'Journal of the Royal Asiatic Society' अप्रैल, १९२३ और जनवरी १९२४.
३. पूर्व- ऋग्वेद, प्रज्ञानं ब्रह्म, जगन्नाथपुरी (गोवर्धनमठ), दक्षिण-यजुर्वेद, अहं ब्रह्मास्मि, शृंगगिरि (शृंगेरीमठ), पश्चिम- सामवेद, तत्त्वमसि, द्वारकाधाम (द्वारकामठ), उत्तर-अथर्ववेद, अयमात्मा ब्रह्म, बदरीधाम (जोशीमठ)।
४. श्रीसनन्दनाचार्य या पद्मपाद, काशी में दीक्षा, गोवर्धन मठ के आचार्य; श्री सुरेश्वराचार्य, माहिष्मति में दीक्षा, शृंगेरी मठ के आचार्य; श्री हस्तामलक, श्री बली ग्राम में दीक्षा, शारदा मठ के आचार्य; श्री तोटकाचार्य, शृंगगिरि में दीक्षा, ज्योतिर्मठ के आचार्य।

वैदिक संस्कृति के नाम पर अनेक धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हो गए थे। महाकवि बाणभट्ट ने **हर्षचरित** में भागवत, कपिल, कणाद, पौराणिक, ऐश्वर, कारणिक, कारन्धमिन् (धातुवादी), सप्ततान्तव (मीमांसक), शाब्दिक (वैयाकरण) पाञ्चरात्रिक नामक ऐसे कई प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। ये सभी मतावलम्बी यथार्थ धर्म से च्युत होकर भी स्वयं को वेद का सबसे बड़ा अनुयायी बता रहे थे। यहाँ तक कि इन विविध मतों के आचार्यों ने अपने मत की प्रतिष्ठा के लिए शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ भी किया था। तथापि शङ्कर यह जानते थे कि कोई भी आन्दोलन निषेधपरक भाव के आधार पर सफल नहीं हो सकता। अतः उन्होंने सभी के मतों को सुनकर शास्त्र-सम्मत व युक्तिपूर्ण ढङ्ग से उनसे शास्त्रार्थ कर उन्हें उनके मतों की अपूर्णता समझा दी थी।

शङ्कर युग में तन्त्रपूजा और तान्त्रिकों का बोलबाला था। तान्त्रिक साधना में पञ्च मकारों^१ की प्रमुखता थी। ये पञ्च मकार योगियों के लिए मुक्तिप्रदायक माने जाते हैं। किन्तु काम-पिपासु साधकों द्वारा इसका दुरुपयोग किये जाने पर समाज में भ्रान्त धारणा फैल रही थी। आशय यह है, कि धर्म के नाम पर साधक खुलकर विषयभोग कर रहे थे तथा उनके क्रियाकलाप जनमानस की चेतना को प्रभावित कर रहे थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में आचार्य शङ्कर ने वैदिक धर्म के शाश्वत मूल्यों की तर्कपूर्ण व्याख्या कर, श्रेय और प्रेय, अध्यात्म-पक्ष व व्यवहार-पक्ष के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करने का कार्य किया। उन्होंने जनमानस को यह बताया कि चाहे सगुण ब्रह्म की उपासना हो अथवा विविध प्रकार की

१. (a) पञ्च मकार में पाँच तत्त्व परिगणित हैं- मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। पञ्च मकार में प्रथम तत्त्व मद्य है। **मद्य** अर्थात् शराब। लेकिन पञ्च मकार में प्रयुक्त होने वाला मद्य वह तरल तत्त्व नहीं है जिसे उदरस्थ करने के बाद व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। बल्कि यहाँ मद्य तो वह अमृत है जो चन्द्र की सात्विक रश्मियों से प्राप्त होता है। इस मद्य को ग्रहण करने के बाद व्यक्ति सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्त हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। **मांस** शब्द का प्रथम अक्षर 'मा' है जिसका अर्थ है जिह्वा। जिह्वा का कार्य है- वाक् या बोलना। योगी सदैव वाक्-संयम करके मौन रहता है। यही मांस साधना है। **मत्स्य** से यहाँ तात्पर्य श्वास-प्रश्वासरूपी दो मत्स्य गंगाओं से है। जो साधक इन दो मत्स्य गंगाओं पर नियन्त्रण कर लेता है, उसे मत्स्य साधक कहते हैं। आनन्द (सत् चिन्तन) के भावातिरेक तरंगों को अन्तर्मन में सदैव बनाए रखना ही **मुद्रा** साधना है। **मैथुन** का अर्थ शिव-शक्ति के स्वाभाविक संयोग से है। मूलाधार में स्थित कुंडलिनी (शक्ति) तथा सहस्रार में स्थित शिव से संयोग होता है तब आनन्द के उद्भेग का जन्म होता है। इसे तान्त्रिक मैथुन कहते हैं।

(b) विद्र- 'Patel, Dadubhai N., The Real Essence of Tantra.

(c) विद्र- द्विवेदी, रामचन्द्र, काश्मीर की शैव परम्परा।

साधना, शास्त्र के अनुशासन के अनुसार सकाम भाव से अनुष्ठित होने पर, उससे कामानुसार लोकादिरूप फल की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु निष्काम भाव से अनुष्ठित होने पर चित्तशुद्धि होती है। शुद्ध चित्त पुरुष के अन्तस् में सच्चिदानन्दरूप अद्वैत ब्रह्म का परम प्रकाश होता है तथा उस अद्वैत ब्रह्मात्मविज्ञान में प्रतिष्ठित होने पर सर्व दुःखों से मुक्ति होती है। इस प्रकार आचार्य शङ्कर ने प्रत्येक मत की साधना को अद्वैत ज्ञान में आरोहण करने के सोपानरूप में बतलाते हुए अद्वैत ब्रह्म तत्त्व का उपदेश देकर पूर्णता का व्याख्यान किया।

वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के इस क्रम में अवैदिक कहे जाने वाले बौद्ध मतावलम्बी, एक अलग समस्या उत्पन्न कर रहे थे। इन्होंने वैदिक धर्म को खुलकर चुनौती दी। इस समय जहाँ वैष्णव धर्मावलम्बी ईश्वरवाद की भक्तिपरक प्रवृत्ति का व मीमांसक उनके विरोध में वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार कर रहे थे, वहीं बौद्ध मतानुयायियों ने वेद को अप्रमाणिक व वेद-वाक्यों को परस्पर असङ्गत बताते हुए उनके मूल सिद्धान्त आत्मवाद पर प्रहार किया। नागार्जुन, वसुबन्धु, दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध दार्शनिक व उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, बौद्ध न्याय समाज को अलग से प्रभावित कर रहे थे। यद्यपि वैदिक मतावलम्बी वात्स्यायन, उद्योतकर एवं प्रशस्तपाद आदि आचार्य इनके युक्तियुक्त व तर्कपूर्ण खण्डन में लगे थे किन्तु इसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसी परिस्थिति में शङ्कर ने अपने अकाट्य तर्कों से श्रुतिविरोधी बौद्ध सिद्धान्तों पर प्रहार किया तथा बौद्ध धर्म एवं दर्शन को अयुक्त सिद्ध किया। इस प्रकार आचार्य शङ्कर द्वारा जीर्ण हुए वैदिक मत का उत्थान व अद्वैतमत के पुनः प्रचार से धर्म व दर्शन के इतिहास में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ।

(आ) काल

आचार्य शङ्कर ने अपने किसी ग्रन्थ में रचनाकाल का कोई निर्देश नहीं किया है। साक्षात् शिष्यों द्वारा रचित ग्रन्थों में भी आचार्य के काल का कोई उल्लेख नहीं है। समसामयिकों ने जिन ग्रन्थों की रचना की उनमें शङ्कर की जीवन-कथा का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है। परवर्ती काल के आचार्यों ने शङ्कर की जीवन-गाथाएँ लिखी भी हैं तो उनमें पुराण-शैली का प्रभाव विशेषकर परिलक्षित होता है। आशय यह है कि प्राचीन परिपाटी के अनुसार चूँकि स्वरचित ग्रन्थों में काल-वर्णन का कोई स्थान नहीं था, अतएव भिन्न-भिन्न विचारकों ने विविध घटनाओं व प्रसङ्गों के आधार पर, आचार्य शङ्कर के प्रादुर्भाव-काल की भिन्न-भिन्न तिथियाँ निर्धारित की हैं।

आचार्य के प्रादुर्भाव-काल विषयक प्राप्त मतों का वर्गीकरण करने पर उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

प्रथम वर्ग की मान्यतानुसार, शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव-काल ७८८-८२० ई. माना जाता है। देवराज^१, हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा^२, राममूर्ति पाठक^३, चन्द्रधर शर्मा^४, जगदीश सहाय श्रीवास्तव^५, के.बी. पाठक^६, भरत सिंह उपाध्याय^७, राधाकृष्णन्^८, एस.एन. दासगुप्ता^९ आदि विचारक प्रथम वर्ग के समर्थक हैं।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत, आचार्य के प्रादुर्भाव-काल को लेकर इतिहासकारों में अनेक मत प्रचलित हैं। यथा, उदयवीर शास्त्री^{१०} ने शङ्कराचार्य को ४५२ वर्ष विक्रम पूर्व (५०९ ख्रीस्ट पूर्व) सिद्ध किया है। के.टी. तैलंग^{११} के अनुसार आचार्य के काल की यह तिथि ५५०-५९० ई. निर्धारित की जानी चाहिये। कुछ अन्य विद्वान् जो ७८८-८२० ई. की इस तिथि से सहमत नहीं थे, उन्होंने अनुसन्धान के आधार पर आचार्य के काल की विभिन्न तिथियाँ दी हैं^{१२}- टी.आर. चिन्तामणि के अनुसार वह तिथि ६५५-६८७ ई., श्रीकण्ठ शास्त्री के अनुसार ५५०-६५० ई. तथा बलनेल के अनुसार ६५२-६८० ई. है। राजेन्द्र नाथ घोष^{१३}, उनका जीवन-काल ६८६-७२० ई. मानते हैं। इस प्रकार एक अन्य विद्वान् Hajime Nakamura^{१४} ने शङ्कराचार्य को ७००-७५० ई. में प्रादुर्भूत स्वीकार किया है।

प्रादुर्भाव-विषयक इन तिथियों के ऐतिहासिक विवाद में न पड़कर यदि, उपर्युक्त उल्लिखित सभी मतों का एकसाथ विश्लेषण किया जाए तो आचार्य

१. भाद, पृ. ५१८.
२. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. २९१.
३. भादस, पृ. १३६.
४. बौवे, पृ. २२६.
५. अवेभू, पृ. ६१.
६. उपाध्याय, बलदेव, श्री शङ्कराचार्य, पृ. ४२.
७. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. १५.
८. भाद-११, पृ. ४४७-४५०.
९. A History of Indian Philosophy, p. 84.
१०. वेदङ्ग, पृ. ४३८.
११. Kuppuswami, Sri Bhagavadpada Shankaracharya, p. 21.
१२. मिश्र, हृदयनारायण एवं अर्जुन, अवेदा, पृ. १३.
१३. Kuppuswami, Sri Bhagavadpada Shankaracharya, p. 22-25.
१४. A History of Vedanta, p. 67.

शङ्कर के प्रादुर्भाव-काल की पूर्व सीमा, विक्रम पूर्व ४५२ वर्ष तथा अपर सीमा ८२० ई. निर्धारित होती है। तथापि परम्परानुसार आचार्य शङ्कर का काल ७८८-८२० ई. ही मान्य है।

(इ) कृतित्व

आचार्य शङ्कर के आविर्भाव-काल व जीवन-घटनाओं के समान ही उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में भी पर्याप्त विवाद है। शङ्कराचार्य की कृतियों के रूप में दो सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनमें से कौन सी कृति, गोविन्दपाद के साक्षात् शिष्य शङ्कराचार्य द्वारा रचित है, यह निर्णय करना कठिन है^१ तथापि आचार्य शङ्कर की कृतियों के नाम से जो सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, उनका वर्गीकरण इस प्रकार है- (i) भाष्य ग्रन्थ, (ii) स्तोत्र ग्रन्थ, (iii) प्रकरण ग्रन्थ, (iv) तन्त्र ग्रन्थ।

(i) भाष्य ग्रन्थ- शङ्कराचार्य की कीर्ति के आधारभूत स्तम्भ प्रस्थानत्रयी पर उनके भाष्य हैं-

(क) ब्रसूशाभा

(ख) गीता भाष्य

(ग) दशोपनिषद् भाष्य^२

(घ) अन्य भाष्य- माण्डूकाभाष्य, गायत्रीभाष्य, सनत्सुजातीयभाष्य, विष्णुसहस्रनामभाष्य, हस्तामलकस्तोत्रभाष्य, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्भाष्य, सांख्यकारिका पर जयमङ्गलाटिका आदि।

(ii) स्तोत्र ग्रन्थ- ज्ञानमार्गी होने के साथ ही शङ्कराचार्य ने धार्मिक लोक के लिए 'षण्मतस्थापना' की और शिव, शक्ति, विष्णु, गणपति व सूर्य इन पञ्चायतन के देवताओं में अभेद स्थापित कर स्तोत्र ग्रन्थों की रचना की-

(क) गणेशस्तोत्र (४ स्तोत्र)

(ख) शिवस्तोत्र (१८ स्तोत्र)

१. परवर्ती शङ्कराचार्यों ने भी अनेक रचनाएँ लिखी हैं, और उन्होंने ग्रन्थों की पुष्पिका में स्वयं को आदि शङ्कराचार्य के समान गोविन्दपाद का ही शिष्य स्वीकार किया है।
२. ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतक, पर भाष्य निर्विवाद है। श्वेताश्वतर, नृसिंहतापनीय, पर इनका भाष्य संदिग्ध माना जाता है।

- (ग) देवीस्तोत्र (१९ स्तोत्र)
- (घ) विष्णुस्तोत्र (१० स्तोत्र)
- (ङ) युगलदेवतास्तोत्र (४ स्तोत्र)
- (च) नदीतीर्थ विषयक स्तोत्र (५ स्तोत्र)
- (छ) अन्य स्तोत्र (४ स्तोत्र)

इस प्रकार शङ्कर के कुल ६४ स्तोत्र मिलते हैं^१। आफ्रेक्ट ने लगभग २४० ग्रन्थों को शङ्कर के नाम से निर्दिष्ट किया है और कुछ को ही शङ्करकृत माना है^२।

इनके अलावा निम्नलिखित स्तोत्र, आदि शङ्कराचार्य की प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं- आनन्दलहरी, गोविन्दाष्टक, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, दशश्लोकी, चर्पटपञ्जरिका, द्वादशपञ्जरिका, पट्पदी, हरिमीडेस्तोत्र, मनीषापञ्चक, सोपानपञ्चक, शिवभुजङ्गप्रपात आदि।

(iii) प्रकरण ग्रन्थ- आचार्य शङ्कर ने वेदान्त-सम्बन्धी अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थों की रचना की है। वेदान्त तत्त्व के प्रतिपादक होने के कारण ये ग्रन्थ प्रकरण-ग्रन्थ कहे जाते हैं। ऐसे प्रकरण-ग्रन्थों की संख्या पर्याप्त है। इनमें से अधिकांश संदिग्ध हैं। जो असंदिग्ध और प्रामाणिक कृतियाँ हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं- अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध, उपदेशसाहस्री, पञ्चीकरणप्रक्रिया, प्रबोधसुधाकर, लघुवाक्यवृत्ति, वाक्यवृत्ति, विवेचचूडामणि और शतश्लोकी^३।

(iv) तन्त्र ग्रन्थ- आचार्य शङ्कर ने दो तन्त्र-ग्रन्थों की रचना की है। सौन्दर्य-लहरी और प्रपञ्चसार^४।

(ई) सिद्धान्त

ब्रह्म

भारतीय दर्शन के इतिहास में शाङ्कर दर्शन स्पष्टतः अद्वैतवाद कहलाता है। इसके अनुसार अद्वैत तत्त्व, 'ब्रह्म' को एकमात्र पारमार्थिक सत् माना गया

१. श्रीवाणीविलास से प्रकाशित, शङ्करग्रन्थावली।
२. Of the treatises attributed to him hardly the third part is his own (out of about 240 works) Catalogue Catalogorum, p. 626.
३. विद्र- मिश्र, जयराम, आदिशङ्कराचार्य जीवन और दर्शन, पृ. २६३-६४.
४. वर्ण्य-विषय जानने के लिए द्र.- वही, पृ. २६४-२६५.

है।^१ ब्रह्म शब्द की सार्थकता के लिए उप का वचन है- **निरतिशयभूमाख्यं बृहत्वाद् ब्रहोति विद्धि**^२ अर्थात् अपने बृहत्त्व के कारण निरतिशय या भूमा ही ब्रह्म कहलाता है। यह ब्रह्म, पारमार्थिक, कूटस्थ, नित्य, व्योमवत् सर्वव्यापी, सर्वविध विकारों से रहित, नित्यानन्द स्वरूप, निरवयव एवं ज्योतिस्वरूप है।^३ इसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभावरूप भी कहा जाता है।^४ यद्यपि ब्रह्म को इन सभी शब्दों के माध्यम से अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों में व्याख्यात किया गया है किन्तु ये सभी शब्द मिलकर उस पारमार्थिक तत्त्व के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। शब्दों की एक सीमा है और ब्रह्म शब्दातीत अथवा अनिर्वचनीय है। अतः श्रुतियाँ, ब्रह्म का निर्वचन नेति-नेति पद्धति से भी करती हैं। पुनः व्यवहार की दृष्टि से भी उस अद्वैत तत्त्व का व्याख्यान, श्रुति-ग्रन्थों में किया गया है और वहाँ उसे स्वरूपलक्षण तथा तटस्थलक्षण के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।^५ इनमें भी तटस्थ-लक्षण, विशुद्ध व्यवहार की दृष्टि से कहे गये हैं तथा स्वरूप-लक्षण में तटस्थ-लक्षण की अपेक्षा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित किया गया है।

स्वरूप-लक्षण के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। वस्तुतः सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म के तीन गुण नहीं हैं अथवा इनमें विशेषण-विशेष्यभाव सम्बन्ध नहीं है अपितु जो सत् है वही चित् है और वही आनन्द है। आचार्य ने ब्रह्म के इस सच्चिदानन्द स्वरूप को **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रहोति ब्रह्मणो लक्षणार्थं वाक्यम्**^६ कहकर भी पारिभाषित किया है। ब्रह्म सत् होने के कारण अव्यय, नित्य, शाश्वत, अमृतस्वरूप, अखण्ड और अविनाशी है^७; ज्ञानरूप होने के कारण

१. एकमेव हि परमार्थसत्यं ब्रह्म, तैत्तिरीय उपशाभा, पृ. १७१.
२. केनउप शाभा, पृ. १/५.
३. ब्रसूशाभा, १/१/४.
४. नित्यं, शुद्धम्, बुद्धं, मुक्तं। नृसिंह उप, ८.९.
५. किसी वस्तु का आन्तरिक स्वरूप न होते हुए भी अन्य वस्तुओं से उसका भेद करने वाला (व्यवच्छेदक) लक्षण तटस्थ-लक्षण कहलाता है (स्वरूपान्तराभूत्वे सति इतरव्यावर्तक तटस्थलक्षणम्)। पुनः किसी वस्तु का आन्तरिक स्वरूप जो उसे अन्य वस्तुओं से पृथक् करता है, स्वरूप-लक्षण है (स्वरूपान्तराभूत्वे सति इतरव्यावर्तक स्वरूपलक्षणम्)। तात्पर्य यह है कि तटस्थ-लक्षण किसी वस्तु का आगन्तुक गुण है और स्वरूप लक्षण उसका अनिवार्य गुण।
६. तैत्तिरीय उप, शाभा, पृ. १०१.
७. (a) गीता, शाभा, २/३०.
(b) बृहदारण्यक उप शाभा, ४/४/२५.
(c) श्वेताश्वतर उप शाभा, ६/१९.

चिन्मात्र, संविदरूप, प्रकाशस्वरूप एवं बोधरूप है तथा अनन्त होने के कारण सर्वव्यापी, भूमा, पूर्ण और आनन्दरूप है।^१

मोक्ष

बन्धन और मोक्ष परस्पर सापेक्ष अवधारणाएँ हैं अर्थात् जिसका बन्धन, उसी का मोक्ष। शाङ्कर दर्शन विशुद्ध रूप से अद्वैतवाद होने के कारण नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार नहीं करता है। दूसरा पक्ष है सर्वं खल्विदं ब्रह्म। अतः अद्वैतवाद के इस दृष्टिकोण से वहाँ वस्तुतः न कोई बाँधने वाला है और न कोई मुक्त होने वाला। आशय यह है कि पारमार्थिक दृष्टि से अद्वैत वेदान्त में बन्ध-मोक्ष की अवधारणा यथार्थ नहीं है।^२

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अद्वैत वेदान्त में यदि बन्ध-मोक्ष पारमार्थिक दृष्टि से सत्य नहीं है तो आचार्यों द्वारा मोक्ष के उपदेश, मोक्षशास्त्र कहे जाने वाले ग्रन्थ, बन्धन के कारण पर व्याख्यान आदि क्या सब व्यर्थ हैं? इस शंका के समाधान में अद्वैत वेदान्त यह कहता है कि व्यवहार की दृष्टि से इन सब का अस्तित्व है अथवा व्यवहार के स्तर पर बन्ध-मोक्ष की जिस चर्चा का प्रावधान है उसमें बन्धनग्रस्त कोई आत्मा मुक्त नहीं होती अपितु ये सारे उपाय अविद्या की निवृत्ति में सहायक हैं। व्यवहार में अविद्या के कारण आत्मा में अनात्मा का अध्यास होता है^३, जिसके कारण सच्चिदानन्द स्वरूप निरुपाधिक ब्रह्म, अज्ञान व्यष्टि की उपाधि से ग्रस्त हो जीव रूप में प्रतीत होता है। वस्तुतः बिना प्रयास किए ही इस अध्यास का निराकरण होना अथवा जीव पर से उपाधिरूप इस माया के आवरण का हटना ही मोक्ष है।

आचार्य शङ्कर ने मोक्ष के इस स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि- यह पारमार्थिक सत्, कूटस्थ नित्य, आकाश के समान सर्वव्यापी, सभी क्रियाओं से रहित, नित्यतृप्त, निरवयव एवं स्वयंज्योति स्वभाव है।^४ मोक्ष की अवस्था

१. छान्दोग्य उप, ७/२३/१.

२. अथ पारमार्थिकमेव चेतनस्य तप्यत्वमभ्युपगच्छसि तवैव सुतरामनिर्मोक्षप्रसंगं प्रसज्येत नित्यत्वाभ्युपगमाच्च तापकस्य। ब्रसूशाभा, २/२/१०.

३. वही, उपोद्घात।

४. इदं तु पारमार्थिकं, कूटस्थनित्यं व्योमवत् सर्वव्यापी, सर्वविक्रियारहितं, नित्यतृप्तं, निरवयवं, स्वयंज्योतिस्वभावम्। यत्र धर्माधिर्मो सहकार्येण कालत्रयं च नोपावर्तते। तदेतदशरीरत्वं मोक्षाख्यम्। ब्रसूशाभा, १/१/४.

में धर्म, अधर्म, अपने कार्य सुख एवं दुःख के साथ तीनों कालों में सम्बन्ध नहीं रखते। यह शरीररहित अवस्था ही मोक्ष है।

दूसरे शब्दों में, मोक्ष और अविद्या की निवृत्ति अथवा ब्रह्मानुभूति एक ही है।^१ मोक्ष का अर्थ आत्मा द्वारा किसी दूसरे रूप की प्राप्ति भी नहीं है क्योंकि यह आत्मानुभूति अथवा नित्य प्राप्त की ही प्राप्ति है, **नित्य प्राप्तस्य प्राप्तिः मोक्षः।**

मोक्ष, कर्म द्वारा साध्य या कर्म का कार्य नहीं है।^२ क्योंकि कोई भी क्रिया चार प्रकार की हो सकती है- उत्पाद्य, प्राप्य, संस्कार्य और विकार्य। मोक्ष, इन सब भावों से परे है। अद्वैत-वेदान्त में यह मोक्ष ज्ञानसाध्य है अथवा ज्ञानरूप है, **ज्ञानादेव मुक्तिः। ऋते ज्ञानात्र मुक्तिः।** दूसरे शब्दों में, ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति की बात करना भी उपचार मात्र है क्योंकि यह मोक्ष को उत्पन्न नहीं करता केवल अविद्या की निवृत्ति करता है, **अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्षः।** ब्रह्मतत्त्व अथवा आत्मतत्त्व की अपरोक्षानुभूति होना मोक्ष है, **ब्रह्मभावश्च मोक्षः।**

आचार्य शङ्कर ने अद्वैतवाद में विदेह-मुक्ति के साथ जीवन्मुक्ति को भी स्वीकार किया है। शङ्कर के अनुसार, ब्रह्म-ज्ञान हो जाने पर सञ्चित कर्म का क्षय हो जाता है तथा क्रियमाण कर्म बन्धनकारी नहीं होते तथापि प्रारब्ध-कर्मों का निवारण इससे नहीं होता। उसका निवारण केवल उसके भोग से होता है। अतः प्रारब्ध-कर्मों के भोग के लिए किञ्चित्काल पर्यन्त उसका शरीर बना रहता है। यह जीवन्मुक्त की स्थिति है। जब जीवन्मुक्त के प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त हो जाता है तब उसका शरीर भी नहीं रहता क्योंकि यह शरीर प्रारब्ध कर्मों का फल है। अतः स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरपात के अनन्तर होने वाली मुक्ति विदेहमुक्ति कहलाती है।

अनुभव, श्रुति एवं तर्क

शङ्कराचार्य ने अपने दर्शन में अनुभव, तर्क एवं श्रुति सभी को स्थान दिया है। अद्वैतवाद में पारमार्थिक दृष्टि से प्रमाण^३ के लिए कोई स्थान नहीं माना गया है। क्योंकि प्रमाण द्वैत (प्रमाता, प्रमेय) पर आधारित होता है जबकि ब्रह्म विशुद्ध अद्वैत रूप है। अतः ब्रह्म प्रमाणातीत है फिर भी यदि प्रमाण की आवश्यकता

१. (a) अविद्यापगममात्रत्वात् ब्रह्मप्राप्तिफलस्य। बृहदारण्यक उप शाभा, १/४/१०.

(b) फलं च मोक्षोऽविद्यानिवृत्तिर्वा वही, १/४/७.

२. ब्रसूशाभा, १/१/४.

३. प्रमाकरणं प्रमाणम्। धर्मराजाध्वरीन्द्र, वेदान्तपरिभाषा, पृ. ९.

को स्वीकार किया जाता है तो अद्वैतवादी आचार्य परम्परागत प्रमाणों से हटकर, अनुभव को एकमात्र प्रमाण मानते हैं।^१

अद्वैत वेदान्त के पारमार्थिक तत्त्व का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता तथापि द्वैत में बंधे शास्त्र शब्द प्रमाण के माध्यम से उस अद्वैत तत्त्व की ओर सङ्केत करते हैं। अतः अनुभव के बाद द्वितीय श्रेणी पर श्रुति को प्रमाण माना जाता है क्योंकि द्वैतात्मक ज्ञान के निवारण में अथवा ब्रह्म-ज्ञान में वह सहायक होती है।^२

अनुभव एवं श्रुति के उपरान्त, तृतीय चरण में तर्क का स्थान आता है। यहाँ तर्क को कोई प्रमाण तो नहीं माना गया है परन्तु तर्क के द्वारा किसी अन्य स्रोत से प्राप्त निष्कर्ष की सम्भाव्यता का निर्धारण किया जा सकता है, अर्थात् तर्क सत्य की स्थापना नहीं कर सकता, पर उसकी पुष्टि अवश्य करता है। इसीलिए शङ्कराचार्य के कथनानुसार तर्क का कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है। वह प्रमाणों व श्रुतियों का अनुग्राहक मात्र है।^३ यद्यपि वह सार्थक या सत्तर्क की परिभाषा देते हुए यह भी कहते हैं- 'सार्थक तर्क वह तर्क है जो श्रुति या लौकिक-प्रत्यक्ष पर आधारित है।^४ वस्तुतः इसी बात को ध्यान में रखकर तर्क को अनुमान या अर्थापत्ति रूप कहा गया है। शङ्कराचार्य के अनुसार- 'वह युक्ति जो दृष्टसाम्य के आधार पर अदृष्ट के विषय में निष्कर्ष निकालती है, श्रुति की अपेक्षा अनुभव के अधिक निकट है। श्रुति की प्रामाणिकता केवल परम्परागत होती है।^५ तर्क के विषय में शङ्कराचार्य की यह धारणा पूर्व-प्रतिपादित अवधारणा (तर्क प्रमाण नहीं है) से सर्वथा भिन्न है।

आचार्य के वक्तव्यों में उपस्थित इस विरोधाभास का समाधान स्वयं उनके भाष्यग्रन्थों में किया गया है। प्रागनुभविक तर्क (कुतर्क) अर्थात् वह तर्क जो श्रुति के अनुभव पर आश्रित नहीं है, उसे प्रमाण की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ऐसा तर्क निन्दनीय व अग्राह्य है। पर जो तर्क, श्रुति या अनुभव पर आधारित है, वह प्रमा का कारण हो सकता है। ऐसे तर्क को शङ्कराचार्य सत्तर्क की संज्ञा देते हैं।

१. दृष्टविपरीतकल्पनाऽनुपपत्ते। ब्रसूशाभा, १/४/१५.

२. तद् ब्रह्म... वेदान्तशास्त्रादेवावगम्यते... तस्मात् सिद्धं ब्रह्मणः शास्त्रप्रमाणकत्वम् वही, १/१/४.

३. ब्रसूशाभा, २/१/११.

४. श्रुत्यनुगृहीत एव ह्यत्र तर्कोऽनुभवाङ्गत्वेनाश्रीयते। वही, २/१/६.

५. दृष्टसाम्येन चादृष्टमर्थं समर्थयन्ती युक्तिरनुभवस्य सन्निकृष्यते, विप्रकृष्यते तु श्रुतिरैतिह्यमात्रेण स्वार्थाभिधानात्। वही, २/१/४.

माया

शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करता है। अद्वैत अथवा परमार्थ के इस स्तर पर ब्रह्म से इतर कोई भी सत्ता नहीं है। दूसरे शब्दों में, पारमार्थिक दृष्टि से अद्वैतवाद में, 'माया' के लिए कोई स्थान नहीं है।^१

यहाँ स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि यदि परमार्थ का यह स्वरूप है तो यह दृश्यमान जगत्, अनुभूत जीवों की विविधता, कर्तृत्व व भोक्तृत्व-भाव, ईश्वर, कर्मफल-व्यवस्था, मोक्षपरक शास्त्र आदि का, उस पारमार्थिक सत्ता से क्या और कैसा सम्बन्ध है; क्या ये सभी व्यर्थ हैं? अद्वैत वेदान्त इस शङ्का का समाधान करते हुए कहता है- यह सब व्यवहार है और व्यवहार, परमार्थ से सर्वथा भिन्न है।

यह सुनिश्चित है कि सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्विकार, कूटस्थ, नित्य इस परमार्थ का व्यवहार से किसी प्रकार का कोई तात्त्विक सम्बन्ध नहीं है तथापि समस्या यह है कि अनुभूयमान जगत्-रूप में इस व्यावहारिक सत्य की उत्पत्ति कहाँ से, कैसे और क्यों हुई। दूसरे शब्दों में, यह जगत् अतीत में भी था, वर्तमान में भी है और संभावना है कि भविष्य में भी रहेगा। वस्तुतः इस जगत् का कारण कौन है?

आचार्य शङ्कर ने इन दो विरुद्धकोटिक सत्यों में सङ्गति स्थापित करने के लिए अथवा विशुद्ध ब्रह्मवाद में व्यावहारिक सत्य की व्याख्या की इस समस्या के समाधान के लिए माया की अवधारणा को अवतरित किया है।

आचार्य के मतानुसार यह माया सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय रूप है।^२ माया को सत् नहीं कहा जा सकता क्योंकि कालान्तर में यह यथार्थज्ञान

१. शङ्कर सृष्टि का होना परमार्थतः नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि वस्तुतः कोई सृष्टि हुई हो तो इसके नानात्व का प्रश्न उपस्थित हो और उसे सत्य माना जाए। किन्तु शास्त्रों में 'नेह नानास्ति किञ्चनः' आदि वाक्यों द्वारा द्वैतभाव का निषेध किया गया है (माकाभा, ३. २४०) अतः इस मत में जगत् के नानात्व का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। व्यास, सूर्यप्रकाश, बौवेका, पृ. १३१.

२. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।

कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।

सन्नाप्यसन्नाप्यभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्यभयात्मिका नो।

साङ्गाप्यनङ्गा ह्यभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।।

विवेकचूडामणि, पृ. ११० और १११.

से बाधित होती है। इसे असत् भी नहीं कह सकते क्योंकि यह व्यवहार अथवा जगत् का कारण है तथा अनुभव का विषय बनती है। इसे सदसत् भी नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा स्वीकार करने में आत्म-विरोध आता है। अतः सत्, असत् अथवा सदसत् से विलक्षण होने के कारण इसे अनिर्वचनीय व मिथ्या कहा है जिसका तात्पर्य है कि यह सत् जैसी भी है, असत् जैसी भी।

शाङ्कर अद्वैतवाद में यद्यपि माया व्यावहारिक सत्य का कारण बनती है तथापि माया का दुर्बल पक्ष यह है कि वह बिना किसी अधिष्ठान अथवा आधार के जगत् की उत्पत्ति नहीं कर सकती है। अतः अद्वैतवाद में माया, सत् ब्रह्म को अपना अधिष्ठान बनाती है यद्यपि ब्रह्म, माया के इस कार्य से पूर्णतः अनभिज्ञ रहता है और यही कारण है कि शुद्ध, निर्विकार ब्रह्म में किसी विकार के आए बिना व्यवहारतः सृष्टि सम्भव हो जाती है। अधिष्ठान की इस आवश्यकता को वेदान्त में रज्जु-सर्प, शुक्तिका-रजत् आदि उदाहरणों से समझाया गया है। अधिष्ठान की इस आवश्यकता को आचार्य शङ्कर^१ ने अपने भाष्य-ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है तथा अन्य आचार्यों^२ ने इस समस्या विशेष पर टिप्पणीरूप में अपने विचार व्यक्त किए हैं। दूसरे शब्दों में, अधिष्ठान की इस सदरूपता के कारण ही शङ्कराचार्य का अद्वैत वेदान्त, 'ब्रह्मवाद' कहलाता है।

वेदान्त में माया के लिए अन्य पर्याय भी प्रयुक्त होते हैं यथा- निशा, तमस्, अविद्या, अज्ञान, भ्रान्ति, अध्यास, विवर्त आदि। शङ्कर ने अविद्या व माया को समानार्थक माना है तथापि शङ्करोत्तर वेदान्तियों में माया और अविद्या के तात्पर्य को लेकर मतभेद व्याप्त है।^३

१. (a) न चाधिष्ठानमात्रेणेन्द्रियाणां व्यवहारः सम्भवति। ब्रसूशाभा, १.१.१
(b) न हि मृगतृष्णिकादयोऽपि निरासपदा भवन्ति। गीताभाष्य, १३/१४.
२. (a) मण्डन मिश्र, अविद्या का आश्रय जीव को निर्धारित करते हैं तथा विषय ब्रह्म को, यत्तु कस्याविद्येति जीवानामिति। ब्रह्मसिद्धि, पृ. १०.
(b) ब्रह्म को परमार्थतः स्रष्टा मानने के लिए शङ्कर तत्पर नहीं हैं क्योंकि परब्रह्म मायाधिष्ठित नहीं है। यदि उसे भी मायाधिष्ठित माना जाएगा तब अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत के स्तर पर आ जाएगा। व्यास, सूर्यप्रकाश, बौवेका, पृ. ११४.
३. सर्वज्ञात्ममुनि ने संक्षेपशारीरक- १.२० में प्रकाशानन्द ने सिद्धान्तमुक्तावली, पृ. ३९ में तथा विद्यारण्य ने विवरणप्रमेयसंग्रह, १.१ में माया और अविद्या में भेद नहीं किया है किन्तु पञ्चदशीकार ने ग्रन्थ की कारिका १५-१७ में दोनों के बीच भेद किया है।

उपर्युक्त पृष्ठों में आचार्य शङ्कर के ज़ीवन, काल, कृतित्व, प्रादुर्भाव के वैशिष्ट्य व सिद्धान्त पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया। सम्प्रति अग्रिम चरण का प्रधान प्रयोजन ब्रसूशाभा में उपलब्ध बौद्ध-सन्दर्भों का संग्रह और विवेचन प्रस्तुत करना है।

उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम शारीरकभाष्य के उन सन्दर्भों का विवरण दिया जाएगा जिनका बौद्ध दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्य के भाष्य की एक विशेषता पूर्वपक्ष को सविस्तर प्रस्तुत करना है। अतः बौद्ध सम्प्रदायों को पूर्वपक्ष के रूप में, जिस स्वरूप में और साधक युक्तियों के साथ प्रस्तुत किया गया है उसका संक्षेप में व्याख्यान करते हुए यह प्रदर्शित किया जाएगा कि वस्तुतः किन पारिभाषिक शब्दों व अवधारणाओं के माध्यम से विवाद या खण्डन के लिए आचार्य ने बौद्ध दर्शन की किन समस्याओं को लक्ष्य बनाया है। इसी के साथ बाधक युक्तियों का स्वतन्त्र विवरण प्रस्तुत करना भी यहाँ अभीष्ट है। अन्त में इस समस्त विवरण को आधार बनाकर उक्त समस्त बिन्दुओं का स्वतन्त्र रूप से विश्लेषण और विवेचन प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष की ओर अग्रसर होना होगा।

२. शारीरकभाष्य में बौद्ध पक्ष

(अ) सन्दर्भ

शाभा, ब्रसू पर उपलब्ध सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय का द्वितीय पाद परमत-निराकरण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। 'तर्कपाद' नाम से विख्यात इस पाद में अधिकरण-४ (समुदायाधिकरण) व ५-(अभावाधिकरण) के अन्तर्गत कुल १५ सूत्रों (सूत्र संख्या १८-३२) में बौद्ध मत का खण्डन किया गया है। इनमें समुदायाधिकरण-४ के अन्तर्गत १० (सूत्र संख्या १८-२७) व अभावाधिकरण-५ के अन्तर्गत ५ (सूत्र संख्या २८-३२) सूत्र समाविष्ट हैं।

(आ) पूर्वपक्ष

सम्प्रदाय

शङ्कराचार्य ने अपने ब्रसूभाष्य में बौद्ध मत के तीन प्रधान दार्शनिक सम्प्रदायों का सर्वास्तिवाद, योगाचार-विज्ञानवाद व सर्वशून्यवादी के नाम से

स्पष्टतः नामोल्लेख किया है^१ तथा इन सभी मतों को सुगत-मत^२ के नाम से स्मृत किया है।

सर्वास्तिवाद

सर्वास्तिवाद^३ बाह्य और आभ्यन्तर अर्थात् भूत और भौतिक व चित्त और चैत सभी की सत्ता स्वीकार करता है। भूत और भौतिक से अभिप्राय क्रमशः पृथिवीधातु आदि के चार प्रकार के परमाणु कठिन, स्नेह, उष्ण और चलन स्वभाव वाले हैं जो पृथिवी आदि भावों के रूप में संघीभूत होते हैं। रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार नामक पाँच स्कन्ध हैं जो आध्यात्मिक हैं और सब व्यवहारों के विषयरूप में संघीभूत होते हैं। इस प्रकार अणुकारण (हेतु) वाले तथा स्कन्ध कारण (हेतु) वाले पञ्चस्कन्धी रूप उभयहेतुक समुदाय की सिद्धि होती है। (ब्रसूशाभा, २/२/१८)।

अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जरा, मरण, शोक, परिवेदना, दुःख और दुर्मनस्यता परस्पर कारण हैं। ये समुदाय परस्पर निमित्त-नैमित्तिक भाव से घटीयन्त्र के समान सर्वदा प्रवर्तित होते रहते हैं, जिनसे आक्षिप्त संघात की उपपत्ति होती है और लोकयात्रा चलती रहती है। चार प्रकार के हेतुओं से चित्त और चैत पदार्थ की उत्पत्ति इस कार्यकारणभाव का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है (वही, २/२/२१)।

सर्वास्तिवाद का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष क्षणभङ्गवाद है। इसके अनुसार उत्तर क्षण की उत्पत्ति के समय पूर्व-क्षण निरुद्ध हो जाता है। अतः प्रत्येक वस्तु की सत्ता क्षणिक है। आत्मा भी क्षणिक है। इस क्षणिक आत्मा में ज्ञान, स्मृति और प्रत्यभिज्ञा, सादृश्य के कारण सम्भव है। पदार्थों का क्षणिक अस्तित्व होने से यहाँ निश्चित कारण को कार्य का अनुगमन करने वाला नहीं माना जाता तथा उसके अभाव को स्वीकार किया जाता है क्योंकि यहाँ स्वरूप के निःशेष हुए

१. तत्रैते त्रयो वादिनो भवन्ति-केचित् सर्वास्तिवादिनः, केचिद् विज्ञानास्तित्वमात्रवादिनः, अन्ये पुनः सर्वशून्यत्ववादिन इति। २/२/१८.
२. तस्मादप्यसङ्गतं सौगतं मतम्। वही, २/२/२०.
३. सर्वदर्शनसंग्रह के लेखक माधवाचार्य ने भी इसी प्रकार सर्वास्तिवाद की व्याख्या की है। पृ. ४३.

बिना किसी भी कूटस्थ वस्तु से कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता है। अतः यह क्षणभङ्गवाद, अभाव से भाव की उत्पत्ति का सिद्धान्त है।^१

सर्वास्तिवाद के लिए वैनाशिक शब्द का प्रयोग करते हुए उसके पक्ष को शङ्कर इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि यह मत सभी पदार्थों को बुद्धिगम्य, संस्कृत व क्षणिक अस्तित्ववाला मानता है। उन्होंने इस सम्प्रदाय की विशिष्ट मान्यताओं, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध व आकाश का उल्लेख करते हुए यह कहा है कि सर्वास्तिवाद इन तीनों को अवस्तु, अभावमात्र व निरुपाख्य मानता है (ब्रसूशाभा, २/२/२२)।

विज्ञानवाद

पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत विज्ञानवाद की तत्त्वमीमांसा के अनुसार, विज्ञानवादी ऐसा मानते हैं कि बाह्यार्थवाद की प्रक्रिया सामान्य बुद्धि वाले जिज्ञासुओं के लिए की गई थी। वस्तुतः बाह्यार्थवाद, बुद्ध का अभिप्राय नहीं था। उनकी सम्पूर्ण देशना का एकमात्र लक्ष्य विज्ञानस्कन्धवाद की ही सिद्धि था और इसी लक्ष्य (विज्ञानस्कन्धवाद की सिद्धि) की स्थापना वह स्वयं भी अपने सिद्धान्त पक्ष के अन्तर्गत करते हैं (वही, २/२/२८)।

विज्ञानवाद में व्याख्यायित विज्ञान (तत्त्व) के पर्याय रूप, बुद्धि व अन्तस्थ शब्द हैं। क्षणिक बुद्धि रूप इस विज्ञान के आधार पर संसार के प्रमाण-प्रमेय व फलरूपी समस्त व्यवहार सम्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, विज्ञान ही प्रमाण, प्रमेय, फल और प्रमाता आदि रूपों में आभासित होता है (वही)।

व्यवहार के स्तर पर भौतिक पदार्थ के रूप में उपलब्ध बाह्यार्थ अथवा बाह्यार्थ की विचित्रता का कारण विज्ञान की विचित्रता है। तत्त्व-रूप में यह विज्ञान एक है तथापि वासना की विचित्रता के कारण विज्ञान में विचित्रता आती है और इस विज्ञान के वैचित्र्य से बाह्यार्थ प्रभावित होता है। यहाँ यह जिज्ञास्य है कि वासना में विचित्रता कहाँ से आती है? उत्तर है- वासना में विचित्रता का कारण यह विज्ञान है। वासना और विज्ञान में निमित्त-नैमित्तिक भाव है। अतः इस प्रसङ्ग में अनवस्था-दोष नहीं है (वही)।

१. इतश्चानुपपन्नो वैनाशिकः समयः, यतः स्थिरमनुयायि कारणमनभ्युपगच्छताम-
भावाद्भावोत्पत्तिरित्येतदापद्येत। दर्शयन्ति चाऽभावाद्भावोत्पत्तिम् 'नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्'
इति। ब्रसूशाभा, २/२/२६.

शून्यवाद

आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्य में, सर्वास्तिवाद व विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष की तरह शून्यवाद के नाम पर, स्वतन्त्र रूप से किसी सूत्र में कोई पक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। तथापि विज्ञानवाद की आलोचना के प्रसङ्ग में प्रयुक्त एक सूत्र, क्षणिकत्वाच्च (२/२/३१) के अन्तर्गत सामान्य टिप्पणी वैनाशिक व विशेष टिप्पणी के माध्यम से शून्यवाद के प्रति अपने दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय दिया है। अतः शांकरभाष्य में शून्यवाद पूर्णतः उल्लिखित नहीं है- ऐसा नहीं कहा जा सकता।

पारिभाषिक शब्द

आचार्य शङ्कर ने भाष्य के सन्दर्भ में बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रचुर उपयोग किया है। आचार्य द्वारा पारिभाषिक शब्दों का यह उपयोग इसलिए भी स्वाभाविक है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से साधक व बाधक युक्तियों को प्रस्तुत किया गया है। शाङ्कर भाष्य में उल्लिखित बौद्ध पारिभाषिक शब्दों^१ का सम्प्रदायानुसार वर्गीकरण इस प्रकार है-

सर्वास्तिवाद के पारिभाषिक शब्द

समुदाय, पञ्चस्कन्ध, संघात, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध, चित्त-चैत, आकाश, क्षणभङ्गवाद, चतुर्विध हेतु, संस्कार आदि।

विज्ञानवाद एवं शून्यवाद के पारिभाषिक शब्द

विज्ञान, परिनिष्पन्न, परिकल्पित, निःस्वभाव, सन्तान, सहोपलम्भनियम, वासना, वास्यवासकत्वप्रतिज्ञा, वासनावैचित्र्य, आलयविज्ञान, प्रवृत्तिविज्ञान। शून्यवाद के अन्तर्गत केवल शून्य शब्द ही उल्लिखित है।

अवधारणाएँ

प्रस्तुत भाष्य में आचार्य शङ्कर ने सर्वास्तिवाद के अन्तर्गत परमाणुवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनात्मवाद, क्षणभङ्गवाद, असंस्कृत-धर्म, स्मृति-प्रत्यभिज्ञा, भोग-मोक्ष आदि अवधारणाओं की चर्चा की है।^२ किन्तु वस्तुतः यहाँ प्रधानरूप से क्षणभङ्गवाद की समस्या को ही उठाया गया है। आकाश को लक्ष्य कर पदार्थों

१. विद्व- परिशिष्ट- ३ एवं ४.

२. प्रस्तुत अवधारणाओं का आधार ब्रसूशाभा के २/२/१८-२७ तक के सूत्र हैं।

के भाव-अभाव का प्रश्न, असंस्कृत-धर्म, निरोधद्वय (प्रतिसंख्यानिरोध व अप्रतिसंख्यानिरोध) के स्वरूप की क्षणभङ्गवाद से सङ्गति आदि की समस्याएँ पूरक रूप में समाविष्ट हैं। संक्षेप में समस्याओं का विवरण इस प्रकार है-

(i) क्षणभङ्गवाद में कार्यकारण की समुचित व्याख्या सम्भव नहीं है।

(ii) कार्यकारणभाव की स्थिति का प्रसङ्ग ही नहीं बनता है।

(iii) क्षणभङ्गवाद में क्रिया के लिए कोई अवसर नहीं है।

(iv) क्षणभङ्गवाद में स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, सादृश्य इत्यादि की समुचित व्याख्या उपलब्ध नहीं है।

(v) क्षणिक भाव का ज्ञान, बिना सन्तानी या नित्य आत्मा के सम्भव नहीं है।

विज्ञानवाद के अन्तर्गत आचार्य शङ्कर ने तीन समस्याओं का उल्लेख किया है- (i) विज्ञान व विज्ञेय का सम्बन्ध (ii) वासना व विज्ञान का परस्पर सम्बन्ध (iii) आलयविज्ञान का स्वरूप।^१ इनमें से प्रथमतः दो को प्रधान माना गया है।

शून्यवाद के अन्तर्गत एक समस्या की ओर संकेत किया गया है- शून्य का अस्तित्व (ब्रसूशाभा, २/२/३१)।

(इ) युक्तियाँ

आचार्य शङ्कर ने भाष्य में बाह्यार्थवाद-खण्डनगर्भित विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः इस क्रम में, आचार्य ने विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष को पुष्ट करने वाली साधक युक्तियों का भी उल्लेख किया है-

सिद्धान्त

विज्ञान की पारमार्थिक सत्ता है व बाह्य विषय उसी के आभास हैं।

१. प्रस्तुत समस्याओं का विश्लेषण व विवेचन ब्रसूशाभा के २/२/२८-३१ तक के सूत्रों में किया गया है।

साधक युक्तियाँ^१

- (i) बाह्य पदार्थों की निर्मिति परमाणुओं से होती है और परमाणु बुद्धि अथवा विज्ञान के बिना असिद्ध हैं। इसलिए बाह्य पदार्थ भी स्वतः असिद्ध हैं।
- (ii) सर्वास्तिवाद बाह्य पदार्थ को परमाणुरूप अथवा परमाणुओं का संघातरूप मानता है और इस स्वरूप में बाह्य पदार्थ की प्रमाणों से सिद्धि, बुद्धि अथवा विज्ञान पर निर्भर है। अतः विज्ञान ही प्रमुख है।
- (iii) परमाणु और संघात दोनों मान लेने पर भी संघात और परमाणुओं में भेदाभेद की व्याख्या का तर्कसङ्गत आधार नहीं है।

सर्वास्तिवाद के प्रति बाधक युक्तियाँ

सर्वास्तिवाद के सिद्धान्तों की समीक्षा भारतीय दर्शन के अनेक आचार्यों सहित स्वयं बौद्ध दर्शन के माध्यमिक सम्प्रदाय ने भी की है। शङ्कराचार्य भी अपने **ब्रसूभा** में सर्वास्तिवाद के सिद्धान्तों की समस्या को सयुक्तिक उठाकर समीक्षण करते हैं। पूर्व के पृष्ठों में यह उल्लिखित है कि आचार्य ने सर्वास्तिवाद के खण्डन में जिन युक्तियों का प्रयोग किया है उनका केन्द्र बिन्दु अथवा मर्मस्थल क्षणभङ्गवाद है। अन्य अवधारणाएँ यथा स्मृति, प्रत्यभिज्ञा आदि का खण्डन वस्तुतः आचार्य द्वारा क्षणभङ्गवाद के खण्डन का ही पूरक है। आचार्य द्वारा सर्वास्तिवाद के खण्डन में प्रयुक्त सभी युक्तियों (प्रधार व पूरक) का वर्गीकरण करने पर प्रधानरूप से ये खण्डनीय विषय बनते हैं- (i) सत्ता, (ii) कार्यकारणभाव, (iii) क्रिया, (iv) प्रमाण, (v) भोग-मोक्ष।

इन्हीं उपर्युक्त बिन्दुओं पर शङ्कर द्वारा प्रस्तुत प्रधान व पूरक खण्डनात्मक युक्तियाँ यथाक्रम द्रष्टव्य हैं-

प्रधान युक्तियाँ

(i) क्षणिक विषय में कारणत्व नहीं हो सकता क्योंकि किसी कार्य को उत्पन्न करने के लिए प्रथमतया किसी कारण की उपस्थिति होनी चाहिये तथा फिर उस कारण में क्रिया होनी चाहिये। इस तरह कार्योत्पत्ति के लिए कारण की सत्ता का एक से अधिक क्षणों तक विद्यमान होना आवश्यक है। (**ब्रसूभा**, २/२/१८)

१. सन्दर्भ विशेष में प्रस्तुत युक्तियों का आधार **ब्रसूभा** का सूत्र २/२/२८ है।

(ii) क्षणिक पदार्थों में संघात के लिए परस्पर संयोग नहीं हो सकता है क्योंकि इसके लिए संघातकर्ता आवश्यक है, साथ ही संघातकर्ता का चेतन और नित्य होना भी आवश्यक है। किन्तु क्षणभङ्गवाद में ऐसा नित्य व चेतन कोई तत्त्व मान्य नहीं है जो इन तत्त्वों को एकसाथ संयोजित करके कार्य उत्पन्न कर सके (ब्रसूशाभा, २/२/१८)।

(iii) क्षणिक पदार्थों से संघात के लिए उनमें क्रिया आवश्यक है किन्तु क्षणस्थायी भाव क्रिया करने में असमर्थ है। क्षणभङ्गवादी जिस अर्थक्रिया को मानता है वह संभव नहीं है क्योंकि बिना नित्य चेतन के क्षणिक-भाव में क्रिया नहीं हो सकती (वही)।

पूरक युक्तियाँ

इन प्रधान युक्तियों की पूरक युक्तियाँ वर्गीकृत रूप में द्रष्टव्य हैं-

आकाश में भी निरूपाङ्ग्यत्व का स्वीकार अयुक्त है क्योंकि प्रतिसंख्यानिरोध तथा अप्रतिसंख्यानिरोध में वस्तुत्व की प्रतीति के समान आकाश में भी वस्तुत्व की प्रतीति होती है (ब्रसूशाभा, २/२/२४)।

(i) आगम (श्रुति) की प्रमाणता से वस्तुत्व की प्रतीति होती है क्योंकि (आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है) इत्यादि श्रुति-वाक्यों से 'आकाश' के वस्तुत्व का ज्ञान होता है।

(ii) शास्त्र को नहीं मानने पर भी शब्द द्वारा अनुमान प्रमाण से आकाश की वस्तु सत्ता समझी जा सकती है, क्योंकि जैसे गन्ध, रसादि, पृथ्वी आदि के विशेष गुण हैं वैसे ही शब्द, आकाश का गुण है, वह अभाव में नहीं रह सकता।

(iii) प्रत्येक वस्तु के लिए आधार और अवकाश (स्थान) चाहिए। आकाश ही शेष चार भूतों का आधार है तथा वही सम्पूर्ण जगत् को अवकाश देता है। इससे भी आकाश की सत्ता प्रत्यक्ष है।

(iv) आकाश आवरण का अभावमात्र नहीं है। क्योंकि-

- पक्षी कहाँ आश्रय पाएँगे? भाव का आश्रय अभाव नहीं हो सकता।

- एक भी पक्षी के उड़ने पर आकाश आवरणभाव हो जाता है, आकाश का लक्षण समाप्त हो जाता है।

- उड़ने की इच्छा रखने वाले दूसरे पक्षी को अनवकाशता की प्राप्ति होगी।

- स्वयं के मत से भी विरोध होगा, **वायुः किं संनिश्रयः**, वायु किस निश्चित आश्रय वाला है, इस प्रश्न का उत्तर बुद्ध-मत में दिया गया है- **वायुराकाशसंनिश्रयः**, वायु आकाश रूप निश्चित आश्रय वाला है।

(v) दो निरोध और आकाश निरूपाख्य और नित्य नहीं हैं क्योंकि निःस्वरूप के नित्यत्व आदि कोई धर्म नहीं सिद्ध हो सकते। वस्तु में धर्म रहते हैं। धर्माश्रय होने पर तीनों घटादि के समान वस्तु सिद्ध होंगे। अतः इन्हें निरूपाख्य कहना सर्वथा अयुक्त है।

(vi) अचेतन समुदायी (अवयवी) से समुदाय की सिद्धि के लिए चित्त में उत्सुकता (अभिज्वलन) आवश्यक है (**ब्रसूशाभा**, २/२/१८)।

(vii) अचेतन अवयवों में क्रिया का सातत्य मानने पर सृष्टि का क्रम कभी निरुद्ध नहीं होगा (**वही**)।

(viii) अविद्यादि से पृथक् परमाणुओं से सृष्टि (संघात/समुदाय) मानने पर संघात को अवयवी मानना पड़ेगा और सृष्टि अवयवों (परमाणुओं) के अधीन हो जाएगी (**वही**, २/२/१९)।

- जब 'वैशेषिक-दर्शन' अपनी तत्त्वमीमांसा (नित्य परमाणु, आश्रय-आश्रयीभाव, भोक्ता) आदि के साथ संघात की सिद्धि का कारण बता पाने में अक्षम है तो बौद्ध दर्शन अपने अनित्य, क्षणभङ्गुर परमाणुओं को सृष्टि/संघात का कारण कदापि नहीं बता सकता (**वही**)।

(ix) अविद्यादि (द्वादश-निदानों) को संघात का निमित्त कारण मानने पर संघात का ही आश्रयण करके आत्मलाभ करने वाले, सिद्ध होने वाले, अविद्यादि (द्वादश निदान) संघात के निमित्त नहीं हो सकते क्योंकि तब उनमें संघात के निमित्त अन्योन्याश्रय दोष आ जाएगा (**वही**)।

(x) एक संघात से दूसरे संघात की उत्पत्ति भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि तब अन्य संघात नियम से, सदृश अथवा विसदृश उत्पन्न होगा? अथवा अन्य संघात अनियम से सदृश अथवा विसदृश उत्पन्न होगा? नियम-अनियम दोनों प्रकार के सिद्धान्तों को स्वीकार करना पूर्व पक्ष के सिद्धान्त के विरुद्ध है (**वही**)।

(xi) हेतु से विज्ञान की उत्पत्ति की क्षणभङ्गवादियों की प्रतिज्ञा का स्वयमेव बाध हो जाएगा (**वही**, २/२/२१)।

(xii) निर्हेतुक-उत्पत्ति मानने पर प्रतिबन्ध के अभाव से सब कार्य सर्वत्र उत्पन्न होने लगेंगे (ब्रसूशाभा, २/२/२१)।

(xiii) उत्तर क्षणिक कार्य की उत्पत्ति काल तक पूर्व का क्षणिक कारण स्थिर मानना होगा और ऐसा करने से कारण और कार्य दोनों की एक काल में ही सत्ता माननी पड़ेगी (यौगपद्य-सह-वृत्तित्व होगा)। इससे सभी संस्कारों (उत्पत्ति-विनाश वाले पदार्थों) को क्षणिक मानने की बौद्ध मत की प्रतिज्ञा भी अवरुद्ध हो जाएगी (वही)।

(xiv) क्षणभङ्गवाद में वास्तविक कार्यकारणभाव के लिए कोई स्थान नहीं है (वही, २/२/२०)।

(xv) उत्पाद और निरोध की अवधारणाएँ क्षणभङ्गवाद में असङ्गत हैं (वही)।

(xvi) यदि कूटस्थ कारण से कार्य की उत्पत्ति मानी जाती है तो अविशेषता होने से, सब से सब उत्पन्न होने लगेंगे। अर्थात् नित्य कार्योंत्पादन में वैभिन्न्य के बिना समर्थ होने से एक ही कारण सब कार्य को उत्पन्न कर देगा (वही)।

क्षणभङ्गवाद में कार्यकारणवाद सम्बन्धी असंगतियों को प्रस्तुत करने के पश्चात् शङ्कर, बौद्धों की इस मान्यता के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि असत् से सत् कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है।

प्रस्तुत आक्षेप के समर्थन में अथवा बौद्ध पक्ष के खण्डन हेतु आचार्य शङ्कर अधोलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं-

(xvii) अभाव से भाव उत्पन्न होने पर अभावत्व के अविशेष होने यथा बीज के अभाव के सर्वत्र समानरूप से रहने से सर्वत्र अङ्कुर की उत्पत्ति होने लगेगी फिर अङ्कुरार्थी के लिए कारणविशेष (बीज) का संग्रह व्यर्थ होगा (वही, २/२/२६)।

(xviii) निर्विशेष अभाव को कारण स्वरूप मानने पर शशशृंग आदि असत् पदार्थों से भी कार्य उत्पन्न होंगे (वही)।

(xix) अभाव मात्र से कार्य मानने पर अभावरूप ही कार्य उत्पन्न होगा भावरूप नहीं क्योंकि लोकव्यवहार में प्रत्येक कार्य अपने-अपने कारणरूप भाव से अन्वित और कारणों के रहते ही सिद्ध हुआ देख जाता है। यथा शराब, मिट्टी से नहीं बनती (वही, २/२/२६)।

(xx) अभाव को विशेष कारण स्वरूप मानने पर, विशिष्ट होने से ही अभाव को भी कमल आदि के समान भावत्व की प्राप्ति हो जाएगी। यथा (न्याय-दर्शन में) नील-कमल के प्रसङ्ग में स्वीकार किया गया है (ब्रसूशाभा, २/२/२६)।

(xxi) बीजादि रूप पूर्वावस्था का अभाव नहीं होता है बल्कि अङ्कुरादि रूप उत्तरावस्था में उसका रूपान्तर मात्र होता है। बीज के निःशेष हुए बिना ही उसका कुछ अंश अनुयायी कारण बन कर अङ्कुरादि कार्यों को उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में, अङ्कुर-अवस्था में भी बीज की प्रत्यभिज्ञा बनी रहती है (वही)।

(xxii) स्वर्ण स्थिर स्वभाव वाले हैं किन्तु आभूषण बनाने के पश्चात् उसमें भी 'वही सोना है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान यह प्रमाणित करता है कि बिना विकृत हुए कूटस्थ स्वर्ण और आभूषण में कार्य-कारणभाव है (वही)।

(xxiii) भ्रान्तिरूप अविद्या से प्रतीत होने वाला यह जगत् पूर्णज्ञान से अविद्या का नाश होने पर उसी के साथ नष्ट हो जाता है, ऐसा मानने पर तब तो जो बिना कारण के अपने आप (स्वयमेव) विनाश- अर्थात् सब पदार्थों का अभाव माना गया है, उस अप्रतिसंख्या-निरोध की मान्यता में विरोध का प्रसङ्ग आ जाएगा (वही, २/२/२२)।

(xxiv) यदि यह मान्यता अस्वीकार करते हैं कि भ्रान्तिवश प्रतीत होने वाला जगत् बिना पूर्णज्ञान के अपने आप नष्ट हो जाता है, तब ज्ञान और उसकी साधना का उपदेश व्यर्थ होगा (वही)।

(xxv) अभाव से भाव की उत्पत्ति मानना उचित नहीं है क्योंकि तब चेष्टाशून्य लोगों के अभिमत कार्य की सिद्धि हो जाएगी, जो अव्यावहारिक, लोकानुभव-विरुद्ध है और लोक में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाली है (वही, २/२/२७)।

प्रतिसंख्या और अप्रतिसंख्या-निरोध, सन्तान (प्रवाह) गोचर होगा या भाव (सन्तानी) गोचर?

(xxvi) सन्तान (प्रवाह) का विच्छेद-

- सब सन्तानों में सन्तानियों के अविच्छिन्न हेतुफलभाव से सन्तान का विच्छेद असम्भव है। अर्थात् बौद्ध मत के अनुसार सन्तानी में पूर्व-भावपदार्थ उत्तर पदार्थ को उत्पन्न किए बिना नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि 'अर्थक्रियाकारित्व' सत् का लक्षण है, जो सन्तान किसी को उत्पन्न नहीं करेगा वह असत् होगा, फिर उसके जनक भी असत् होंगे, इस प्रकार सर्वशून्यता की आपत्ति होगी। अतः जब

सन्तान अपने से उत्तर को उत्पन्न करके ही नष्ट होगा, इससे सन्तान का उच्छेद होना संभव है (ब्रसूशाभा, २/२/२२)।

(xxvii) भावात्मक निरोध-

- भावों का निरन्वय निरूपाख्य विनाश सम्भव नहीं है क्योंकि भाव उसी को कहते हैं जो सदा सर्वदा एक-सा बना रहे। प्रत्यभिज्ञा-बल से भी कार्य में अन्वयी कारण का अविच्छेद्य सम्बन्ध देखा जाता है।

अतः किसी भी प्रकार से निरोध की सिद्धि नहीं होती है (वही)।

(xxviii) अनुभव के बाद संस्कारजन्य स्मृति को अनुस्मृति कहते हैं। क्षणिक अनुभवकर्ता, आत्मा के स्मरणकाल में नहीं रहने से तथा संस्कारादि के अभाव से स्मृति नहीं हो सकती है (वही, २/२/२५)।

(xxix) क्षणिक आत्मवाद में पूर्वोत्तर-द्रष्टा के एक नहीं रहने पर 'मैंने उसको देखा था', 'अब उसको देखता हूँ', यह ज्ञान कैसे हो सकेगा! अर्थात् भिन्नकालिक दो ज्ञानों का अनुसन्धान क्षणिकवाद में असम्भव है (वही)।

(xxx) यदि दर्शन और स्मरणकर्ता भिन्न-भिन्न हों तो 'मैं स्मरणकर्ता हूँ', 'अन्य किसी ने देखा था', ऐसी प्रतीति होनी चाहिए, परन्तु इस प्रकार कोई नहीं समझता। बल्कि दर्शन तथा स्मरण का एक कर्ता के रूप में ज्ञान, लोकप्रसिद्ध है (वही)।

(xxxi) वैनाशिक भी दर्शन और स्मरण का कर्ता एक ही आत्मा को मानते हैं। 'मैंने नहीं देखा था', इस प्रकार अपने निवृत्त (सिद्ध) पूर्व दर्शन का अपलाप नहीं करता है, जैसे कि अग्नि उष्ण नहीं है व प्रकाशरहित है, ऐसा अपलाप नहीं करता। इस प्रकार एक ही आत्मा के दर्शन व स्मरणरूप दो क्षणों से सम्बन्ध होने के कारण भी क्षणिकवाद की हानि होती है (वही)।

(xxxii) वस्तु या प्रमेय को क्षणिक मानने पर उसके ज्ञान की प्रक्रिया सम्भव नहीं है क्योंकि नित्य ज्ञाता का भी अभाव है (वही)।

(xxxiii) सादृश्य से आत्मा में स्मृति और प्रत्यभिज्ञान होता है, ऐसा मानने पर-

- सादृश्य (उसके सदृश वह है) दो के अधीन होता है और क्षणभङ्गवाद में दो सदृश वस्तुओं के एक ग्राहक (ज्ञाता) का अभाव होने से सादृश्यनिमित्तिक प्रतिसंधान है (वही)।

- यदि पूर्वोत्तरक्षण-वृत्ति वस्तु की सदृशता का ग्रहीता एक होगा तो ऐसा होने पर एक ग्राहक को दो क्षण में मानने से क्षणिकत्व प्रतिज्ञा बाधित होगी (ब्रसूशाभा, २/२/२५)।

(xxxiv) यदि प्रत्ययान्तर ही सादृश्य-विषयक हो और वस्तु की सदृशता को वह नहीं ग्रहण करता हो, स्वरूप का ग्रहण करता हो, तो 'उसके सदृश यह' ऐसे वाक्य का प्रयोग व्यर्थ होगा और 'सादृश्य है' इतना ही प्रयोग प्राप्त होगा (वही)।

(xxxv) पक्षविहीन खण्डनात्मक युक्ति-

लोक-प्रसिद्ध (सादृश्य-ज्ञान) को न मानने पर, दृष्टान्त आदि के अभाव से परीक्षक (बौद्ध मतानुयायी) न तो अपने पक्ष की सिद्धि ही कर सकते हैं और न ही परपक्ष में दोष निकाल सकते हैं, क्योंकि तर्क या प्रमाण के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया मत मिथ्या प्रलाप है (वही)।

(xxxvi) भोग और मोक्ष विषयक खण्डनात्मक युक्तियाँ-

(xxxvii) अचेतन संघातवाद में संघात के प्रयोजन की व्याख्या का कोई अवसर नहीं है (वही २/२/१८)।

(xxxviii) भोक्ता का अभाव, मुक्ति की संभावना को समाप्त करेगा (वही)।

विज्ञानवाद की बाधक युक्तियाँ

क्षणिक विज्ञान को अथवा विज्ञान की क्षणिकता को परमार्थ मानने वाले विज्ञानवाद के खण्डन में ब्रसूशाभा (२/२/२८-३१) में जो युक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं उनका संक्षिप्त व क्रमबद्ध विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

(i) बाह्यार्थ का प्रत्यक्ष सभी को होता है। अतः उसका सर्वथा निषेध नहीं किया जा सकता।

(ii) विषय का ज्ञान भी एक अनुभूत सत्य है और इस प्रक्रिया में ज्ञान विषय के आकार को ग्रहण करता है किन्तु विषय की सत्ता न मानने पर ज्ञान में आकार-भेद नहीं आएगा।

(iii) व्यवहार में विज्ञान और विज्ञेय दोनों की एक साथ (सहोपलम्भ नियम से) उपलब्धि होती है। फिर उनमें से एक को प्रधान व दूसरे को गौण कैसे माना जा सकता है? साथ ही सहोपलम्भ-नियम, क्षणभङ्गवाद के भी विरुद्ध है।

(iv) बाह्यार्थ के अभाव को सिद्ध करने के लिए दिया गया स्वप्न का उदाहरण तर्कसङ्गत नहीं है क्योंकि जाग्रत्-अवस्था से स्वप्नावस्था बाधित हो जाती है किन्तु जिस जाग्रदवस्था में विज्ञेय, विज्ञान दोनों का भेद होता है, बाधित नहीं होती। अर्थात् बाह्यार्थ के अभाव की सिद्धि के लिए स्वप्नावस्था का दृष्टान्त उपयुक्त नहीं है।

(v) जाग्रदवस्था को असत्य सिद्ध करने के लिए स्वप्न का दृष्टान्त इसलिए भी उचित नहीं है क्योंकि स्वप्न का आधार स्मृति है। अर्थात् जाग्रतावस्था में देखे गए विषयों के ज्ञान के आधार पर स्मृति घटित होती है किन्तु इसके विपरीत जाग्रतावस्था का आधार उसी अवस्था के विषय और उसकी साक्षात् उपलब्धि होती है अर्थात् स्वप्नावस्था का आधार जाग्रतावस्था है। किन्तु जाग्रतावस्था का इस प्रकार का अन्य कोई आधार नहीं है। इसलिए जाग्रतावस्था का उदाहरण, स्वप्नावस्था को नहीं बनाया जा सकता।

(vi) विषय की विचित्रता के कारण विज्ञान में विचित्रता नहीं आती है बल्कि विज्ञान में विचित्रता के कारण विषय-वैचित्र्य दिखाई पड़ता है। यहाँ शङ्का यह है कि विज्ञान में विचित्रता का कारण क्या है? विज्ञान की विचित्रता का कारण जिस वासना-वैचित्र्य को बताया जाता है उस वासना-वैचित्र्य का कारण क्या है?

(vii) वासना, संस्कार विशेष है और संस्कार को आश्रय की अपेक्षा है। यहाँ आपत्ति यह है कि क्षणिक विज्ञान और वासना के आश्रय रूप में जिस आलयविज्ञान को प्रस्तावित किया जाता है, उसमें वैसी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि आलयविज्ञान का स्वरूप भी (समुद्र व लहरों की भाँति) विज्ञान से भिन्न नहीं है।

(viii) विज्ञान में यद्यपि नानात्व व विचित्रता है तथापि व्यवहार के स्तर पर एक ही विज्ञान, प्रमाता और प्रमेय के दो स्वरूपों में किस प्रकार व किस आधार पर विभाजित होगा अर्थात् व्यवहार में प्रमाता और प्रमेय का भेद है। अतः इस भेद का कोई न कोई कारण होना चाहिये तथा उस कारण को प्रमाण से सिद्ध होना चाहिये। विज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य तत्त्व मान्य नहीं है, तब यह विज्ञान क्यों और कैसे स्वयं ही प्रमाता-प्रमेय रूप में आभासित होगा।

(ix) स्वयंप्रकाशरूप विज्ञान और परप्रकाशरूप विज्ञेय दोनों के विज्ञानरूप होने से जैसे परप्रकाशरूप विज्ञान के ज्ञान के लिए प्रमाता आवश्यक है, वैसे ही स्वयंप्रकाशरूप विज्ञान के लिए भी प्रमाता आवश्यक है। अतः केवल विज्ञान

को स्वयंप्रकाश मानने मात्र से समस्या हल नहीं होगी। प्रमाता को मानना आवश्यक है।

शून्यवाद की बाधक युक्तियाँ

ब्रसूशाभा में आचार्य ने बौद्ध दर्शन के शून्यवादी सम्प्रदाय के प्रसङ्ग में जो दो स्वतन्त्र टिप्पणियाँ की हैं उनका युक्तिगत स्वरूप इस प्रकार है-

(i) शून्यवाद, लोकव्यवहार का निषेध करता है (२/२/३१)।

(ii) शून्यवादी, शून्य को जिस स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं, वह स्वरूप किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता (वही)।

३. विश्लेषण

(अ) सन्दर्भ

सन्दर्भों का वैशिष्ट्य

ब्रसू से वेदान्त दर्शन के व्यवस्थित इतिहास का प्रारम्भ हुआ है। आचार्य गौडपाद ने सिद्धान्तरूप में अद्वैतवाद को एक नई दिशा दी। तत्पश्चात् शाङ्कर दर्शन में जाकर वह सिद्धान्त अपनी चरमावस्था पर पहुँचा। वेदान्त दर्शन के इस व्यवस्थित इतिहास व क्रमिक विकास से पूर्व बौद्ध तत्त्वचिन्तन अपना आकार ग्रहण कर चुका था। बौद्ध मत के तीन प्रधान दर्शन-सम्प्रदाय (सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद) और नागार्जुन, वसुबन्धु आदि अनेक प्रधान आचार्य, समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। इन बौद्धाचार्यों द्वारा सम्प्रदायविशेष के रचित ग्रन्थ, उन पर लिखे गए भाष्य, टीकाओं आदि का क्रम अथवा सहसम्प्रदायों में परस्पर खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया लगभग सम्पूर्ण हो चुकी थी। अतः इस पृष्ठभूमि में प्रादुर्भूत हुए आचार्य शङ्कर का बौद्ध दर्शन के इस समस्त विकासक्रम से सुपरिचित होना सहज ही अनुमेय है। इसका स्पष्ट प्रमाण स्वयं आचार्य का भाष्य है। आचार्य से पूर्व की परम्परा में ब्रह्मसूत्रकार व माण्डूका के रचनाकार, गौडपाद ने यद्यपि अपने-अपने ग्रन्थों में बौद्ध मत की चर्चा की है तथापि इस क्रम में कहीं भी उन्होंने बौद्ध मत के किसी आचार्य, सम्प्रदाय व सिद्धान्त का कोई उल्लेख नहीं किया था। वेदान्त के इतिहास में शङ्कर प्रथमतः ऐसे आचार्य हुए हैं जिन्होंने न केवल बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों^१ का स्पष्ट नामोल्लेख ही किया है अपितु पूर्वपक्ष

१. सम्प्रदाय शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- परम्पराप्राप्त। इसके अन्य अर्थ भी हैं- यथा- परम्परा, परम्पराप्राप्त सिद्धान्त या ज्ञान, धर्मशिक्षा की विशेष पद्धति, धार्मिकसिद्धान्त, उपासनापद्धति, प्रचलित प्रथा, प्रचलन प्रभृति। आप्टे, संस्कृत-हिन्दी-कोश।

के प्रस्तुतीकरण में, सम्प्रदाय विशेष के पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ, बौद्धाचार्यों द्वारा सहसम्प्रदायों के खण्डन-मण्डन में दी गई युक्तियों का भी उपयोग किया है।

इस प्रकार सम्प्रदायों के नाम; ग्रन्थ, सिद्धान्त व पारिभाषिक शब्दों से परिचय, बौद्ध मत के सहसम्प्रदायों में पक्ष-विपक्ष से दी जाने वाली खण्डनात्मक युक्तियों का उपयोग आदि कई ऐसे महत्वपूर्ण आधार हैं जिनके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि आचार्य शङ्कर बौद्ध दर्शन से मात्र सामान्य परिचय रखते थे अथवा उनको बौद्ध सिद्धान्तों का साधारण ज्ञान था। वस्तुतः वे इसके मर्मज्ञ थे।

(आ) सुगत शब्द का प्रयोग

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्म-भाष्य में बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान सम्प्रदायों (सर्वास्तिवाद, माध्यमिक शून्यवाद और योगाचार विज्ञानवाद) के सिद्धान्तों का खण्डन करने से पूर्व सभी के मतों को सुगत-मत (अर्थात् बुद्ध के सिद्धान्त) के नाम से स्मृत किया है।

आचार्य शङ्कर के द्वारा बौद्ध दर्शन के सर्वास्तिवाद आदि सम्प्रदायों को सुगत-मत के नाम से स्मरण करना विचारणीय है। सुगत^१ शब्द को सङ्कुचित और व्यापक दोनों दृष्टियों से देखा जा सकता है। इसे एक ओर बुद्ध का अपना मत समझा जा सकता है तथा दूसरी ओर बुद्ध-मत के अथवा बुद्ध-विचार के आधार पर विकसित समस्त साहित्य और विचार को सुगत अथवा बुद्ध-मत के रूप में समझा जा सकता है। वर्तमान सन्दर्भ में, आचार्य शङ्कर ने सुगत शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है- ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु दर्शन के विषय, आलोचना का प्रसङ्ग और आचार्य शङ्कर जैसे प्रामाणिक आचार्य यदि परवर्ती समस्त विचारधारा का उत्तरदायित्व, सरल सुगत पर यहाँ न डालते तो अधिक उपयुक्त होता, क्योंकि बुद्ध ने अपने उपदेशों में बौद्ध धर्म, दर्शन, तन्त्र की किसी शाखा

१. (a) साधारण अर्थ में सुगत शब्द का तात्पर्य है सु + गत अर्थात् सम्यक् रूप से निर्वाण को प्राप्त हो गया।

(b) शब्दकोशों में सुगत को बुद्ध का विशेषण कहा गया है। विशेषण मानने पर विशेष्य अन्य अर्थात् बुद्ध को मानना होगा। जबकि शङ्कर ने बुद्ध को ही सुगत कहा है।

(c) अधधोष रचित बुद्धचरितम् में सुगत शब्द का प्रयोग श्लोक ३/२१, ४/२८, ५/५, १०, ११, १३, ३३, १०/३, १७, १७/६३ में हुआ है।

या सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं किया और यह स्वाभाविक भी था। बुद्ध-देशना में परवर्ती दार्शनिक-सम्प्रदायों के बीज अवश्य ढूँढे जा सकते हैं किन्तु उसके आधार पर सभी दार्शनिक सम्प्रदायों को सुगत-मत कहना उचित नहीं है। यह इसलिए भी उचित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदायों में परस्पर गम्भीर मतभेद हैं।

आचार्य शङ्कर ने ब्रसूभा में बुद्ध के व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए अनेक विशेषण भी जोड़े हैं। यथा- असम्बद्ध प्रलाप करने वाला, लोककल्याण के विपरीत बौद्ध दर्शन के नाम से तीन परस्पर विरुद्ध मतों का प्रतिपादन कर समाज में भ्रान्ति, विद्वेष फैलाने वाला, देशना विशेष के माध्यम से सामान्य जनों को मोक्ष-मार्ग से पथभ्रष्ट करने वाला आदि। वस्तुतः शङ्कर के शब्दों में बुद्ध व बुद्ध की यह विचारधारा न केवल अनादरणीय है अपितु उपेक्षणीय भी है।^१ यहाँ दार्शनिक स्तर पर वे बौद्ध दर्शन की समस्त विसङ्गतियों और व्यावहारिक कमियों के लिए सीधे बुद्ध को उत्तरदायी मानते हैं जबकि ऐतिहासिक स्तर पर बुद्ध के उपदेशों की सरलता और बौद्ध दर्शन की क्लिष्टता में पर्याप्त दूरी है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि बुद्ध के प्रति आचार्य शङ्कर की दृष्टि संक्षिप्त व मार्मिक टिप्पणियों के माध्यम से तीखे व गहरे आक्षेप करने की रही है। आक्षेप के क्रम में आचार्य शङ्कर ने न केवल कठोरतम शब्दों का उपयोग ही किया है बल्कि आक्रोश से परिपूर्ण उनकी शैली, दार्शनिक की अपेक्षा पूर्वाग्रह से युक्त एक सामाजिक व धार्मिक व्यक्ति की ही हो गई है। इस कथन का प्रमाण यह भी है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन के प्रसङ्ग में ही नहीं अपितु जैन दर्शन के खण्डन (ब्रसूशाभा, २/२/३३, ३६) के प्रसङ्ग में भी दो बार सुगत-मत का उल्लेख किया है।

(इ) सर्ववैनाशिकता

आचार्य शङ्कर ने ब्रसूभाष्य में बौद्ध मत की आलोचना करने से पूर्व वैशेषिक दर्शन का खण्डन किया है। इस प्रसङ्ग में, आचार्य ने वैशेषिक दर्शन को 'अर्धवैनाशिक' कहा है। भाष्य में इस कथन के तीन हेतु दिए गए हैं-

१. (a) सर्वथाप्यनादरणीयोऽयं सुगतसमयः श्रेयस्कामैरित्यभिप्रायः। ब्रसूशाभा, २/२/३२.
- (b) सौगतवदार्हतमपि मतमसंगतमित्युपेक्षितव्यम्। वही, २/२/३६.

(i) यह दर्शन असत् तर्कों पर आधारित है। (ii) यह वेद-विरोधी है। (iii) यह दर्शन शिष्टजनों द्वारा अस्वीकृत है। इसी क्रम में आगे बौद्ध दर्शन को आचार्य ने सर्ववैनाशिक कहा है। बौद्ध दर्शन के प्रति आचार्य की टिप्पणी का पूर्व भाग वैशेषिक दर्शन के प्रति टिप्पणी का है। इसलिए सर्वप्रथम अतिसंक्षेप में उस पर विचार आवश्यक है।

वैशेषिक दर्शन के प्रति आचार्य की तीनों टिप्पणियाँ बहुत सज्जत प्रतीत नहीं होती हैं। प्रथम आपत्ति, असत् तर्कों की है। भारतीय-दर्शन के इतिहास में वैशेषिक दर्शन, प्रधानरूप से तत्त्वमीमांसा को प्रस्तुत करने वाला तथा न्याय दर्शन, प्रमाणमीमांसा को प्रस्तुत करने वाला है। अतः तर्क का प्रधान क्षेत्र न्याय का है और न्याय की प्रमाणमीमांसा को न्यूनाधिकरूप में व्यवहार के स्तर पर अनेक दर्शन स्वीकार करते हैं। अतः उसे असत् तर्कों पर आधारित कहना उसके प्रति अन्याय है। वैशेषिक दर्शन के प्रसङ्ग में असत् तर्क की बात कह कर आचार्य ने वैशेषिक के साथ न्याय दर्शन को भी सहज ही समाविष्ट कर लिया है।

वैशेषिक (और न्याय) दर्शन को भी इतिहास में वैदिक दर्शन की कोटि में परिगणित किया जाता है तथा यह वैदिक वचनों को प्रमाण रूप में मान्यता देते हुए उद्धृत भी करता है। ऐसी स्थिति में इसे वेद-विरोधी कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। यह अवश्य है कि वैदिक वचनों का तात्पर्य निर्धारित करने में आचार्य शङ्कर से इसका मतभेद है।

जहाँ तक तृतीय और अन्तिम आपत्ति का प्रश्न है तो शिष्टजनों द्वारा स्वीकृति या अस्वीकृति को दर्शन में प्रमाण नहीं माना जाता है। यदि किसी मत के प्रामाणिक होने का यही मानदण्ड है तो कपिल, जैमिनि, गौतम, कणाद आदि अशिष्ट सिद्ध हो जाएंगे, क्या ये आचार्य, शङ्कर की शिष्ट शब्द की परिभाषा से बाह्य हैं?

उपर्युक्त तीन हेतुओं के आधार पर शङ्कर ने वैशेषिक को अर्धवैनाशिक कहा है। भाष्य के भावानुसार इसका तात्पर्य है कि वे द्रव्यादि बाह्य पदार्थों को मानते हैं और आन्तरिक पदार्थों में आत्मा को नित्य मानते हुए भी मूलतः ज्ञान अथवा चेतना से शून्य मानते हैं। जबकि शाङ्कर दर्शन में आत्मा, ज्ञान और चेतना

एक ही तत्त्व के पर्याय हैं।^१ अर्थात् आचार्य शङ्कर की तत्त्वमीमांसा के आधार पर अर्द्धांश को सत्य और अर्द्धांश को विनाशशील मानने के कारण वैशेषिक दर्शन को अर्धवैनाशिक कहा गया है।

वैशेषिक दर्शन के प्रति आचार्य शङ्कर की अर्धवैनाशिक जैसी टिप्पणी और उसके आधारभूत हेतुओं के उपर्युक्त विश्लेषण की पृष्ठभूमि में बौद्ध दर्शन के प्रति की गई उनकी वैनाशिक की टिप्पणी पर विचार आवश्यक है।

‘सर्व’ शब्द, अनेक अर्थों में प्रचलित है- अखिल, निखिल, सम्पूर्ण समग्र, निःशेष आदि। तथापि इनमें सूक्ष्म अन्तर है। तत्त्वमीमांसा के प्रसङ्ग में, इस शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं यथा- आन्तर-बाह्य, प्रमाता-प्रमेय, अस्मद्-युष्मद्, चेतन-अचेतन, भाव-अभाव, व्यवहार-परमार्थ, श्रुति-स्वतन्त्र तर्क, प्रमाण-प्रमेय, आत्मा-अनात्मा आदि। किन्तु जहाँ तक बौद्ध दर्शन का प्रश्न है, इसके सभी सम्प्रदाय ‘सर्व’ शब्द की उपर्युक्त अवधारणाओं के प्रति एकमत नहीं हैं। इसलिए इन सब अवधारणाओं का विनाश मानने वाला न तो बौद्ध दर्शन का कोई एक सम्प्रदाय है और न ही सम्प्रदाय-चतुष्टया जहाँ तक सर्वास्तिवाद का प्रश्न है वह सर्वम् अस्ति की मान्यता पर आधारित है। इसलिए उसमें सर्व के विनाश का कोई अवसर नहीं है।

विज्ञानवाद, विज्ञेय की अपेक्षा विज्ञान को पारमार्थिक दृष्टि से अधिक महत्त्व देता है। इसलिए इस मत को भी सर्ववैनाशिक कहना उचित प्रतीत नहीं होता है। अन्य सम्प्रदाय अर्थात् शून्यवाद जिस पारमार्थिक तत्त्व की प्रमाणों से सिद्ध करता है, वह उसके स्वरूप को न बताकर व्यवहार से सर्वथा भिन्न परमार्थ

१. (a) श्री हर्ष के मतानुसार जिस सूत्रकार ने सचेतन प्राणियों के लिए ज्ञान, सुख आदि से विरहित शिलारूप प्राप्ति को जीवन का परमलक्ष्य बताकर उपदेश दिया है उसका ‘गौतम’ नाम शब्दतः ही यथार्थ नहीं है अपितु अर्थतः भी वह केवल गौ न होकर गौतम (अतिशयेन गौः इति गौतमः) है।

मुक्तये यः शीलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गौतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्य तथैव सः।।

नैषधचरितम्, १७/७५.

- (b) जयन्त भट्ट ने बहुत विस्तार के साथ भाववादी वेदान्तियों के मत का खण्डन कर मुक्ति के अभाव-पक्ष को पुष्ट किया है। मुक्ति में सुख न मानने का प्रधान कारण यह है कि सुख के साथ राग का सम्बन्ध सदा लगा रहता है और यह राग ही बन्धन का कारण है। ऐसी अवस्था में मोक्ष को सुखात्मक मानने में बन्धन की निवृत्ति कथमपि नहीं हो सकती। इसलिए नैयायिक मुक्ति को दुःख का अभावरूप ही मानते हैं। न्यायमञ्जरी, भाग-२, पृ. ७५-८१.

है, इस प्रकार की मान्यता प्रस्तुत करता है। इसलिए इस सम्प्रदाय को भी 'सर्ववैनाशिक' कहने का कोई आधार नहीं है। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक जगत् को मानकर इससे सर्वथा भिन्न अद्वैतरूप पारमार्थिक जगत् को मानने का अर्थ, यदि 'सर्ववैनाशिक' होना है तो ये लक्षण स्वयं शाङ्कर दर्शन पर भी घटित होते हैं किन्तु वह सर्ववैनाशिक नहीं है।

एक अन्य सार्थकता संभावित है कि सौत्रान्तिक, वैभाषिक और विज्ञानवाद किसी न किसी रूप में क्षणभङ्गवाद को स्वीकार करते हैं। इसलिए संभवतया आचार्य उन्हें सर्ववैनाशिक के नाम से सम्बोधित कर रहे हैं। किन्तु यहाँ स्मरणीय है कि क्षणभङ्गवाद सत् को क्षणिक मानता है (यत् सत् तत् क्षणिकम्)। उसका सर्वथा विनाश अथवा अभाव नहीं मानता। सर्वास्तिवाद के अनुसार तो यह जगत् सत् और क्षणिक है जबकि शङ्कर इसे सर्वथा मिथ्या मानते हैं। मिथ्या की अपेक्षा क्षणिक मानने में अधिक सकारात्मकता प्रतीत होती है।

(ई) बौद्ध सम्प्रदायों का उल्लेख-क्रम

शङ्कर यद्यपि बौद्ध दर्शन के ऐतिहासिक व तात्त्विक विकास से सुपरिचित थे, तथापि भाष्य में, बौद्ध सम्प्रदायों को पूर्वपक्ष के रूप में जिस क्रम से प्रस्तुत किया गया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि खण्डन के क्रम में आचार्य की दृष्टि तत्त्वकेन्द्रित रही है।

सर्वास्तिवाद, बौद्ध तत्त्वचिन्तन का प्रथम सोपान है। इसे बौद्ध दर्शन का द्वैतवाद भी कह सकते हैं। अतः खण्डन के क्रम में, शङ्कर द्वारा इस सम्प्रदाय को सर्वप्रथम पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है और यह स्वाभाविक भी है। विज्ञानवाद, इतिहास की दृष्टि से शून्यवाद के बाद आता है। तथापि तत्त्व के विकास की दृष्टि से इसका क्रम सर्वास्तिवाद के बाद है। शङ्कर द्वारा पूर्वपक्ष के रूप में इस सम्प्रदाय का उल्लेख द्वितीय सोपान पर किया गया है, जो दृष्टिविशेष से उचित है। शून्यवाद, बौद्ध तत्त्वचिन्तन के विकास की दृष्टि से तृतीय सोपान पर अवस्थित है। भाष्य में इसका उल्लेख सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद के बाद, अन्त में किया गया है। अतः इससे स्पष्ट है कि आचार्य शङ्कर भी शून्यवाद को बौद्ध तत्त्वचिन्तन का चरम सोपान मानते हैं। दूसरे शब्दों में, शून्यवाद को बौद्ध तत्त्वचिन्तन का चरम सोपान मानना तथा पूर्वपक्ष के रूप में इसका उल्लेख सबसे अन्त में करना ही, वस्तुतः अप्रत्यक्षरूप से आचार्य शङ्कर द्वारा शून्यवाद के महत्त्व को स्वीकार करना है।

(३) बौद्ध सम्प्रदायों में मत-वैभिन्न्य

शङ्कराचार्य ने अपने भाष्य में बौद्ध दर्शन की चर्चा करते हुए प्रतिपत्ति के भेद से अथवा शिष्यों के भेद से इसे कई प्रकार का बतलाया है तथा जिन तीन सम्प्रदायों का स्पष्ट नामोल्लेख किया है उनको भी परस्पर असङ्गत माना है।

आचार्य शङ्कर द्वारा बौद्ध सम्प्रदायों पर सम्मिलित रूप से की गई टिप्पणी रूप इस कथन की समीक्षा आवश्यक है। बौद्ध दर्शन के सर्वास्तिवादी व माध्यमिक सम्प्रदाय^१ अपने-अपने पक्ष से यह स्वीकार करते हैं कि उनका दर्शन ही बुद्ध के उपदेशों का वास्तविक प्रयोजन था तथा जिसे उन्होंने अपने-अपने दर्शन में सिद्धान्तरूप में प्रतिपादित किया है। दूसरे शब्दों में, उन सम्प्रदायों के आचार्यों की जैसी भी दृष्टि रही उस दृष्टि से उन्होंने बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया तथा दृष्टि विशेष के आधार पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की स्थापना की। अतः बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों में भेद, प्रतिपत्ति के कारण आया, आचार्य शङ्कर का यह कथन तो स्वीकार्य माना जा सकता है क्योंकि पूर्ववर्ती बौद्ध साहित्य में इसके प्रमाण मिलते हैं। तथापि बौद्ध सम्प्रदायों की विविधता का कारण अधिकारी-भेद अथवा अधिकारी-भेद से दिए गए बुद्ध-उपदेश हैं, इस कथन से सहमति कठिन है। आचार्य द्वारा बौद्ध पक्ष पर की गई इस टिप्पणी का आधार क्या है, इसका कोई स्पष्टीकरण भाष्य में उपलब्ध नहीं है तथा स्वयं बौद्ध साहित्य में भी सन्दर्भ विशेष में किसी प्रकार की कोई चर्चा अथवा प्रमाण नहीं दिया गया है। अतः सम्प्रदाय-भेद सम्बन्धी इस दूसरी टिप्पणी को आचार्य शङ्कर की कल्पना माना जा सकता है। दूसरा पक्ष यह है कि यदि बुद्ध ने अधिकारिभेद से विविध सिद्धान्तों का उपदेश दिया है तो इसे अरुन्धतीन्याय के रूप में ग्रहण करने में क्या दोष है?

एक अन्य टिप्पणी के माध्यम से आचार्य शङ्कर ने बौद्ध सम्प्रदायों की विविधता को आधार बना सहसम्प्रदायों में परस्पर असङ्गति की समस्या को उठाया है। वस्तुतः इस समस्या का समाधान अप्रत्यक्षरूप से भाष्य में ही कर दिया गया है। पूर्वोक्त टिप्पणियों में आचार्य ने स्वयं बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों में विविधता के कारण, स्वरूप, प्रतिपत्ति-ज्ञान व अधिकारी-भेद के प्रसङ्ग को स्वीकार किया

१. (a) अतो लक्षणशून्यत्वात्त्रिस्वभावाः प्रकाशिताः। धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्त्तिक, २.२१५.

(b) तदुपेक्षिततत्त्वार्थैः कृत्वा गजनिमीलनम्। केवलं लोकबुद्ध्यैव बाह्यचिन्ता प्रतन्यते।। वही, २.२१९.

(c) मोक्षाकर गुप्त ने भी तर्कभाषा में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। पृ. ३३.

(d) रूपाद्यायतनास्तित्वं तद्विनेयजनं प्रति। अभिप्रायवशादुक्तमुपादुक्तसत्त्ववत्।

है। अतः प्रतिपत्ति-ज्ञान व अधिकारी-भेद से बौद्ध दर्शन-सम्प्रदायों में भेद के इस कथन को यदि स्वीकार कर लिया जाए तो सहसम्प्रदायों में परस्पर असङ्गति की समस्या का स्वयमेव समाधान हो जाता है।

सम्प्रदायों के पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुतीकरण के क्रम में आचार्य शङ्कर ने विस्तार की दृष्टि से सर्वास्तिवाद व विज्ञानवाद को, शून्यवाद की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया है। ब्रसूशाभा में शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में अतिसंक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

(ऊ) शून्यवाद के प्रति उपेक्षा-भाव

प्रत्येक क्रिया सप्रयोजन होती है। अतः आचार्य शङ्कर द्वारा शून्यवाद के प्रति इस व्यवहार का भी कोई निश्चित प्रयोजन होना चाहिये। प्रबुद्ध और प्रतिष्ठित आचार्य शङ्कर ने भाष्य में, शून्यवाद के प्रति इस व्यवहार का स्पष्ट प्रयोजन बतलाया है- ऐसा प्रतीत होता है।

शङ्कराचार्य के मतानुसार शून्यवादी पक्ष सभी प्रमाणों से प्रतिषिद्ध अथवा अप्रामाणिक है तथा वह लोकव्यवहार का निषेध करता है। अतः इस सम्प्रदाय को निराकरण योग्य माना जाए, ऐसा आदर अथवा सम्मान भी उसे नहीं दिया जा सकता।^१

सम्प्रति यह कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर की दृष्टि में क्षणभङ्गवाद भी अव्यावहारिक है और जहाँ तक शून्य की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता का प्रश्न है तो आचार्य शङ्कर की दृष्टि में प्रामाणिकता की परिभाषा श्रुति का समर्थन करना है (श्रुत्यनुकूलस्तर्क एव हि तर्कः)। शङ्कर स्वयं भी यह स्वीकार करते हैं कि परमसत् (तत्त्व) का ज्ञान तर्क या द्वन्द्वन्याय से नहीं हो सकता। अतः यदि व्यावहारिक जगत् की वस्तुओं के लिए लौकिक प्रत्यक्ष का प्राधान्य है^२ तो पारमार्थिक तत्त्व के लिए श्रुतियाँ ही एकमात्र प्रमाण हैं। यद्यपि बौद्धों का एक सम्पन्न प्रमाणशास्त्र है तथापि श्रुति-प्रमाण को न मानने के कारण न केवल शून्यवाद अपितु शङ्कराचार्य की दृष्टि में सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन ही अप्रामाणिक सिद्ध होता है।

आचार्य शङ्कर द्वारा शून्यवाद के प्रति व्यवहार की इस समस्या पर आधुनिक विचारकों ने भी टिप्पणियों के माध्यम से प्रकाश डाला है।

१. शून्यवादिपक्षस्तु सर्वप्रमाणविप्रतिषिद्ध इति तन्निराकरणाय नादरः क्रियते। ब्रसूशाभा, २/२/३१.
२. नहि श्रुति शतमपि शीतोऽग्निरप्रकाशो वेति ब्रुवत्प्रामाण्यमुपैति। गीताभाष्य, xviii, ६६.

प्रस्तुत समस्या पर चन्द्रधर शर्मा^१ की टिप्पणी द्रष्टव्य है- शङ्कराचार्य शून्यवाद को अपने वेदान्त की पूर्वभूमि होने के कारण अखण्ड समझकर 'शून्य' शब्द के भ्रान्त किन्तु प्रचलित अर्थ (सर्वनिषेधवाद) से लाभ उठाकर उसे बड़ी सफाई से टाल गए हैं।

यह टिप्पणी प्रस्तुत समस्या का सन्तोषप्रद समाधान नहीं कर पायी है क्योंकि लेखक के कथनों में स्वयमेव असङ्गति है। प्रस्तुत वक्तव्य के पूर्व भाग को यदि आधार माना जाए तो शङ्कराचार्य ने, शून्यवाद के शून्य को ब्रह्म के निकट का तत्त्व ही नहीं माना अपितु सम्पूर्ण वेदान्त के स्रोत का अखण्ड तत्त्व शून्य को स्वीकार कर उसकी प्रतिष्ठा की श्रीवृद्धि भी की है तथा इस निकटता के कारण ही शङ्कर ने शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में नहीं रखा अथवा उसका खण्डन नहीं किया। इसका तात्पर्य यह है कि शङ्कराचार्य, शून्य के कट्टर विरोधी नहीं थे लेकिन शून्यवाद, श्रुतिविरोधी था अतएव आचार्य ने इसका समर्थन करने का साहस नहीं दिखाया जैसा कि उनके पूर्ववर्ती आचार्य गौडपाद ने दिखाया था।

वक्तव्य के उत्तर-भाग को आधार स्वीकार करने पर मान लिया जाए कि यदि शङ्कर शून्यवाद को सर्वनिषेधवाद के प्रचलित अर्थ में लेकर टाल गए हैं तो वस्तुतः इस कथन का कोई प्रमाण नहीं है और यदि यह मान भी लें कि शून्यवाद सर्वनिषेधवाद ही है तो आचार्य द्वारा सर्वनिषेधवाद के इस सिद्धान्त को पूर्वपक्ष के रूप में रखकर, उसका युक्तिसम्मत खण्डन किया जाना अपेक्षित था तथापि ब्रसूशाभा में ऐसा कोई प्रयास नहीं दिखाई देता है। प्रत्येक अद्वैतवाद में विधि व निषेध का होना स्वाभाविक है। आचार्य शङ्कर ने स्वयं भी अपने अद्वैतवाद में इन दोनों पक्षों को ग्रहण किया है और इसका प्रमाण है- माया की अवधारणा। शङ्कर दर्शन सर्व खलु इदं ब्रह्म की अवधारणा के बावजूद माया को मिथ्या मान कर उसे उक्त परिधि से बाहर रखता है। आशय यह है कि शङ्कराचार्य भी इस सर्वनिषेधवाद को आंशिकरूप में स्वीकार करते हैं।

अतः एक ओर शून्यवाद के शून्य को वेदान्त का स्रोत मानना तथा दूसरी ओर शून्यवाद को सर्वनिषेधवाद के प्रचलित अर्थ में लेकर टाल जाना, वस्तुतः उक्त दोनों कथन अन्तर्विरोधी हैं। शङ्कर जैसे आचार्य के प्रति इसे न्याय नहीं कहा जा सकता।

१. (a) बौवे, पृ. १४८.

(b) भारतीय दर्शन का आलोचन व अनुशीलन, पृ. २९२.

उदयवीर शास्त्री (वेदङ्ग, पृ. ९५) ने भी प्रस्तुत समस्या पर अपनी टिप्पणी के माध्यम से प्रकाश डाला है। लेखक के कथनानुसार- कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर ने बुद्धिपूर्वक शून्यवाद के निराकरण की उपेक्षा की है क्योंकि शून्यवाद की समस्त प्रक्रिया को अपना कर आचार्य शून्यवाद पद के स्थान पर ब्रह्मवाद की स्थापना करते हैं।

प्रस्तुत वक्तव्य का विश्लेषण करने पर उसके आंशिक भाग से ही सहमत हुआ जा सकता है, सम्पूर्ण वक्तव्य से नहीं। विचारक के मतानुसार, शङ्कर ने ब्रह्मशास्त्र में शून्यवाद के निराकरण की उपेक्षा की है किन्तु यहाँ यह कहा जा सकता है कि आचार्य ने शून्यवाद को अन्य दो सम्प्रदायों की तरह विस्तार से प्रस्तुत करने की उपेक्षा की है और साथ ही संक्षिप्त टिप्पणी के द्वारा शून्यवाद का निराकरण भी किया है।

शैली के प्रभाव का जहाँ तक प्रश्न है तो यह स्वीकार्य है कि आचार्य शङ्कर ने माध्यमिकों की शैली को अपनाया- किन्तु अप्रत्यक्षरूप से ही क्योंकि प्रत्यक्षरूप से यह शैली गौडपाद के माध्यम से शङ्कर में आई है।

वक्तव्य के उत्तरार्द्ध में विचारक ने शून्यवाद व ब्रह्मवाद की तत्त्वमीमांसा को समान मान कर मात्र शब्द-भेद को स्वीकार किया है। यह दर्शनद्वय की तत्त्वमीमांसा पर एक गम्भीर टिप्पणी है।

(गृह्य) पारिभाषिक शब्दों की प्रचुरता एवं सार्थकता

दर्शन यद्यपि पारमार्थिक चिन्तन का शास्त्र है तथापि उसमें शब्द, भाषा और दृष्टान्त व्यवहार से ही ग्रहण किए जाते हैं। इसलिए लौकिक शब्दों को विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त करना उसकी आवश्यक प्रक्रिया है। दर्शन-सम्प्रदायों में लौकिक शब्दों की व्याख्या को लेकर मतभेद स्वाभाविक है।

बौद्ध दर्शन, दार्शनिक जगत् के इतिहास में एक ऐसी विचारधारा है, जिसने न सिर्फ लौकिक शब्दों को नए अर्थ में प्रयुक्त किया है यथा-धर्म; अपितु अपने सिद्धान्त की आवश्यकतानुसार नए व मौलिक शब्दों की रचना भी की है, यथा- प्रतीत्यसमुत्पाद, प्रतिसंख्याननिरोध आदि। इसके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन की शब्दावली में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो पूर्व प्रचलित मान्यताओं की असहमति से जन्में हैं, यथा- क्षणभङ्गवाद, अनात्मवाद आदि।

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों के उपयोग की दृष्टि से ब्रह्म व गौडपाद की माण्डूका की अपेक्षा ब्रह्मशास्त्र अधिक समृद्ध है। बौद्ध दर्शन की मान्यताओं

का पूर्वपक्ष के रूप में शङ्कर का प्रस्तुतीकरण वस्तुतः सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों के आधार पर है, जो प्रशंसनीय एवं प्रामाणिक है। पारिभाषिक शब्दों के अधिकतम प्रयोग की दृष्टि से विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर की दृष्टि में सर्वास्तिवाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अथवा शीर्ष पर, विज्ञानवाद द्वितीय सोपान पर तथा शून्यवाद अन्तिम पायदान पर अवस्थित है।

सर्वास्तिवाद में मान्य असंस्कृत-धर्म^१ की अवधारणा तीन महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों पर आधारित है- प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध व आकाश।

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मभा में बौद्ध पक्ष से निरोधद्वय की पृथक्-पृथक् परिभाषाएँ दी हैं। भावों का बुद्धिपूर्वक विनाश को प्रतिसंख्यानिरोध व उससे विपरीत अप्रतिसंख्यानिरोध है।

यहाँ आचार्य शङ्कर ने निरोध के लिए विनाश शब्द का प्रयोग किया है जबकि सर्वास्तिवाद के साहित्य में निरोध का अर्थ-विसंयोग है। सर्वास्तिवादी यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि- जो सास्रव धर्मों से विसंयोग है, वह प्रतिसंख्यानिरोध है^२ तथा प्रतिसंख्यानिरोध से भिन्न जो निरोध अप्रतिसंख्या से प्राप्त होता है एवं जो अनागत धर्मों की उत्पत्ति के अत्यन्त विघ्नभूत स्वरूप है वह अप्रतिसंख्यानिरोध है।^३

आशय यह है कि संयोग और वियोग का साधारण अर्थ काल विशेष के सन्दर्भ में उत्पत्ति व विनाश है जबकि आचार्य शङ्कर द्वारा निरोध के लिए प्रयुक्त 'विनाश' शब्द, स्वरूप अथवा अस्तित्व की समाप्ति का सूचक है।

१. असंस्कृतं पुनः प्रशमश्च निरोधः प्रशमार्थश्च। मध्यान्विभागभाष्य, ३.२३, पृ. ४४५.
२. (a) यः सास्रवैर्निर्विसंयोगः स प्रतिसंख्यानिरोधः। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, १.६, पृ. २०.
(b) प्रतिसंख्यानिरोधो यो विसंयोगः। अभिधर्मकोश, १.६, पृ. २०.
(c) प्रतिसंख्यानिरोधो यो विसंयोगः इति निरोधसत्यम्। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ६.२, पृ. ८७२.
(d) दुःखादीनामार्थसत्यानां प्रति प्रतिसंख्यानं प्रतिसंख्या प्रज्ञाविशेषस्तेन प्राप्यो निरोधः प्रतिसंख्यानिरोधः। वही, १.६, पृ. २०.
(e) उत्पन्नानुशयजन्मनिरोधे प्रतिसंख्याबलेनान्यस्यानुत्पादः प्रतिसंख्यानिरोधः। वही, २.५५, पृ. ३२१.
(f) विसंयोगः क्षयो धिया। वही, २.५७, पृ. ३२२.
(g) प्रतिसंख्यानिरोधः कतमः। यो निरोधाविसंयोगः। पञ्चस्कन्धप्रकरण, २.१२९.
(h) तयोः शमार्थेन निरोधसत्यम्। मध्यान्विभागभाष्य, ३.२१, पृ. ४४४.
३. (a) विसंयोगाद् योऽन्यो निरोधः सोऽप्रतिसंख्यानिरोधः। वही, १.६, पृ. २२.
(b) उत्पादात्यन्तविघ्नोऽन्यो निरोधोऽप्रतिसंख्यया। अभिधर्मकोश, १.६, पृ. २२.
(c) अप्रतिसंख्यानिरोधः कतमः। यो निरोधो न विसंयोगः। पञ्चस्कन्धप्रकरण, २.१२७.

निरोध शब्द का प्रयोग योग दर्शन भी करता है। यहाँ निरोध शब्द का तात्पर्य चित्तवृत्तियों के निरोध से है। इनकी मान्यतानुसार चित्त इन्द्रियार्थसन्निकर्ष द्वारा विषयों के सम्पर्क में आता है, तब वह विषयाकार होता है। विषयों की ओर चित्त की इस आसक्ति अथवा प्रवाह को एक विशेष प्रयास द्वारा अवरुद्ध कर देना ही निरोध है, **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**। अतः यहाँ भी निरोध शब्द का अर्थ विनाश नहीं है।

सांख्य दर्शन की भी यही मान्यता है- **हेयं दुःखम् अनागतम्** अर्थात् भूत व वर्तमान के दुःखों से नहीं बचा जा सकता है। अपितु भविष्य में आने वाले दुःखों से बचने अथवा उन्हें रोकने के उपाय ही किए जा सकते हैं। अर्थात् यहाँ भी आगन्तुक के अवरोध अर्थ को स्वीकार किया गया है।

बौद्ध दर्शन ने भी 'निरोध' शब्द से दुःखों अथवा क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति के इसी तात्पर्य को ग्रहण किया है। यहाँ निरोध शब्द का एक अर्थ उपशम, बुझ जाना अथवा शान्त हो जाना है^१। बुझने या शान्त होने का अर्थ विनाश नहीं है बल्कि चित्त की एक विशेष प्रकार की निर्मलावस्था है जिसे निर्वाण कहते हैं। अश्वघोष ने **सौन्दरनन्दम्**^२ में निरोध अथवा निर्वाण की अवस्था का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। वह स्पष्ट कहते हैं कि जिस प्रकार दीपक में डाले गए तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार क्लेशों के प्रवाह के निरुद्ध हो जाने पर चित्त शान्त हो जाता है। चित्त को यह निर्मलावस्था ही निर्वाणावस्था है। शान्ति व निर्वाण पर्याय है।

निष्कर्ष रूप में, सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में निरोध का तात्पर्य विनाश कदापि नहीं माना गया है। अतः आचार्य शङ्कर के द्वारा निरोध शब्द का अर्थ विनाश करना बौद्ध दर्शन की मान्यता के विपरीत है।^३

१. (a) **स्कन्धोपरमत्वात् निरोधः**। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ७.१३, पृ. १०५८.

(b) **असम्बन्धः सम्बन्धोपरमात्रनिरोधः**। वही, ७.१३, पृ. १०५९.

(c) **प्रवृत्त्युपरमत्वात्रिरोधः**। वही, पृ. १०६१.

२. (a) दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षं। दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्। १६/२८.

(b) एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षं। दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्। १६/२९.

३. (a) जापानी विद्वान् यामाकामी सोगन ने आचार्य शङ्कर द्वारा किए गए प्रतिसंख्याननिरोध व अप्रतिसंख्याननिरोध पदों के अर्थ को बौद्ध दर्शन में अभिमत अर्थों के अनुकूल नहीं माना है। **Six systems of Buddhistic thought**, p. 167.

असंस्कृतधर्म के अन्तर्गत निरोधद्वय के अतिरिक्त एक अन्य अवधारणा आकाश की है। आचार्य शङ्कर ने सर्वास्तिवाद पक्ष से आकाश की परिभाषा करते हुए इसे आवरण का अभावमात्र बताया है।^१ जबकि सर्वास्तिवाद बौद्ध साहित्य में, आकाश की परिभाषा करते हुए वसुबन्धु ने उसे अनावरण स्वभाव वाला बताया है।^२ अनावरण अथवा अनावृत्ति का तात्पर्य है कि आकाश न तो दूसरों का आवरण करता है और न ही अन्य धर्मों द्वारा वह स्वयं आवृत्त होता है।^३

आकाश के लिये प्रयुक्त इन दो शब्दों (आवरण का अभावमात्र व अनावरण) में आकाश का परिचय वस्तु के स्वरूप में नहीं बल्कि स्वभाव के रूप में दिया गया है तथापि उनका सुसूक्ष्म विश्लेषण करने पर आचार्यद्वय की दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों का स्पष्ट संकेत मिलता है।

शङ्कर द्वारा आकाश के लिए प्रयुक्त अभाव शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि ऐसे किसी भाव तत्त्व की अपेक्षा है जो वस्तुतः आकाश को आवृत्त कर सके अर्थात् अभाव यहाँ भाव की अपेक्षा रखता है। जबकि बौद्ध मान्यतानुसार अनावरण कहने का तात्पर्य यही है कि आकाश स्वभावतः ही ऐसा है, जिसको कोई आवृत्त नहीं कर सकता। अर्थात् अनावरण कहने में सापेक्षता नहीं है। शङ्कराचार्य द्वारा आकाश की अवधारणा के खण्डन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे आकाश को अवस्तु अथवा अभावमात्र मानते हैं। अतः आकाश की अवधारणा के सम्बन्ध में भी आचार्य शङ्कर का दृष्टिकोण बौद्ध पक्ष से न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता है।

विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए भी आचार्य शङ्कर ने आलयविज्ञान की जो परिभाषा की है, वस्तुतः वह भी बौद्ध विचारधारा से साम्य नहीं रखती है।

(b) यहाँ शङ्कर के अभावस्वरूप पर आपत्ति की जा सकती है सर्वास्तिवादी दृष्टि से, किन्तु वे उसे वैनाशिक का बाना पहले ही पहिना चुके हैं, जो उचित नहीं है। फिर अभाव स्वरूप के साथ ही साथ निरुपाख्य शब्द भी चिन्त्य है, सर्वास्तिवाद के दृष्टिकोण से।

उपाध्याय, भरतसिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. १००७.

(c) आचार्य रामकृष्ण ने शङ्कर व उसके परवर्ती वैष्णव भाष्यकारों द्वारा स्वीकृत निरोधद्वय के स्वरूप को मानते हुए यह स्वीकार किया है कि उक्त दोनों का तत् सम्बन्धी मत, बौद्ध मान्यता के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। ब्रवैअ, पृ. २८२.

१. आवरणाभावमाकाशमिति। ब्रसूभा, २/२/२२.

२. (a) अनावरणस्वभावमाकाशः। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, १.५, पृ. १९.

(b) तत्राकाशं कतमत्। ख्यावकाशः। पञ्चस्कन्धप्रकरण, १.१२६.

३. तत्राकाशमनावृत्तिः। वही, १.५, पृ. १९.

आचार्य शङ्कर द्वारा विज्ञानवाद पक्ष से दी गयी परिभाषा के अनुसार, वासना संस्कार विशेष है^१ तथा इन वासनाओं के आश्रयरूप में आलयविज्ञान की कल्पना की गई है।^२ जबकि विज्ञानवाद में आलयविज्ञान को विपाकस्वरूप माना गया है जिसमें सभी संस्कारों के बीज विद्यमान रहते हैं।^३ दूसरे शब्दों में, अन्य विज्ञान तथा आलयविज्ञान में कार्यकारणभाव सम्बन्ध हैं। विश्व के समस्त धर्म, फल रूप होने से इस विज्ञान में आलीन (सम्बद्ध) होते हैं तथा यह आलयविज्ञान भी उन धर्मों के साथ सर्वदा हेतु होने से सम्बद्ध रहता है, अर्थात् जगत् के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति इसी विज्ञान से होती है। यह विज्ञान हेतुरूप है तथा समग्र धर्म फलस्वरूप है।^४

आलयविज्ञान को सभी संस्कारों का बीज मानना तथा संस्कारों का आश्रय मानना, ये दो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं। आचार्य शङ्कर, संस्कार व आलयविज्ञान में आधार-आधेय मानकर आधाररूप में आलयविज्ञान का परिचय देते हैं जबकि बौद्ध विज्ञानवाद, अन्य विज्ञान तथा आलयविज्ञान में कार्यकारणभाव मानकर सभी संस्कारों के बीज (हेतु) रूप में आलयविज्ञान के स्वरूप का वर्णन करता है। आशय यही है कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रस्तुत आलयविज्ञान के स्वरूप को विज्ञानवाद के पक्ष से न्यायसङ्गत नहीं माना जा सकता है।

आचार्य शङ्कर ने बौद्ध दर्शन की तत्त्वमीमांसा को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए कुछ अन्य पारिभाषिक शब्दों का भी उपयोग किया है। इन पारिभाषिक शब्दों का स्वरूप बौद्ध साहित्य के अनुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

सर्वास्तिवाद के अन्तर्गत

सर्वास्तिवाद - जो काल के अस्तित्व को कहता है वह सर्वास्तिवाद कहा जाता है।^५

१. वासना नाम संस्कारविशेषः। ब्रसूभा, २/२/३०.
२. यदप्यालयविज्ञानं नाम वासनाश्रयत्वेन परिकल्पितम्। वही, २/२/३१.
३. (a) तत्रालयारूपं विज्ञानं विपाकः सर्वबीजकम्। त्रिशिकाकारिका, २, पृ. ३६.
(b) मूलचित्तमालयविज्ञानं तथेदं सर्वसंस्काराणां संचितं बीजम्। पञ्चस्कन्धप्रकरण, १.११४.
(c) आलयविज्ञानं हि सर्वबीजात्मतामात्मभावालयहेतुतामात्मभावे स्थिततां चोपादाय।
वही, १.११६.
४. सर्वधर्मा हि आलीना विज्ञाने तेषु तत्तथा।
अन्योन्यफलभावेन हेतुभावेन सर्वदा।। मध्यान्तविभाग, पृ. २८.
५. (a) तदस्तिवादात् सर्वास्तिवाद इष्टः। अभिधर्मकोशः, ५.२५, पृ. ८०५.
(b) ये हि सर्वमस्तीति वदन्ति अतीतमनागतं प्रत्युत्पन्नं च, ते सर्वास्तिवादाः।
अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ५.२५, पृ. ७०५.

- क्षण - काल का पर्यन्त क्षण है।^१
- सभी प्रत्ययों के रहने पर जब तक किसी धर्म का आत्मलाभ होता है, काल की वह अवधि क्षण है।
- वह अवधि जिसमें एक जाता हुआ धर्म एक परमाणु से दूसरे परमाणु में जाता है, क्षण है।
- अनन्तरविनाशी आत्मलाभ को क्षण कहते हैं।
- धर्म - जो स्वलक्षण को धारण करे, वह धर्म है।^२
- चित्त - जो सास्त्रव-अनास्त्रव, संस्कृत-असंस्कृत इस प्रकार विभिन्न धर्मों का चयन करता है, वह चित्त है।^३
- अशुभ धातुओं के द्वारा सन्निवेशित है, अतः चित्त कहा जाता है।
- चैत-धर्म - जो धर्म चित्त से सम्प्रयुक्त है, वे चैत-धर्म कहे जाते हैं।^४
- परमाणु - अपचीयमान रूप का पर्यन्त परमाणु है।^५
- अणु - सात परमाणुओं को एक अणु कहते हैं।^६
- हेतु - जिसमें बीजधर्म का योग हो, वह हेतु है।^७
- हेतु-प्रत्यय - कारण हेतु को छोड़कर अन्य पाँच हेतुओं को हेतु-प्रत्यय कहा जाता है।^८
- स्कन्ध - स्कन्ध अर्थात् राशि।^९

१. (a) कालस्य पर्यन्तः क्षणः। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ३.८५, पृ. ५३६.
(b) समग्रेषु प्रत्ययेषु यावता धर्मस्यात्मलाभः। वही.
(c) गच्छन् वा धर्मो यावता परमाणोः परमाणवन्तरं गच्छति। वही.
(d) कोऽयं क्षणो नाम? आत्मलाभोऽनन्तरविनाशी। वही, ४.२, पृ. ५६८.
२. स्वलक्षणधारणाद् धर्मः। वही, १.२, पृ. १२.
३. (a) चिन्तोतीति चित्तम्। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, २.३४, पृ. २०८.
(b) चित्तं शुभाशुभैर्धातुभिरिति चित्तम्। वही.
४. चैतधर्माः कतमे। ये धर्माश्चित्तेन सम्प्रयुक्ताः। पञ्चस्कन्धप्रकरण, १.२७.
५. रूपस्यापचरियमानस्य पर्यन्तः परमाणुः। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ३.८५, पृ. ५३६.
६. सप्तपरमाणवोऽणुः। वही, ३.८६, पृ. ५३६.
७. हेतुबीजधर्मयोगेन। वही, ७.१३, पृ. १०५८.
८. कारणहेतुवर्ज्याः पञ्च हेतवो हेतुप्रत्ययः। वही, २.६१, पृ. ३४२.
९. (a) राश्यर्थः स्कन्धार्थ इति। वही, १.२०, पृ. ५७.
(b) कार्यभारोद्बह्नार्थः स्कन्धार्थ इत्यपरे। वही, १.२०, पृ. ६०.
(c) प्रच्छेदार्थो वा। वही, १.२०, पृ. ६०.
(d) राश्यर्थः। कालगोत्राकारगतिविषयभिन्नानां रूपादीनामभिसंक्षेपतामुपादाय।

- स्कन्ध वह है जो कार्यरूप भार का उद्वहन करता है।
- स्कन्ध का अर्थ प्रच्छेद है। प्रच्छेद अर्थात् अवधि। देशावधि एवं कालावधि। देशावधि के दृष्टान्त हैं- रूपस्कन्ध व कालावधि के दृष्टान्त हैं- तीन स्कन्धों में 'देय को दूँगा'।
- स्कन्ध अर्थात् राशि। यह काल, गोत्र, आकार, गति एवं विषय के कारण भिन्न-भिन्न रूपादि का सर्वसंक्षिप्त कारण है।

विज्ञानवाद के अन्तर्गत

- विज्ञान** - जो विशेषरूप से जानता है।^१
- अपने आलम्बन या विषय पर आश्रित होता है।
- चित्त** - संक्लेश एवं वासना-रूप बीजों का संचय होने के कारण चित्त कहा जाता है।^२
- जो परम अर्थ का मनन करता है, वह चित्त है।

(ऋ) अवधारणाएँ

क्षणिकता

दर्शनशास्त्र पारमार्थिक तत्त्व से सम्बन्धित समस्याओं अथवा अवधारणाओं के विवेचन का शास्त्र है। प्रत्येक दर्शन-सम्प्रदाय में यद्यपि अवधारणाओं के नाम और स्वरूप कभी-कभी भिन्न होते हैं तथापि सामान्यरूप से वे समस्याएँ सभी दर्शन सम्प्रदायों की होती हैं। सामान्य समस्याओं को ही दर्शन-सम्प्रदाय अपनी-अपनी दृष्टि से अवधारणाओं के रूप में अवतरित करता है- ऐसा भी कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन और वेदान्त दर्शन की समस्याएँ इस परिप्रेक्ष्य में लगभग एक जैसी हैं किन्तु इनकी अभिव्यक्ति अवधारणाओं के भिन्न-भिन्न नामों से हुई है।

वेदान्त दर्शन जिस प्रकार अपने में द्वैतवाद और अद्वैतवाद की दृष्टियों का समावेश किए हुए है, उसी प्रकार बौद्ध दर्शन भी द्वैतवाद और अद्वैतवाद

१. (a) विज्ञानातीति विज्ञानम्। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, २.३४, पृ. २०८.

(b) आश्रितभूतं विज्ञानमित्यपरे। वही.

२. (a) संक्लेशवासनाबीजैः चित्तत्वाच्चित्तमुच्यते। त्रिस्वभावनिर्देश, ७.

(b) चित्तं हि परमार्थमुनिः। अभिधर्मकोशकारिकाभाष्य, ४.६४, पृ. ६७३.

दोनों पक्षों को प्रस्तुत करता है। वेदान्त जैसे आन्तरिक और अवान्तर सम्प्रदायों के मतभेदों से तर्क-वितर्क के द्वारा संघर्ष करता है, उसी प्रकार बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों की स्थिति है। दूसरी ओर, इन दोनों विचारधाराओं को अन्यान्य भिन्न विचारधाराओं से भी लगभग उसी प्रकार तर्क-वितर्क करना पड़ता है। वेदान्त के अवान्तर सम्प्रदायों के संघर्ष का मूल जीव और जगत् से ब्रह्म का सम्बन्ध है और इसी सम्बन्ध की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और आलोचनाओं को जन्म देती हैं। ब्रह्म से जीव और जगत् के सम्बन्ध के समाधान का एक आयाम माया है। इसलिए अन्य सम्प्रदायों की समस्त आलोचना का केन्द्र माया बन गया। दूसरी ओर, बौद्ध दर्शन के अवान्तर सम्प्रदायों में मतभेद का सर्वाधिक प्रबल बिन्दु क्षणिकता की अवधारणा बन गया क्योंकि यह क्षण पारमार्थिक सत् के स्वरूप को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला है। संक्षेप में, जिन समस्याओं के समाधान के लिए वेदान्त के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने माया की कल्पना की लगभग उन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए बौद्ध आचार्यों ने क्षणिकता की कल्पना की। इसी क्षणिकता से हट कर शून्यवाद ने एक ऐसा नवीन और विलक्षण मार्ग खोजा है जिसका एक छोर वेदान्त के ब्रह्म से तथा दूसरा छोर उसकी माया से मिलता है। क्षणिकता से हट कर चिन्तन करने वाले शून्यवाद की यही ऐसी विशेषता है जो उसे वेदान्त के निकट खड़ा करती है और चूँकि ऐतिहासिक दृष्टि से शून्यवाद पहले है और ब्रह्मवाद अथवा मायावाद बाद में इसलिए प्रभाव की दृष्टि से शून्यवाद से ही वेदान्त के गौडपाद, शङ्कर आदि प्रभावित माने जा सकते हैं।

बौद्ध दर्शन के प्रधान दो सम्प्रदायों (सर्वास्तिवाद, योगाचार विज्ञानवाद) का समस्त दार्शनिक चिन्तन सामान्यरूप से 'क्षण' पर केन्द्रित है, उसमें मतभेद बाह्य पदार्थ की क्षणिकता अथवा दोनों की क्षणिकता को लेकर है। एक अन्य सामान्य विशेषता यह है कि क्षणिकतावाद वस्तु का विशेषण है, क्रिया-विशेषण नहीं। वस्तु का विशेषण मानने का वास्तविक तात्पर्य यह है कि आन्तर या बाह्य समस्त वस्तु स्वरूपतः एवं स्वभावतः क्षणिक है। क्षणिकता से वस्तु को किसी मूल्य पर विलग नहीं किया जा सकता है। यह क्षणिकता वस्तु का अनिवार्य अथवा अपरिहार्य स्वभाव है। वेदान्त की भाषा में यदि वस्तु ब्रह्म है तो यह ब्रह्म, क्षणभङ्गवाद में क्षणिक है। किन्तु वेदान्त ब्रह्म को नित्यता से जोड़ता है अर्थात् नित्यता ब्रह्म की अपरिहार्य विशेषता है। इसलिए इन दोनों विचारधाराओं में भेद का प्रमुख आधार क्षणिकता और नित्यता है। जहाँ तक सत् का सम्बन्ध है दोनों

विचारधाराएँ निर्विवाद रूप से सत् का आदर करती हैं किन्तु एक विचारधारा उसका परिचय क्षण के रूप में देती है और दूसरी नित्य के रूप में।

यही कारण है कि वेदान्त दर्शन के आचार्यों ने और वेदान्त ही क्यों भारतीय-दर्शन के सभी अबौद्ध आचार्यों ने सर्वाधिक आक्षेप सत् को क्षणिक मानने की अवधारणा पर किए हैं। विडम्बना यह है कि आक्षेपकर्ता सभी दार्शनिक, व्यवहार में जगत् की क्षणिकता को तो स्वीकार करते हैं किन्तु उन्हें बौद्ध दर्शन का यह प्रयत्न दुस्साहसपूर्ण प्रतीत होता है कि वह पारमार्थिक स्तर पर भी तत्त्व को क्षणिक मानते हुए यत् सत् तत् क्षणिकम् ऐसा तत्त्व-लक्षण करे।

बौद्धों के क्षणभङ्गवाद के क्षण में क्षणिकता की यह अवधारणा उसी प्रकार व्यवहार और परमार्थ के बीच का एक समाधान है जिस प्रकार वेदान्त में ब्रह्म से जीव-जगत् के सम्बन्ध की समस्या का समाधान माया है। अतः स्वाभाविक है कि क्षणभङ्गवादी बौद्ध जगत् की उत्पत्ति, कार्यकारणभाव, स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, भोग-मोक्ष आदि तत्त्वमीमांसीय, प्रमाणमीमांसीय और मोक्ष-विषयक समस्याओं का समाधान, क्षणभङ्गवाद में खोजें और प्रतिपक्षी इस क्षणभङ्गवाद की अवधारणा को ध्वस्त करने के लिए यह प्रदर्शित व सिद्ध करे कि उपर्युक्त तत्त्वमीमांसीय, प्रमाणमीमांसीय आदि समस्याओं का समाधान क्षणभङ्गवाद से सम्भव नहीं है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा यहाँ तक कि स्वयं बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय शून्यवाद ने भी इस प्रयोजन से क्षणभङ्गवाद पर आक्षेप किए हैं और जिन असङ्गतियों को कार्यकारणवाद आदि के माध्यम से दिखाया है लगभग वैसा ही प्रयत्न आचार्य शङ्कर ने किया है। इसलिए शङ्कर द्वारा की गई क्षणभङ्गवाद की आलोचना और उसका स्वरूप उतना मौलिक नहीं है कि उसे बौद्धों के इतिहास की सर्वथा नवीन घटना कहा जाए तथापि यह निश्चित है कि उनके द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष की ईमानदार प्रस्तुति और उनकी शैली में नवीनता के कुछ तत्त्व अवश्य हैं।

विज्ञान

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र में, विज्ञानवाद के अन्तर्गत जिन तीन अवधारणाओं को उत्थापित किया है वे इस प्रकार हैं- (I) आलयविज्ञान (II) विज्ञान और विज्ञेय में सम्बन्ध (III) विज्ञान और वासना में सम्बन्ध। इन समस्याओं के सन्दर्भ में आचार्य शङ्कर द्वारा प्रदत्त वक्तव्यों का विश्लेषण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि मौलिक ग्रन्थों के आधार पर बिन्दु विशेष के सम्बन्ध में विज्ञानवाद के पक्ष को समझा जाए।

विज्ञानवाद की यह स्थापना है कि- विज्ञान ही एकमात्र सत् है तथा विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ की पारमार्थिक सत्ता नहीं है। यह विज्ञान तत्त्वतः एक प्रवाहरूप होते हुए भी तीन रूपों में अभिव्यक्त होता है- (I) विपाक, (II) मनन, (III) विषयविज्ञप्ति। विपाक को आलयविज्ञान, मनन को क्लिष्टमन या सप्तमविज्ञान तथा विषयविज्ञप्ति को प्रवृत्तिविज्ञान कहते हैं।

बाह्य जगत् में जिन-जिन विषयों की उपलब्धि होती है तथा जिन्हें मनुष्य विविध विज्ञेयों के नाम से अभिहित करता है वे सभी मायामरीचिका के समान निःस्वभाव तथा स्वप्न के समान निरुपाख्य हैं।^१ वस्तुतः एकाकार विज्ञान ही द्विविध रूपों (ग्राह्यविषय तथा ग्राहकविषयी) से जगत् के रूप में आभासित होता है।^२ ये दोनों एकाकार चित्त के परिणामन हैं जो वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं।^३ दिङ्नाग ने भी स्पष्टतः कहा है- हमारे विज्ञान ही विविध व अनेक बाह्य-विषयों के रूप में प्रतीत अथवा आभासित होते हैं।^४ यहाँ यह जिज्ञास्य है कि विज्ञानाद्वैत में भेद का कारण क्या है? अर्थात् यदि विज्ञान परमार्थतः एक है तो वह किस प्रकार व्यवहार के स्तर पर विविध व अनेक रूपों में आभासित होता है? विज्ञानवादी, वासना के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। इस वासना में विचित्रता स्वयं विज्ञान के कारण आती है। दूसरे शब्दों में, वासना और विज्ञान में निमित्त- नैमित्तिक भाव है। अतः इस प्रसङ्ग में अनवस्था-दोष भी नहीं है।

योगाचार मत में आलयविज्ञान की कल्पना भी विशेष महत्त्व रखती है। यह आलयविज्ञान विज्ञानों की एक सन्तति है। वे इसी में उत्पन्न होते हैं और पुनः विलीन हो जाते हैं किन्तु वे निरुद्ध होने से पूर्व अपनी वासना, जो नए विज्ञानों को उत्पन्न करती है, उसमें छोड़ जाते हैं। वे आलयविज्ञान में बीजरूप में पड़े रहते हैं तथा समुचित परिस्थितियों में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार आलयविज्ञान जो इन वासनाओं का संचयिता तथा संचितरूप है वह अन्य विज्ञानों

१. केशोण्डूकं प्रख्यमिदं मरीच्युदकविभ्रमात्।

त्रिभवं स्वप्नमायाख्यं.....।। लंकावतारसूत्र, २/५०.

२. चित्तमात्रं न दृश्योऽस्ति, द्विधा चित्तं हि दृश्यते।

ग्राह्यग्राहकभावेन शाश्वतोच्छेदवर्जितम्।। वही, ३/६५.

३. आत्मधर्मोपचारो हि विविधो यः प्रवर्तते।

विज्ञानपरिणामोऽसौ.....।। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः, त्रिशिका, १.

४. यदन्तर्ज्ञैयरूपं तद्बहिर्वदवभासते।। आलम्बनपरीक्षा, कारिका, ६.

की उत्पत्ति में बीजरूप से कार्य करने के कारण सर्वबीज तथा विपाक कहलाता है।^१ विविध विज्ञानों या कर्मों की जो वासनाएँ संचित होती हैं, वे संचित होकर ध्वंस या स्थिर-भाव को नहीं प्राप्त करतीं बल्कि प्रवाहरत रहती हैं। प्रवाहरत होने का अभिप्राय यह है कि वे बीज बनकर तद्रूप विज्ञान उत्पन्न करती हैं। आचार्य वसुबन्धु ने, इस आलयविज्ञान की वृत्ति जल के ओष (बाढ़) के समान बतलाई है।^२ जिस प्रकार जलप्रवाह अपने में व्याप्त तृणकाष्ठ-गोमयादि को लिए हुए प्रवाहरत रहता है उसी प्रकार आलयविज्ञान भी कुशल-अकुशल तथा आनेज्जय संस्कारों से अनुगत हो गतिशील रहता है।

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्म में उक्त बिन्दुओं पर विज्ञानवाद के सिद्धान्तों की आलोचना बड़ी मार्मिकता से की है। उन्होंने विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है मानो विज्ञानवाद, विज्ञेय को किसी भी स्तर पर कोई मान्यता नहीं देता है तथा बाह्यार्थ की उपलब्धि का सर्वथा तिरस्कार करने के बाद भी तज्जन्य वासनाओं की उत्पत्ति को स्वीकार करता है। आचार्य के कथनानुसार, विज्ञानवाद में वासनाओं की अनादि शृंखला को स्वीकार करने पर भी वासना व विज्ञान के परस्पर सम्बन्ध की तर्कसङ्गत व्याख्या सम्भव नहीं हो पाती क्योंकि अनवस्था-दोष आता है। ये वासना संस्कार विशेष हैं और संस्कार बिना किसी नित्य आश्रय के उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। विज्ञानवाद में, आश्रयरूप में जिस आलयविज्ञान को प्रस्तुत किया गया है, वह भी अपने क्षणिकस्वरूप के कारण इस कार्य के लिए समर्थ नहीं है। अतः आचार्य शङ्कर की दृष्टि में नित्य अधिष्ठान के अभाव में तथाकथित वासना का स्वरूप और उन संचित वासनाओं के आधार पर व्याख्यायित बाह्यार्थ का स्वरूप स्वयमेव असिद्ध सिद्ध हो जाता है।

सम्प्रदाय विशेष के सन्दर्भ में, आचार्य शङ्कर द्वारा उठाई गई समस्याओं से पूर्ववर्ती वैदिक दर्शनाचार्य ही नहीं अपितु स्वयं बौद्ध दर्शन के अन्य सम्प्रदाय (शून्यवाद) भी परिचित रहे हैं, तथा उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में समस्या विशेष पर विचार किया है।^३ अतः शङ्कर द्वारा की गई विज्ञानवाद की इस आलोचना को भी बौद्ध दर्शन के इतिहास की सर्वथा नवीन घटना कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है।

१. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि : त्रिशिका, २/५०.

२. तच्च वर्तते स्रोतसौघवत्, वही, ४.

३. (a) भट्ट, कुमारिल, श्लोकवार्तिक, पृ. ३१७-३६७.

(b) द्र- माका, स्वाभावपरीक्षा।

आधुनिक अध्येताओं^१ ने भी उक्त समस्या पर टिप्पणियाँ की हैं। एतदनुसार, विज्ञेय को कभी मिथ्या, कभी असत् अथवा कभी विज्ञान व विज्ञेय में अभेद रूप में देखा गया है। दूसरे शब्दों में, समस्या विशेष पर इन विचारकों में मतैक्य नहीं है। अतएव विचारकों के इन वक्तव्यों को तथा शङ्कराचार्य सहित अन्य सम्प्रदायों द्वारा विज्ञानवाद की इस आलोचना को सर्वप्रथम, युक्तिसङ्गत व प्रामाणिक इसलिए भी नहीं माना जा सकता है क्योंकि इनके द्वारा समस्या विशेष के सन्दर्भ में प्रस्तुत विज्ञानवाद का पक्ष वस्तुतः मूल ग्रन्थों में प्रस्तुत विज्ञानवाद के स्वरूप से सङ्गति नहीं रखता है।

दूसरे, समस्या उठाने का तात्पर्य यह भी नहीं है कि इससे सम्पूर्ण विज्ञानवाद ही दूषित हो जाता है अपितु प्रत्येक अद्वैतवाद के समक्ष परमार्थ से व्यवहार के सम्बन्ध की व्याख्या की समस्या उपस्थित होती है तथा सम्प्रदाय विशेष अपनी-अपनी तत्त्वमीमांसानुसार इस समस्या का पृथक्-पृथक् समाधान भी करता है। जहाँ तक आचार्य शङ्कर द्वारा विज्ञानवाद के सन्दर्भ में उठाई गई आपत्तियों का प्रश्न है तो प्रस्तुत समस्याएँ ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध स्वयं अद्वैत वेदान्त की तत्त्वमीमांसा से भी है। आचार्य शङ्कर ने विज्ञानवाद की कतिपय अवधारणाओं को खण्डन-योग्य समस्या मान कर उनके विरुद्ध कुछ युक्तियाँ अपने भाष्य में दी हैं। आचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त भी अद्वैतवाद है और जिस विज्ञानवाद की अवधारणाओं को वे समस्या के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं और उनमें असङ्गतियाँ बता रहे हैं अथवा खण्डन कर रहे हैं उन्हें स्वयं शङ्कर के दर्शन के सन्दर्भ में भी देखा जाना अनुचित नहीं है।

विज्ञानवाद का विज्ञान क्षणिक सत् है और शङ्कर का ब्रह्म नित्य सत्। दोनों ही सत् के स्वरूप में चित् अथवा चेतना को अभिन्न रूप में मानते हैं। अतः भेद केवल क्षणिकता और नित्यता का है। फलतः दोनों विचारधाराओं में विवाद के केन्द्र, सत् और नित्य हैं। जहाँ तक जगत् की व्यवहारिकता का प्रश्न है दोनों ही उसे स्वीकार करते हैं और उसकी अनेकता या विचित्रता को भी निर्विवाद मानते हैं। समस्या यहाँ उत्पन्न होती है कि क्षणिक अथवा नित्य चेतन से नाना-रूपात्मक और व्यावहारिक सत्य जगत् का प्रादुर्भाव किस नियम से माना जाए तथा उस जगत् से परमार्थ का सम्बन्ध क्या माना जाए। पारमार्थिक तत्त्व से,

१. (a) शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन का आलोचन और अनुशीलन, पृ. २९१.

(b) वही, बौद्ध, पृ. १४८.

किसी भी नियम से, जगत् प्रादुर्भूत हुआ हो, तब भी प्रयोजन की उपादेयता की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि मान्यता है प्रयोजनं विना मन्दोऽपि न प्रवर्तते। विज्ञानवाद इन सभी समस्याओं का समाधान, वासना के माध्यम से करता है जबकि शङ्कर इस समाधान को माया की विलक्षण अवधारणा में पाते हैं। अतः दोनों की ये अवधारणाएँ तुलनीय हैं। दोनों पारमार्थिक सत्य नहीं हैं, दोनों अनादि और सान्त हैं, वैचित्र्य के कारण का रहस्य भी दोनों इन्हीं में मानते हैं। इसलिए मायावादी शङ्कर का वासना की अवधारणा पर, उसकी अनादिता पर और वैचित्र्य की उसकी सामर्थ्य पर आपत्ति उठाना बहुत अधिक युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

शङ्कर-सिद्धान्त में, माया की अवधारणा का जो स्थान है उसकी अपेक्षा विज्ञानवाद की वासना अधिक व्यावहारिक है, अनुभवयोग्य है तथा अनिर्वचनीय भी नहीं है। उसके क्लेशात्मक प्रभाव से मुक्ति, निर्वाण है जबकि शङ्कर की माया की भूमिका को इस प्रकार से निरूपित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें मिथ्यात्व स्वभावसिद्ध है।

यदि शङ्कर माया से व्यावहारिक जगत् रूप विवर्त के समस्त कार्य सम्पादित कराते हुए भी ब्रह्म से उसको सर्वथा असम्बद्ध रखने में स्वयं को सफल मानते हैं तो विज्ञान भी विज्ञानाभासरूप इस जगत् और वासना को निर्वाण-दशा में शुद्ध विज्ञान से सर्वथा पृथक् मान सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विज्ञानवाद का तात्पर्य, विज्ञेय का सर्वथा निषेध या तिरस्कार नहीं है अपितु विज्ञेय की अपेक्षा अथवा उसकी तुलना में विज्ञान का अधिक महत्त्व स्थापित करना है जबकि शङ्कर की दृष्टि में विज्ञेय, सर्वथा भ्रान्त है। निश्चित ही व्यवहार में विज्ञानवाद की व्याख्या अधिक सङ्गत प्रतीत होती है।

जागतिक वैचित्र्य का भी जहाँ तक प्रश्न है, माया की अपेक्षा वासना को कारण मानना उचित प्रतीत होता है क्योंकि वह क्षणिक विज्ञानों के वैचित्र्य से सम्बद्ध है। शरीर और मन तथा कर्म और फल में जैसे नित्य-नैमित्तिकभाव, व्यावहारिक अनुभव है उसी प्रकार विज्ञान और वासना में वैचित्र्य की स्थिति है।

संस्काररूपी वासना के लिए नित्य आश्रय की अपेक्षा अथवा सन्दर्भ विशेष में, आलयविज्ञान की असमर्थता की आपत्ति का जहाँ तक प्रश्न है; सम्प्रति यह कहा जाता है कि विज्ञानवाद में प्रस्तावित आलयविज्ञान का स्वरूप विज्ञान से भिन्न नहीं है। जिस प्रकार शाङ्कर वेदान्त में ब्रह्म अथवा माया के लिए किसी

प्रकार के आश्रय की व्यवस्था नहीं है, उसी प्रकार विज्ञान में प्रस्तावित वासना निरधिष्ठान है। वस्तुतः वासना और आलयविज्ञान के सन्दर्भ में नित्य आश्रय या अधिष्ठान की यह कल्पना ही असङ्गत है क्योंकि आलयविज्ञान के स्वरूप में क्षणिकता अन्तर्गर्भित है। दूसरे शब्दों में इसकी नित्यरूप में कल्पना इसलिए भी नहीं की जा सकती क्योंकि यह क्षणिक विज्ञान का कल्पित समष्टिरूप है। आलयविज्ञान को विज्ञानवादी अन्य विज्ञानों की उत्पत्ति का हेतुरूप अथवा बीजरूप मानते हैं तथा यह स्पष्ट कहते हैं कि आलयविज्ञान में नानात्व व विचित्रता, वासना के कारण आती है। वसुबन्धु के शब्दों में आलयविज्ञान वस्तुतः आधार भी इसलिए कहा जाता है क्योंकि सभी धर्म अर्थात् विज्ञान इसमें कार्यभाव से उपनिबद्ध होते हैं या यह सभी में कारणभाव से उपनिबद्ध होता है। आशय यह है कि किसी भी स्वरूप में आलयविज्ञान को वासना का आश्रय नहीं माना जा सकता। अतः आचार्य शङ्कर द्वारा वासना के सन्दर्भ में उठाई गई आलयविज्ञान के क्षणिकस्वरूप पर आपत्ति अथवा नित्य अधिष्ठान की समस्या निराधार सिद्ध हो जाती है। दूसरे शब्दों में, आचार्य शङ्कर ने विज्ञानवाद के सन्दर्भ में वासना, विज्ञान व विज्ञेय और आलयविज्ञान के क्षणिक स्वरूप पर इन आपत्तियों को उठाकर अनजाने में वस्तुतः अपने दर्शन की तत्त्वमीमांसीय असङ्गतियों को ही उजागर किया है।

शून्य

शून्य की सत्ता व अनिर्वचनीयता

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मभाष्य (२/२/३१) में शून्यवाद की चर्चा की है। इस चर्चा के अन्तर्गत आचार्य ने पूर्वपक्ष के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से सर्वास्तिवाद व विज्ञानवाद की अपेक्षा शून्यवाद को कम महत्त्व दिया है। संक्षिप्त टिप्पणी के माध्यम से आचार्य ने शून्यवाद में उपस्थित समस्या विशेष की ओर संकेत किया है। यह समस्या है- शून्यवाद में तथाकथित शून्य के अस्तित्व व उसकी अनिर्वचनीयता की।

दर्शन परमार्थ सत्य का चिन्तन है और पारमार्थिक सत्य के दो पक्ष हो सकते हैं- अस्तित्व और स्वरूप। इन्हीं में प्रयोजन और प्रभाव अथवा कार्य के पक्ष अन्तर्गर्भित हैं। कोई भी दर्शन किसी भी तत्त्व को पारमार्थिक सत्य के रूप में प्रस्तुत कर सकता है, इसमें निर्विवाद पक्ष उसका अस्तित्व होता है और सर्वाधिक विवादास्पद उसका स्वरूप होता है। प्रयोजन आदि अन्य पक्ष, स्वरूप से ही निर्देशित होते हैं। बौद्ध दर्शन सहित अन्य सभी भारतीय दर्शनों में पारमार्थिक सत्य के नाम से स्वरूप के विषय में नाना मत-मतान्तर मिलते हैं। किसी का

पारमार्थिक तत्त्व पुरुष-प्रकृति है, किसी का परमाणु-द्रव्यादि, किसी का विज्ञान, ब्रह्म, शिव आदि। किन्तु इन सभी सम्प्रदायों से शून्यवाद का पारमार्थिक सत्य इसलिए विलक्षण है कि इसके प्रधान आचार्य, इस सत्य का परिचय स्पष्टरूप से सत् के रूप में भी नहीं देना चाहते क्योंकि इसमें उन्हें सापेक्षता की गन्ध आती है। यहाँ शङ्कर जब इस दृष्टि-निरपेक्ष दृष्टि को सभी प्रमाणों से प्रतिषिद्ध बताते हैं तो उनका आशय यही प्रतीत होता है कि जब तथाकथित शून्य तत्त्व का अस्तित्व ही निर्णीत नहीं है, तब उस तत्त्व के स्वरूप की सिद्धि में प्रमाणों की गति तो सर्वथा निरर्थक ही है। अस्तित्व को स्वीकार करना तो परमार्थ की दिशा में बढ़ने का अतिसाधारण और प्राथमिक चरण है। उसके बिना अन्य सभी पक्षों की चर्चा निरर्थक है और फिर सत् को सापेक्ष ही क्यों माना जाए? साहसपूर्वक सत् न मानने का अर्थ, असत् क्यों न माना जाए और ऐसा मानने पर स्पष्ट है कि प्रमाणों की गति सत् के सम्बन्ध में मान्य है, असत् के सम्बन्ध में नहीं। अर्थात् जो सत् और असत् से विलक्षण है और जिसकी मात्र कल्पना की जाती है उसके लिए ही प्रमाण-व्यापार व्यर्थ नहीं है अपितु असत् अथवा सर्वथा असत् के लिए भी प्रमाण-व्यापार व्यर्थ है। शून्यवाद के अन्तर्गत, शून्य की अवधारणा की आलोचना में यही भाव पृष्ठभूमि में रहा है। इसीलिए शून्यवाद को अनेक भारतीय व पाश्चात्य ग्रन्थों में असत्वादी अथवा अभाववादी कहते हुए खण्डित किया गया है।^१

प्रमाणातीतता की ही तरह अनिर्वचनीयता भी एक ऐसा लक्षण है, जो सत्-असत् से विलक्षण की भाँति सर्वथा असत् पर घटित होता है। अतः आचार्य शङ्कर जब तथाकथित शून्य के अस्तित्व को प्रमाणों से प्रतिषिद्ध बतलाते हैं तो उनका एक आशय यहाँ सर्वथा असत् रूपी शून्य के अनिर्वचनीय स्वरूप से है।

आचार्य यह स्पष्ट कहते हैं कि लोकव्यवहार से सर्वथा भिन्न परमार्थ है, यह कह देने मात्र से उस तत्त्व का परिचय नहीं मिलता है और न ही इससे उसके अस्तित्व की सिद्धि होती है अपितु इस लोकव्यवहार का सर्वथा निषेध

१. (a) आधुनिक काल में भी जब पश्चिमी दार्शनिकों ने बौद्ध दर्शन का अध्ययन प्रारम्भ किया तो वे सब एक मत से शून्यवाद का अर्थ अभाववाद या निषेधवाद ही समझते हैं, Narayan, Harsha, *Sunyavada : A Reinterpretation, Philosophy East and West*, Vol. XIII, No. 4 January, 1964, p. 311.

(b) कीथ के मतानुसार माध्यमिकों का सत् पूर्णतः अभावरूप है। Stcherbatsky, *The Conception of Buddhist Nirvana*, p. 35.

करने का अधिकार भी उसी को है जो इससे भिन्न परमार्थ की सत्ता अथवा सद्व्यवस्था की स्थापना करता हो।

शून्यवाद के नाम से प्रसिद्ध माध्यमिक मत को बौद्ध दार्शनिक चिन्तन का चूड़ान्त विकास माना गया है। यह दर्शन अपनी तत्त्वमीमांसा में दो सत्यों का विश्लेषण करता है- परमार्थसत्य और संवृतिसत्य।^१

माध्यमिक आचार्य चन्द्रकीर्ति के मतानुसार संवृति सत्य का अर्थ लोकव्यवहार है। यह लोकसंवृति अविद्या की उत्पत्ति है। इन्द्रियज्ञान के क्षेत्र अर्थात् प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण, कर्ता, कर्म, क्रिया, भोज्य-भोजकभाव, वचनों की सत्-असद्व्यवस्था, बन्ध-मोक्ष आदि सभी इसके अन्तर्गत समाविष्ट हैं। संवृतिसत्य के इस स्वरूप से सर्वथा परे परमार्थ अथवा तथाकथित शून्य है। दूसरे शब्दों में, न भाव-नाभाव-रूप^२ इस परमार्थ की प्रकृति ही ऐसी है जो विचार करने की प्रक्रिया भी सहन नहीं कर सकती।^३ अतः विचार व व्यवहार के स्तर पर मान्य बुद्धिग्राह्य इन सारे भावों से अथवा उसकी प्रमाण-प्रमेय व्यवस्था से, परमार्थ का संस्पर्श अथवा उसकी सिद्धि करना कथमपि सम्भव नहीं है। यही कारण है कि माध्यमिक आचार्य नागार्जुन ने स तु यथा लोके यथा अस्माभिरुच्यत एव (माका, पृ. २५) कह कर, लोक की इस सत्यता को अथवा उसकी प्रमाण-व्यवस्था को तो स्वीकार किया है तथापि परमार्थ के स्तर से इस प्रमाण-प्रमेय

१. द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।

लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः।। माका, २४/८.

२. कथं न भावो यस्मादद्वयस्याभावः।

कथं नाभावो यस्मादैक्याभावस्य भावः। एतच्च शून्यताया लक्षणम्।।

मध्यान्तविभागभाष्य, १.१४, पृ. ४२८.

३. (a) द्वयस्य ग्राह्यग्राहकस्याभावः। तस्य चाभावास्य भावः शून्यताया लक्षणमित्यभावस्वभाव-लक्षणत्वं शून्यतायाः परिदीपितं भवति। वही, पृ. ४२७.

(b) पृथक्त्वे सति धर्मादन्या धर्मतेति न युज्यते, अनित्यतादुःखतावत्। एकत्वे सति विशुद्ध्यालम्बनं ज्ञानं न स्यात् सामान्यलक्षणं च। एतेन तत्त्वान्यत्वविनिर्मुक्तं लक्षणं परिदीपितं भवति। वही, पृ. ४२७.

(c) पुद्गलधर्माभावश्च शून्यता। वही, १.१७, पृ. ४२९.

(d) शून्यता तस्याभूतपरिकल्पस्य ग्राह्यग्राहकभावेन विरहिता। वही, १.३, पृ. ४२५.

(e) यत्पुनरावशिष्टं भवति 'तत्सदिहास्तीति यथाभूतं प्रजानातीत्य विपरीतं शून्यतालक्षण-मुद्भावितं भवति। वही, १.३, पृ. २५५.

व्यवस्था आदि का तिरस्कार कर स्वानुभूतिरूप तथाकथित शून्य की चतुष्कोटिविनिर्मुक्तता सिद्ध की है।^१ शङ्कराचार्य^२ ने भी स्वयं अपने दर्शन में ब्रह्म को तर्कातीत कहकर, उसकी प्रमाणातीतता को स्वीकार किया है। आशय यह है कि प्रमाण के विषय में तत्त्व की अगोचरता को लेकर माध्यमिक व शङ्कर दोनों एकमत हैं।

अनिर्वचनीयता का जहाँ तक प्रश्न है तो दर्शनद्वय की तत्त्वमीमांसा में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अर्थात् शून्यवादियों ने जहाँ शून्य के लिए शब्द विशेष का प्रयोग किया है वहीं आचार्य शङ्कर द्वारा यह शब्द अनिर्वचनीय, ब्रह्म व माया दोनों के लिए व्यवहृत हुआ है तथापि आचार्यद्वय द्वारा की गई अनिर्वचनीय शब्द की व्याख्या व उसका तात्पर्य तत्त्वमीमांसा विशेष के अनुसार पृथक्-पृथक् है।

शून्यवादियों के मतानुसार सत्-असत् परस्पर सापेक्ष हैं तथा शब्द रूप में सत्-असत् रूपी दृष्टि विशेष का निर्वचन व्यवहार के स्तर तक सीमित है। परमार्थ, सत्-असत् से विलक्षण अथवा सत्-असत् रूपी सभी दृष्टियों का, उनकी वचनीयता का निःसरण है, इसलिए अनिर्वचनीय है।^३ जबकि शङ्कर की माया सदसद्विलक्षण रूप होने के कारण अनिर्वचनीय है। अर्थात् माया के बारे में निश्चात्मकरूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह सत् है अथवा असत्। दूसरे शब्दों में, परिस्थिति विशेष में वह सत् व असत् दोनों होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसी प्रकार ब्रह्म के सन्दर्भ में- अनिर्वचनीयता का तात्पर्य ब्रह्म की शब्दातीतता से है। शब्द, स्वयं ब्रह्म की सृष्टि है। अतः ब्रह्म का निर्वचन सीमित शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। ब्रह्म, शब्दों के व्यवहार से परे अथवा शब्दातीत होने के कारण अनिर्वचनीय है। आशय यह है कि शून्य को शून्य अथवा ब्रह्म को ब्रह्म कहना भी व्यवहारमात्र है वस्तुतः परमार्थ तो समानरूप से अनिर्वचनीय ही है।

आचार्य शङ्कर द्वारा शून्यवाद पर की गई आपत्ति के दूसरे अंश अर्थात् परमार्थ अथवा तथाकथित शून्य के अस्तित्व की सिद्धि के लिए लोकव्यवहार

१. (a) न सन्नासन् न सदसदन् न चाप्यनुभयात्मकम्।

चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः।। माका, १/७.

(b) अपरं प्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम्।

निर्विकल्पमनानार्थमेतत् तत्त्वस्य लक्षणम्।। वही, ९८/९.

२. न तार्किकपरिकल्पिततात्त्ववत्पुरुषबुद्धिप्रमाणगम्यः। माण्डूका शाभा, ३/११.

३. (a) शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः। माका, १३/८.

(b) सर्वदृष्टिप्रहाणाय यः सन्दर्भमदेशयत्। वही, २७/३०.

(c) अनक्षरस्य धर्मस्य श्रुति का देशना च का।

श्रूयते देशयते चापि समारोपादनक्षरः। माध्यमिकवृत्ति, १५/२ की टीका, पृ. १५.

का सर्वथा निषेध किए जाने का जहाँ तक प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि शून्यवादियों ने लोकव्यवहार का सर्वथा तिरस्कार न करके उसे संवृत्तिसत्य के रूप में स्वीकार किया है। यह स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी शाङ्कर वेदान्त में व्यावहारिक सत्य की है, जिस प्रकार शाङ्कर वेदान्त व्यवहार के स्तर पर जगत् की सत्यता को स्वीकार करता है तथापि इससे सर्वथा भिन्न, परमार्थ के अस्तित्व को मानता है। अथवा जिस प्रकार सर्वं खलु इदं ब्रह्म में 'सर्व' शब्द व्यावहारिक जगत् का बोध कराता है और परमार्थ इससे सर्वथा परे और एक है। जो एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति का ज्ञान कराता है, उसी प्रकार शून्यवाद भी दो सत्त्यों की मान्यता में साध्य, परमार्थसत्य के ज्ञान के लिए साधनरूप संवृत्ति सत्य के विवेचन को आवश्यक मानता है।^१ दूसरे शब्दों में, माध्यमिक परमार्थ की अनुभूति के लिए जिस साधना-पद्धति का प्रावधान करता है, वस्तुतः वह व्यवहार के प्रति आसक्ति का परित्याग करके ही प्रारम्भ की जा सकती है। आशय यह है कि व्यवहार को जाने बिना, परमार्थ की ओर गति की सम्भावना को शून्यवाद भी स्वीकार नहीं करता है।

अतः अन्य दार्शनिक अथवा आलोचक जो शून्य का तात्पर्य अभाव मानकर इसकी उपेक्षा करते हैं अथवा शून्यवाद को लोकव्यवहार-विरुद्ध दर्शन के रूप में स्वीकार करते हैं, उसका एकमात्र कारण यही है कि उनको सत् अथवा असत् रूप में किसी सिद्धान्त की स्थापना अथवा खण्डन का अभ्यास है और शून्यवाद, दार्शनिक-चिन्तन की इस परम्परागत कसौटी पर, सत्-असत् रूपी किसी सिद्धान्त विशेष की स्थापना न किये जाने के कारण खरा नहीं उतरता है।^२ माध्यमिक-दर्शन की इस सत्यता को विभिन्न विचारकों^३ ने अपने वक्तव्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार से पुष्ट किया है।

प्रस्तुत विश्लेषण के उपरान्त, शून्यवाद अथवा माध्यमिक के चिन्तन का जो ऐतिहासिक व दार्शनिक महत्त्व है, उसको, शङ्कर समझते नहीं थे- वस्तुतः

१. व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।

परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।। माका, २४/१०.

२. यदि काचन प्रतिज्ञा तत्र स्यादेव मे भवेदोषः।

नास्ति च मम प्रतिज्ञा तस्मान्नैवास्ति मे दोषः।। वही, २९.

३. (a) *The Absolute is incommensurable and inexpressible; it is utterly transcendent to through Sunya, Murti, T.R.V., The Central Philosophy of Buddhism, p. 231.*

(b) *The Madhyamika philosophy, A New Approach, Pendey, R.C., Philosophy East and West, April, 1961, p. 19.*

ऐसा कहना, उस महान् आचार्य के लिए उचित नहीं है। तथापि उनकी टिप्पणियों से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि शङ्कर के समक्ष कुछ सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक विवशताएँ रही होंगी जिनके कारण उन्हें शून्यवाद के प्रति वे ही आपत्तियाँ (तत्त्व की प्रमाणातीतता व अनिर्वचीनयता तथा लोकव्यवहार का सर्वथा निषेध) उठानी पड़ीं जिनसे वस्तुतः वह स्वयं सहमत न थे अथवा जो स्वयं शङ्कर वेदान्त के सिद्धान्त में विद्यमान थीं।

(ल) शङ्कर-पूर्व बौद्ध आचार्यों द्वारा सर्वास्तिवाद का खण्डन

आचार्य शङ्कर ने अपने ब्रसूशाभा में बौद्ध दर्शन के अन्य सम्प्रदायों के साथ सर्वास्तिवाद का भी खण्डन किया है। किन्तु आचार्य शङ्कर का यह खण्डन दर्शन के इतिहास में सर्वप्रथम नहीं है। आचार्य से पूर्व, अन्य दर्शन के आचार्यों ने भी सर्वास्तिवाद का खण्डन किया है, यही नहीं स्वयं बौद्ध दर्शन के परवर्ती सम्प्रदायों में भी सर्वास्तिवाद का खण्डन मिलता है। इनमें उल्लेखनीय नाम-विज्ञानवादी आचार्य वसुबन्धु व शून्यवादी आचार्य नागार्जुन का है।

बौद्धाचार्य वसुबन्धु^१ (चतुर्थ शतक) दर्शन के इतिहास में एक स्वतन्त्र विचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में ये सर्वास्तिवाद-परम्परा के अनुयायी थे तथा बाद में इन्होंने अपने अग्रज असङ्ग के प्रभाव से महायान (विज्ञानवाद) की परम्परा को स्वीकार किया है।^२ आचार्य वसुबन्धु प्रणीत विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि^३ को विज्ञानवाद का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ

१. (a) विद्र- Frauwalner, *The Date of Buddhist master of Law Vasubandhu.*

(b) विद्र- Takakusu, *The Date of Vasubandhu : A great Buddhist Philosopher.*

(c) विद्र- T. Kimura, *Date of Vasubandhu Seen from the Abhidharmakosha.*

(d) विद्र- तिवारी, मुनिराम, *बौद्धाचार्य वसुबन्धु.*

२. (a) Watters, Thomas, *Yuang-chwang, Travels in India*, p. 210.

(b) तारानाथ, *भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास* (हिन्दी अनुवाद- निगलिज लुण्डुप लामा), पृ. ६७.

(c) Anacker, *Seven works of Vasubandhu*, p. 18-19.

३. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि के दो भाग हैं- विंशतिका और त्रिंशिका। विंशतिका में २२ कारिकाएँ और त्रिंशिका में ३० कारिकाएँ हैं। विंशतिका पर स्वयं वसुबन्धु ने वृत्ति लिखी है एवं त्रिंशिका पर उनके शिष्य स्थिरमति ने भाष्य लिखा है। इस प्रकार कुल मिलाकर इस ग्रन्थ में ५२ कारिकाएँ हैं जो अनुष्टुप् छन्द में हैं।

में आचार्य ने सर्वास्तिवादी विचारों की सयुक्तिक समीक्षा कर विज्ञानवाद की स्थापना की है।

आचार्य वसुबन्धु द्वारा विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि में बाह्यार्थवाद के खण्डन के सन्दर्भ में प्रस्तुत पूर्वपक्ष का स्वरूप इस प्रकार है-

सर्वास्तिवाद अथवा बाह्यार्थवाद जगत् को संघातरूप मानता है और इसका कारण निरंश परमाणु को स्वीकार करता है। इसके अनुसार जगत् का प्रत्येक पदार्थ (बाह्य एवं आन्तरिक) क्षणिक है। इसकी तत्त्वमीमांसा में स्कन्ध, आयतन, धातु, धर्म आदि परिगणित हैं।

आचार्य वसुबन्धु द्वारा सर्वास्तिवाद के विरुद्ध प्रस्तुत युक्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है^१:-

(i) परमाणु का अस्तित्व प्रमाण-प्रक्रिया से भिन्न रूप में सिद्ध नहीं होता है। अर्थात् परमाणु अचेतन होने के कारण स्वतः सिद्ध नहीं है।^२

(ii) प्रमाण-प्रक्रिया से भी परमाणुओं का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है क्योंकि अतिसूक्ष्मता के कारण वह इन्द्रियातीत होता है और प्रमाण, इन्द्रियों से सीमित होते हैं।

(iii) परमाणु का जो निरंश स्वरूप परमाणुवादी बताते हैं वह स्वरूप भी सिद्ध नहीं होता है क्योंकि अतिसूक्ष्मता के कारण वह इन्द्रियातीत होता है और प्रमाण, इन्द्रियों से सीमित होते हैं।

(iv) परमाणु का जो निरंश स्वरूप परमाणुवादी बताते हैं वह स्वरूप भी सिद्ध नहीं होता है क्योंकि चार, छः अथवा आठ दिशाओं के कारण सूक्ष्मतम परमाणु के भी तार्किक दृष्टि से अंश मानना आवश्यक है।

(v) संसार यदि परमाणुओं का संघात है और संघात अवयवी तथा परमाणु उसके अवयव हैं तो अवयवी अथवा संघातरूप जगत् की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि निरवयव परमाणु एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हो सकते।

(vi) बाह्य पदार्थ की सिद्धि प्रमाण के अधीन होती है (मानाधीना मेयसिद्धिः) किन्तु बाह्य पदार्थ का प्रमाण-व्यापार के द्वारा, विशेषरूप से प्रत्यक्ष के द्वारा, ज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि क्षणभङ्गवाद में क्षणिक वस्तु का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है।

१. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, विंशतिका, कारिका, ११-१७.

२. विज्ञानवादियों के विज्ञान और ब्रह्मवादियों के ब्रह्म को स्वतः सिद्ध माना गया है।

(vii) यदि क्षणिक वस्तु का प्रत्यक्षात्मक ज्ञान मान भी लिया जाय तो भी वस्तु की सत्ता और उसका ज्ञान व्यावहारिक ही होगा, पारमार्थिक नहीं क्योंकि बाह्यार्थ, स्वप्न की तरह काल्पनिक और मिथ्या है।

नागार्जुन ने माका में अनेक तत्त्वों अथवा अवधारणाओं की परीक्षा की है। सर्वास्तिवाद में साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले तत्त्वों में प्रधानरूप से उल्लेखनीय हैं- स्कन्ध, धातु, कर्मफल, हेतुवाद, निरोध इत्यादि। इन सबकी सयुक्तिक परीक्षा में आचार्य का प्रधान लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि स्कन्धादि सभी अवधारणाएँ परस्पर सापेक्ष हैं, इन्हें कार्य मानने पर इनके अनेक कारणों को मानने की बाध्यता है, ये सभी वर्ण्य पदार्थ सापेक्ष हैं और सस्वभाव हैं। ऐसी स्थिति में इन पराधीन तत्त्वों को पारमार्थिक और स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना जा सकता। वही तत्त्व स्वतन्त्र, पूर्ण तथा लोकोत्तर माना जा सकता है जो किसी भी रूप में किसी भी देश, काल, आकार, स्वभाव आदि के अधीन न हो, ऐसे ही तत्त्व का व्यवहारोपयोगी नाम- शून्य है।

(ए) सर्वास्तिवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य

दर्शन की प्रधान शक्ति, तर्क, युक्ति अथवा प्रमाणमीमांसा है। इसी के माध्यम से वह स्वपक्ष की स्थापना और परपक्ष का खण्डन करता है।

ब्रह्मसूत्रकार और उसके भाष्यकार शङ्कर ने अपनी रचनाओं में वैदिक द्वैतवाद और अवैदिक द्वैत एवं अद्वैतवाद के मतों पर सयुक्तिक विचार किया है। सांख्य, न्याय-वैशेषिक जैसे वैदिक द्वैतवादी मतों की समालोचना के बाद आचार्य, बौद्ध द्वैतवाद के खण्डन की ओर अग्रसर होते हैं।

सर्वास्तिवाद, बौद्ध दर्शन का द्वैतवादी सम्प्रदाय है। ब्रह्मसूत्रकार व आचार्य शङ्कर दोनों ने इस सम्प्रदाय की सयुक्तिक आलोचना की है। ब्रह्मसूत्रकार द्वारा सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में जो युक्तियाँ दी गईं अथवा खण्डन किया गया, उसके दो प्रधान निष्कर्ष थे- (i) क्षणभङ्गवाद मानने से लोकव्यवहार की सुसङ्गत व्याख्या नहीं हो सकती (ii) अचेतन पदार्थ जगत् की उत्पत्ति में समर्थ नहीं हैं। अतः स्थिर चेतन तत्त्व की (कर्ता, भोक्ता आदि रूप में) सत्ता मानना आवश्यक है।

आचार्य शङ्कर, तत् सूत्रों पर अपने भाष्य में अथवा सर्वास्तिवाद के विरुद्ध दी गई युक्तियों में, सूत्रकार के उक्त आशय को ही पुष्ट करते हैं। शङ्कर ने जो युक्तियाँ सर्वास्तिवाद के विरुद्ध दी हैं, उन सभी का वर्गीकरण करने पर दो पक्ष निर्धारित होते हैं- (i) व्यवहार की दृष्टि से क्षणभङ्गवाद की दुर्बलता बतलाना।

(ii) लोकव्यवहार की दृष्टि से नित्य चेतनतत्त्व को आवश्यक मानना। आचार्य द्वारा सर्वास्तिवाद के विरुद्ध दी गई युक्तियों का प्रधान लक्ष्य अथवा मर्म स्थल क्षणभङ्गवाद ही है। अन्य अवधारणाएँ यथा-स्मृति, प्रत्यभिज्ञा आदि इसी की पूरक हैं। दूसरे शब्दों में, शङ्कर ने सूत्रकार द्वारा प्रयुक्त लोकव्यवहार शब्द की व्यापकता को स्मृति-प्रत्यभिज्ञा जैसे सिद्धान्त का उदाहरण देकर क्षणभङ्गवाद से इनकी असङ्गति का कथन मात्र ही किया है।

सर्वास्तिवाद की यह विशेषता है कि वह अपनी तत्त्वमीमांसा में बाह्य एवं आभ्यन्तर (चैत व चित्त) दोनों के क्षणिक अस्तित्व को स्वीकार करता है। आचार्य शङ्कर ने भी व्यवहार के स्तर पर द्वैत अथवा उसकी नित्यता को स्वीकार किया है; व्यवहार के स्तर पर सत्कार्यवाद, प्रकृति-पुरुष का भेद उन्हें भी मान्य है। अतः व्यवहार के स्तर पर क्षणभङ्गवाद का सिद्धान्त, शङ्कर वेदान्त के मायावाद से सर्वथा प्रतिकूल है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। परमार्थ की दृष्टि से संसार की अनित्यता के प्रश्न पर दोनों दर्शन-सम्प्रदाय समान भूमि पर अवस्थित हैं; दोनों में वैषम्य विधि को लेकर है। शङ्कर जहाँ व्यवहार-स्तर पर समग्र संसार को स्वीकार करते हैं तथा परमार्थ की दृष्टि से मिथ्या बताते हैं वहीं सर्वास्तिवाद व्यवहारतः मात्र पदार्थ के क्षणिक अस्तित्व को स्वीकार कर लेता है।

संक्षेप में, शङ्कर द्वारा क्षणभङ्गवाद की आलोचना अथवा विरोध, व्यवहार के स्तर पर मान्य अचेतन संसार की क्षणिकता के प्रति नहीं है अपितु आपत्ति का प्रधान बिन्दु सर्वास्तिवाद में मान्य चित् का क्षणिक स्वरूप है, जिसकी गणना वह घटपटादि की तरह ही व्यवहार के स्तर पर करता है।

आचार्य शङ्कर के मतानुसार नित्य चेतन तत्त्व केवल पारमार्थिक दृष्टि से ही अपरिहार्य नहीं है बल्कि व्यवहार के स्तर पर भी (जगत्-प्रक्रिया में) इसकी भूमिका मानना आवश्यक है। व्यवहार में इस चेतन तत्त्व की नित्यता स्वीकार किए बिना स्मृति, प्रत्यभिज्ञा जैसी सामान्य अवधारणाओं का निर्वाह सम्भव नहीं हो सकता है। अभिप्राय यह है कि चित् के क्षणिक स्वरूप को मानने के कारण सर्वास्तिवाद में, व्यवहार की भी सन्तोषप्रद अथवा सुसङ्गत व्यवस्था सम्भव नहीं है।

आधुनिक विचारकों ने भी शङ्कर द्वारा सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में क्षणभङ्गवाद की उक्त आलोचना पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं-

भरत सिंह उपाध्याय के मतानुसार^१, क्षणभङ्गवाद में उत्पत्ति-विनाश का

समुचित हेतु नहीं है- ऐसा दोष दिखाने का शङ्कर का प्रयास न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुरूप है, सर्वास्तिवाद के नहीं।

प्रस्तुत वक्तव्य के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि बौद्ध दर्शन का प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अथवा विचार, भारतीय-दर्शन के समस्त सम्प्रदायों में सर्वथा विलक्षण है। यह बुद्ध के द्वारा निर्वाण के प्रसङ्ग में उपदिष्ट विचार है। अन्य जो भी दर्शन, क्षणभङ्गवाद की आलोचना करता है, वह कार्यकारणभाव के सिद्धान्त को सामने रखकर करता है। अर्थात् प्रतीत्यसमुत्पाद को कभी असत् से सत् की उत्पत्ति मानकर, कभी निर्हेतुक विनाश मानकर अथवा कभी इसे क्षणभङ्गवाद से जोड़कर इसमें अनेकानेक असङ्गतियों को ढूँढा जाता है। यही कार्य आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्य में किया है और इस प्रसङ्ग में नित्य चेतन तत्त्व को आवश्यक माना है।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रस्तुत निर्हेतुक-विनाश की उक्त आपत्ति विचारणीय है। क्षणभङ्गवाद में क्षण का स्वरूप ही ऐसा है जिसमें प्रत्येक क्षण अपनी उत्पत्ति, स्थिति व विनाश के लिए स्वयं कारण है। जब क्षण की उत्पत्ति का अन्य कोई हेतु नहीं है तो विनाश का कारण मानने की भी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यही उसका स्वभाव है।

क्षणभङ्गवाद में निर्हेतुक उत्पाद-विनाश मानना कम से कम आचार्य शङ्कर के लिए विलक्षण सिद्धान्त नहीं है क्योंकि अद्वैत-वेदान्त में माया स्वयं बिना कारण के उत्पन्न व नष्ट होती हुई मानी गई है। दूसरे, शङ्कर स्वयं भी अपने दर्शन में पारमार्थिक स्तर पर कार्यकारणभाव के सिद्धान्त को नहीं मानते हैं।

आचार्य शङ्कर द्वारा दी गई युक्तियों की एक अन्य विशेषता यह है कि उन्होंने सर्वास्तिवाद में मान्य असंस्कृत-धर्म (प्रतिसंख्याननिरोध और अप्रतिसंख्याननिरोध) का स्वरूप पदार्थ-विनाश माना है और विनाश को कार्य मानकर उसके कारण की अपेक्षा की है अथवा उस पर भी 'निर्हेतुक-विनाश' का आरोप लगाया है।

शङ्कर की यह आपत्ति वस्तुतः क्षणभङ्गवाद के स्वरूप से हटकर कार्यकारणवाद के धरातल से की गई है। यहाँ शङ्कर ज्ञान को एक कार्य मानकर उसके कारण की अपेक्षा रखते हैं। सम्प्रति यह कहा जा सकता है कि लोकव्यवहार

के स्तर पर किसी पदार्थ के ज्ञान की कल्पना कर, उसके कारण की अपेक्षा करना वस्तुतः एक सहज प्रक्रिया मानी जाती है किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से निर्वाण के स्वरूप को कार्य मानना तत् प्रसङ्ग में कारण की चर्चा करना असङ्गत है। शङ्कर स्वयं भी अपने दर्शन में मोक्ष को अनुत्पाद्य, अप्राप्य, असंस्कार्य आदि विशेषणों से व्यवहृत करते हैं।^१ अतः प्रतिवादी से ऐसे तर्क अथवा सिद्धान्त की अपेक्षा करना जिसे वादी स्वयं न स्वीकार करता हो, खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया में एक प्रकार से पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टि का संकेत करता है। आचार्य वस्तुतः सर्वास्तिवाद को उसके मूलस्वरूप में समझ ही नहीं पाए थे, जैसा कि अन्य विचारक^२ ने भी स्वीकार किया है। वस्तुस्थिति जो भी हो निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सर्वास्तिवाद में मान्य असंस्कृत-धर्म के स्वरूप पर आचार्य शङ्कर की उक्त आपत्ति, पक्ष-विपक्ष दोनों दृष्टियों से असङ्गत है। सन्दर्भ विशेष में आधुनिक विचारकों के कथन भी उक्त निष्कर्ष की ही पुष्टि करते हैं।^३

आचार्य शङ्कर का सम्पूर्ण दर्शन जीवन के अनुभवों पर आधारित है। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि प्रमाणातीत परमतत्त्व के साक्षात्कार का एकमात्र साधन अनुभव है। अनुभव के पश्चात् द्वितीय स्तर पर श्रुतियों का स्थान आता है। इन श्रुतियों का महत्त्व यही है कि वे शब्द-प्रमाण के माध्यम से अनिर्वचनीय तत्त्व की ओर संकेत करती हैं। अनुभव एवं श्रुति के उपरान्त तृतीय कोटि पर, तर्क को स्वीकार किया गया है। इस तर्क की भूमिका तत्त्व की सिद्धि करना नहीं अपितु श्रुतियों में प्रतिपादित सत्य की पुष्टि करना है। दूसरे शब्दों में, तर्क की आवश्यकता, साधारण बुद्धि वाले मनुष्यों को श्रुतियों में प्रतिपादित सत्य के

१. द्र- ब्रसूशाभा, १/१२४.

२. यहाँ पर यह 'निर्हेतुकविनाशाभ्युपगम' सर्वास्तिवाद के किस सिद्धान्त का सूचक है, यह ठीक समझ में नहीं आता। कदाचित् इससे यही मालूम पड़ता है कि वस्तुएँ निर्हेतुक-विनाश को प्राप्त होती हैं। हम जानते हैं कि सर्वास्तिवादियों का या बौद्ध धर्म के किसी अन्य सम्प्रदाय का ऐसा अभिप्राय कभी नहीं रहा। अतः यही कहना पड़ेगा कि शङ्कर ने सर्वास्तिवादियों की दृष्टि को उसके मूलरूप में नहीं समझा है। उपाध्याय भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. १००८-९.

३. अप्रतिसंख्यानिरोध पद का जो अर्थ आचार्य शङ्कर ने किया है, वह वैसा ही निरोध है जो उत्तरोत्पाद में पूर्वनिरोध (२/२/२०) के रूप में कहा गया है। रामकृष्ण, आचार्य ब्रवैअ, पृ. २८२-८३.

स्वरूप को समझाने अथवा प्रतिपक्षी के मत का खण्डन करने के लिए है। वस्तुतः इसीलिए तर्क को श्रुतियों का अनुग्राहक माना गया है (श्रुत्यनुकूलस्तर्क एव हि तर्कः)।

शङ्कर दर्शन तर्क को स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में न मानकर श्रुतियों का अनुग्राहक मानता है। किन्तु अवैदिक दर्शन के प्रसङ्ग में आचार्य शङ्कर की तर्क-शैली की यह विशेषता है कि वे सर्वास्तिवाद का खण्डन करने के लिए प्रधानतः श्रुतियों का आश्रय नहीं लेते बल्कि श्रुति की पृष्ठभूमि से परे हटकर स्वतन्त्र तर्कों का प्रयोग करते हैं तथापि अपवादस्वरूप उन्होंने आकाश (२/२/२४) की अवधारणा के खण्डन हेतु श्रुति का उद्धरण भी दिया है।

शङ्कर यद्यपि क्षणभङ्गवाद के माध्यम से संघातवाद व परमाणुवाद का खण्डन व्यवहार में अथवा असङ्गति की व्याख्या कर सर्वास्तिवाद मत में स्वतः-व्याघात का प्रदर्शन करते हैं तथा उसे अप्रतिष्ठित घोषित कर देते हैं। किन्तु उनके इस प्रयास को अथवा उनकी उद्घोषणा को दर्शन के इतिहास की सर्वथा नवीन घटना नहीं माना जा सकता है क्योंकि उक्त अवधारणाओं की आलोचना न केवल बौद्धेतर दार्शनिकों^१ ने अपितु आचार्य से पूर्ववर्ती स्वयं विज्ञानवादी बौद्धाचार्य वसुबन्धु (विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि) व आचार्य नागार्जुन (माका) ने भी की है।

पक्ष यह है कि आचार्य शङ्कर ने क्षणभङ्गवाद में कार्यकारणभाव को असिद्ध बतलाया है। यद्यपि स्वयं शङ्कराचार्य केवल व्यवहारतः कार्यकारण की सत्ता स्वीकार करते हैं, परमार्थतः वह भी उसका निषेध ही करते हैं। तथापि सन्दर्भ विशेष में जो बात उल्लेखनीय है वह यह कि सर्वास्तिवाद साधारण रूप में प्रचलित कार्यकारण की सत्ता स्वीकार नहीं करता अपितु प्रतीत्यसमुत्पाद को स्वीकार करता है, इसके बावजूद क्षणभङ्गवाद के प्रति आचार्य शङ्कर की अधिकांश युक्तियाँ कार्यकारणभाव की पृष्ठभूमि से दी गई हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आचार्य शङ्कर ने सर्वास्तिवाद में मान्य असंस्कृत धर्मों के लक्षणों में नित्यता का उल्लेख नहीं किया था किन्तु खण्डनार्थ

आचार्य ने स्वपक्ष की तरफ से नित्यत्व का प्रसङ्ग उपस्थित कर, बौद्ध मत को परस्पर अयुक्त सिद्ध करने की चेष्टा की है।

संक्षेप में, आचार्य शङ्कर द्वारा सर्वास्तिवाद (क्षणभङ्गवाद) के विरुद्ध दी गई सम्पूर्ण युक्तियों का उद्देश्य व्यवहार के स्तर पर सिद्धान्त में असङ्गति का प्रदर्शन करना रहा है। तथापि इन सबकी पृष्ठभूमि में अप्रत्यक्षरूप से नित्य, चेतन ब्रह्मवाद भी अवस्थित है। क्योंकि ब्रह्मवाद अन्ततोगत्वा जगत् को भी सम्पूर्ण रूप से चेतन मानकर (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि की समस्याओं का समाधान भी स्वयं ही कर लेता है।

(ऐ) शङ्करपूर्व मीमांसक आचार्यों द्वारा विज्ञानवाद का खण्डन

विज्ञानवाद की समीक्षा अन्य बौद्ध सम्प्रदायों ने भी की है परन्तु इसकी व्यापक समीक्षा, वैदिक दर्शनाचार्यों ने विशेषतः कुमारिल भट्ट व आचार्य शङ्कर ने की है। कुमारिल ने श्लोकवार्तिक में विज्ञानवाद का पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए उसकी कतिपय प्रधान अवधारणाओं यथा- संवृतिसत्य, जाग्रतावस्था के पदार्थों की सत्ता, स्वप्न-ज्ञान का आधार, ज्ञान-वैचित्र्य की समस्या, वासना आदि के स्वरूप को असङ्गत और अव्यावहारिक बताया है तथा उसके खण्डन में कुछ युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं।^१ इस समस्त विश्लेषण का तात्पर्य यही है कि अन्ततोगत्वा विज्ञानवाद जिस दो प्रकार के सत्य (व्यावहारिक या सांवृतिक सत्य व पारमार्थिक सत्य) मानने के लिए बाध्य होता है, वह प्रयत्न भी क्षणभङ्गवाद अथवा विज्ञान की क्षणिकता के कारण युक्तियुक्त सिद्ध नहीं होता है।^२ एक अन्य युक्ति में जाग्रतावस्था में दृश्यमान जगत् की असत्यता को स्वप्न के द्वारा समझाने की आलोचना की गई है। स्वप्नावस्था का प्रतियोगी जाग्रतावस्था में विद्यमान रहता है। इसलिए स्वप्नावस्था को भले ही सत्य न माना जाए किन्तु जाग्रतावस्था का ऐसा कोई प्रतियोगी नहीं है। इसलिए स्वप्न का दृष्टान्त बाह्य-जगत् की पारमार्थिक असत्ता के प्रतिकूल है।^३ कुमारिल ने विज्ञानवाद के प्रसङ्ग में सबल आक्षेप उसी वासना को लेकर किया है, जो प्रायः सभी दर्शन-सम्प्रदायों की आलोचना का लक्ष्य रही है। वासना की कारणता को जब क्षणभङ्गवाद के सन्दर्भ में देखा जाता है तो

१. पृ. २१७-३६७.

२. तस्माद् यत्रास्ति नास्त्येव यस्त्वस्ति परमार्थतः।

तत्सत्यमन्यमिथ्येति न सत्यद्वय कल्पना।। श्लोकवार्तिक, श्लोक १०.

३. वही, निरालम्बनवाद, श्लोक ८८-९०.

इसके फलस्वरूप विज्ञान और वासना दोनों का अस्तित्व सिद्ध होने के स्थान पर संदिग्ध होने लगता है।^१ इस समस्त विवरण के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि सर्वास्तिवाद की तरह विज्ञानवाद की मान्यताओं में आलोचकों का सर्वाधिक दुर्बल पक्ष क्षणभङ्गवाद ही प्रतीत होता है। विज्ञान, विज्ञान-सन्तति, आलयविज्ञान, प्रवृत्तिविज्ञान, वासना, जगत् की संवृत्तिसत्यता इत्यादि सभी अवधारणाएँ क्षणभङ्गवाद की पृष्ठभूमि के कारण इसी विशाल प्रस्तर से टकरा कर चूर-चूर हो जाती हैं और सर्वास्तिवाद से हटकर विज्ञानवाद को मानने का सारा प्रयत्न धराशायी हो जाता है- ऐसा विज्ञानवाद-विरोधियों का मत है।

(ओ) विज्ञानवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य

आचार्य शङ्कर ने विज्ञानवाद के खण्डन में जिन पूर्वोक्त युक्तियों का प्रयोग किया है, उनका विश्लेषण करने पर उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (i) बाह्यार्थवाद के पक्ष से प्रस्तुत युक्तियाँ (ii) शङ्कर के पक्ष से प्रस्तुत युक्तियाँ।

विज्ञानवाद के विरुद्ध, बाह्यार्थवाद के पक्ष से कुल चार युक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इसमें से प्रथम दो युक्तियों का लक्ष्य, व्यवहार में विज्ञेय की सत्ता, आवश्यकता व उसकी उपयोगिता को सिद्ध करना है। तृतीय युक्ति, क्षणभङ्गवाद से सहोपलम्भ-नियम की असङ्गति को बताती है। चतुर्थ युक्ति में आचार्य का लक्ष्य, विज्ञानवाद में बाह्यार्थ के लिए प्रस्तावित स्वप्न के दृष्टान्त पर आपत्ति करना है।

भारतीय-दर्शन के अनेक अद्वैतवादी सम्प्रदाय^२ बाह्य जगत् की अनेकता, विविधता, उसके प्रादुर्भाव व विनाश की व्याख्या के लिए स्वप्न का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु स्वप्न के दृष्टान्त की इनकी व्याख्या, तत्त्वमीमांसानुसार पृथक्-पृथक् होती है। विज्ञानवादी आचार्य वसुबन्धु, **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि** में, बाह्यार्थ की विज्ञान-निरपेक्ष अथवा स्वतन्त्र सत्ता का निषेध करने के लिए स्वप्न का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस उदाहरण का लक्ष्य वस्तुतः विज्ञेय की अपेक्षा विज्ञान की प्रमुखता को दर्शाना है। जबकि आचार्य शङ्कर द्वारा स्वप्न के दृष्टान्त पर की गई आपत्ति का प्रयोजन यह बताना है कि जाग्रतावस्था (ज्ञान) से बाधित हो जाने पर स्वप्न (अज्ञान) मिथ्या सिद्ध हो जाती है। अतः स्वप्न-दृष्टान्त-सम्बन्धी

१. क्षणिकेषु च चित्तेषु विनाशे च निरन्वये।

वाच्यवासकयोश्चैवमसाहित्यान्न वासना।। श्लोकवार्तिक, श्लोक, १८२.

२. माण्डूका तथा शैव दार्शनिक साहित्य में भी स्वप्न का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

आचार्यद्वय के दृष्टिकोणों का भेद स्पष्ट परिलक्षित है तथापि आचार्य शङ्कर का यह तर्क चूंकि व्यवहार-पक्ष से दिया गया है इसलिए इसके विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि व्यवहार को विश्लेषित करने वाला मनोविज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि बिना स्थूल अवस्था (जाग्रतावस्था) के सूक्ष्म अवस्था (स्वप्नावस्था) नहीं आती है अर्थात् जाग्रतावस्था में देखे गए विषयों का संशोधित रूप स्वप्नावस्था है। इसलिए जाग्रतावस्था आने पर स्वप्नावस्था पूरी तरह बाधित या निःशेष हो गई, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शङ्कर जाग्रतावस्था अथवा उसके द्वैत (विषय) को परमार्थ-स्तर पर स्वीकार नहीं करते हैं। बल्कि उसे मिथ्या मानते हैं और इसीलिए उन्होंने दृष्टान्त सम्बन्धी एक अन्य युक्ति अपने दर्शन के पक्ष से भी प्रस्तुत की है। इस युक्ति का आशय वस्तुतः जाग्रतावस्था को असत्य सिद्ध करने के लिए दिए गए स्वप्न के दृष्टान्त की असङ्गति को बताना है। आचार्य के कथनानुसार, जाग्रतावस्था की तरह स्वप्न भी एक व्यावहारिक सत्य है। जाग्रतावस्था में जिस प्रकार द्वैत अथवा अनेकता दिखलाई पड़ती है, वहीं अनेकता स्वप्न में भी दृष्टिगत होती है तथापि स्वप्न में देखे गये विषयों की अनेकता का आधार स्मृति बनती है। किन्तु जाग्रतावस्था का ऐसा कोई आधार नहीं पाया जाता है।

सम्प्रति, जहाँ तक स्मृति का प्रश्न है तो बौद्ध दर्शन की तत्त्वमीमांसा में उसकी गणना अप्रमा की श्रेणी में की जाती है। दूसरे, शङ्कराचार्य ने स्वयं भी अपने दर्शन में ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को मात्र व्यावहारिक सत्य की ही संज्ञा दी है। अतः स्मृति की अवधारणा को शङ्कर वेदान्त में भी पारमार्थिक-स्तर पर स्वीकार नहीं किया गया है। प्रस्तुत कथन का आशय यह है कि परमार्थ-स्तर पर नित्य ज्ञाता व नित्य स्मर्ता के अभाव को दर्शनद्वय स्वीकार करते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी भी अद्वैतवाद में पारमार्थिक सत्य को समझाने के लिए दिया गया कोई दृष्टान्त कभी-भी पूर्ण नहीं हो सकता है; इन दृष्टान्तों की उपयोगिता मात्र द्रष्टा को पारमार्थिक सत्य की ओर उन्मुख करना है।

विज्ञानवाद के विरुद्ध अन्य युक्तियाँ भी आचार्य ने अपने दर्शन-पक्ष से प्रस्तुत की हैं। इनका प्रधान लक्ष्य बाह्यार्थ का खण्डन करना न होकर, विज्ञानवाद में प्रस्तावित विज्ञान के स्वरूप अथवा विज्ञान के आधार पर व्यवहार (जगत) के वैचित्र्य की व्याख्या पर आपत्ति करना है। वासना व विज्ञान का सम्बन्ध, वासना के लिए नित्य आश्रय की अपेक्षा अथवा आलयविज्ञान के स्वरूप पर आपत्ति आदि युक्तियाँ वस्तुतः उक्त प्रधान युक्ति की ही पूरक हैं।

प्रस्तुत आपत्तियों के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि योगाचार विज्ञानवाद, अचेतन पर चेतन की महत्ता का दर्शन है। इसके अनुसार इस विश्व में जितने भी हेतु-प्रत्यय से जनित संस्कृत-पदार्थ (बाह्यार्थ) हैं, उनका न तो कोई आलम्बन है और न कोई आलम्बन देने वाला है^१ वे निश्चित रूप से चित्तमात्र के आभास अथवा नानाकार परिणाम हैं। क्योंकि ये मानते हैं कि ग्राह्य-ग्राहक का भेद स्वीकार करने पर एक ग्राह्य के लिए दूसरा, दूसरे के लिए तीसरा... इस प्रकार अनवस्था-दोष उत्पन्न होगा। अतः विज्ञान को मानना ही पर्याप्त है। वही स्वयंसिद्ध, स्वयंप्रकाश है, बाह्य-विषय उसी के आभास है।

विज्ञानसन्तति को एक मानने पर जागतिक-वैचित्र्य की व्याख्या का जहाँ तक प्रश्न है तो यह कहा जा सकता है कि विज्ञानवाद, वासना व विज्ञान के बीच नित्य-नैमित्तिक भाव स्वीकार करता है तथा इसके आधार पर जगत् के वैचित्र्य की व्याख्या करता है। इसी प्रकार अनादि वासना में वैचित्र्य के कारण की अथवा हेतु रूप में वासना व विज्ञान में प्रमुखता की भी समस्या है और इस सन्दर्भ में, विज्ञानवाद यद्यपि कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे पाता है तथापि यही स्थिति शाङ्कर दर्शन में माया की है। शङ्कर भी अनादि माया के माध्यम से जगत् की व्याख्या करते हैं। किन्तु यह माया कहाँ से आई, क्या सृष्टि की पृष्ठभूमि में माया का अपना कोई प्रयोजन है, माया एक है अथवा अनेक आदि कई ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर अद्वैत वेदान्त के पास भी नहीं है। अर्थात् अनादि वासना व अनादि माया के सम्बन्ध में क्या, क्यों और कैसे जैसे प्रश्नों पर दर्शनद्वय मौन है।

वासनाओं के आश्रयरूप में आलयविज्ञान के स्वरूप पर आपत्ति का जहाँ तक प्रश्न है तो योगाचार-मत में, स्थापित आलयविज्ञान के स्वरूप व आचार्य शङ्कर द्वारा युक्तियों में प्रस्तुत आलयविज्ञान के स्वरूप की व्याख्या व लक्ष्य में भेद है। शङ्कर द्वारा आलयविज्ञान की आलोचना का लक्ष्य एक ओर विज्ञानवाद की इस विवशता को प्रदर्शित करना है कि नित्य आत्मा जैसे तत्त्व को माने बिना विज्ञानवाद भी स्वयं को अपूर्ण मानता है तथा दूसरी ओर यह प्रदर्शित करना है कि विज्ञानों की क्षणिकता में दोष व असङ्गति है। पूर्व पृष्ठों में भी स्पष्ट किया जा चुका है कि विज्ञानवाद, आलयविज्ञान को चेतनाओं का संघात मानता है तथा

१. विज्ञानवाद का विज्ञान आलम्बन बिना ही सिद्ध है। इस कारण विज्ञानवादी को निरालम्बनवादी भी कहा जाता है।

इनके स्वरूप की व्याख्या के लिए समुद्र का दृष्टान्त देता है।^१ समुद्र और उसकी तरङ्गों में कोई भेद नहीं है। यह विविध विज्ञानों का आश्रय होते हुए भी स्वयं अनाश्रय है।^२ अतः आचार्य शङ्कर द्वारा वासनाओं के आश्रयरूप में आलयविज्ञान के स्वरूप की कल्पना किए जाने को वस्तुतः विज्ञानवाद के पक्ष से न्यायोचित नहीं माना जा सकता है। इस युक्ति का एक अन्य संभावित पक्ष, आलयविज्ञान के स्वरूप को नित्य आत्मा के सदृश सिद्ध करना भी प्रतीत होता है। सम्प्रति, प्रथमतः आत्मा की तरह इसे नित्य नहीं मान सकते क्योंकि यह परिवर्तनशील चित्तवृत्तियों का प्रवाह है।^३ दूसरे, आलयविज्ञान के क्षणिक स्वरूप की उपेक्षा करके, इसे नित्य चिदात्मक, ब्रह्मस्वरूप मान भी लिया जाय तो शाङ्कर वेदान्त में ब्रह्म को निरधिष्ठान माना गया है। अतः सन्दर्भ विशेष में भी आलयविज्ञान के अधिष्ठान अथवा आश्रयरूप की कल्पना करना व्यर्थ है।

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्राभा में, बाह्यार्थवाद-खण्डनगर्भित विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः आचार्य इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय परस्पर भिन्न-भिन्न विचारधारा ही नहीं रखते अपितु उनमें बुद्ध-वचनों के वास्तविक आशय को लेकर गहरे मतभेद हैं तथा उसके आधार पर सहसम्प्रदायों में परस्पर खण्डन की प्रक्रिया भी विद्यमान रही है। शङ्कर ने सहसम्प्रदायों के इस आन्तरिक मतभेद को विज्ञानवाद के विरुद्ध आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। इस क्रम में सर्वप्रथम वेदान्त अथवा सिद्धान्त-पक्ष से कोई युक्ति न देकर, विज्ञानवाद द्वारा बाह्यार्थवाद के खण्डन में प्रयुक्त युक्तियों को प्रस्तुत किया गया है। दूसरे शब्दों में, इसे विज्ञानवाद की साधक युक्तियाँ कहा जा सकता है। युक्तियों के इस प्रस्तुतीकरण का आधार, विज्ञानवाद का प्रधान आधार ग्रन्थ-विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि है। युक्तियों के माध्यम से पूर्वोक्त पक्षों के सम्पूर्ण विवाद को तटस्थ-भाव से अत्यन्त संक्षेप, रोचक व प्रांजल भाषा में प्रस्तुत करना शङ्कर की खण्डन-शैली की विशेषता है।

आचार्य शङ्कर यद्यपि विज्ञानवाद को लक्ष्य कर जिन युक्तियों को प्रस्तुत करते हैं, वे स्वयं उनके मत के भी प्रतिकूल हैं। इस क्रम में, आचार्य ने सर्वप्रथम एक युक्ति के माध्यम से कारण परमाणु-को स्वरूपतः असिद्ध करते हुए उससे उद्भूत कार्य, संघात अथवा जगत् की अनुपपत्ति दर्शायी है। दूसरे शब्दों में, कार्य

१. लंकावतारसूत्र, २/११-१००.

२. त्रिंशिकाविज्ञप्तिभाष्य, कारिका, ३०.

३. वही.

का स्वरूप कारण पर निर्भर है अथवा कार्य की सिद्धि के लिए कारण की सिद्धि को आवश्यक माना गया है। किन्तु कार्य स्थूल व यथार्थ प्रत्यक्ष का विषय है जबकि कारण अनुमान का। प्रत्यक्ष और अनुमान में से प्रत्यक्ष प्रमाण को बलवत्तर माना जाता है। इसलिए बाह्यार्थ को स्वतःसिद्ध मानना पड़ेगा। जहाँ तक कारण की अनिश्चितता का अथवा उसकी अनिवार्यता का प्रश्न है; यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वयं-शाङ्कर दर्शन में भी माया की अनादि सत्ता मानी गई है। अर्थात् यहाँ भी माया बिना किसी कारण के उत्पन्न व नष्ट होती हुई दिखायी गई है। दूसरे शब्दों में, शङ्कर स्वयं जगत् की व्याख्या, माया की कात्पनिक सत्ता मानकर करते हैं। अतः “कार्यरूप बाह्यार्थ असिद्ध है क्योंकि कारण परमाणु के अस्तित्व की सिद्धि नहीं होती”, वस्तुतः आचार्य द्वारा प्रस्तुत यह युक्ति स्वयं शाङ्कर दर्शन के भी प्रतिकूल ही सिद्ध होती है।

अन्य युक्तियों के माध्यम से विज्ञान व विज्ञेय में भी विज्ञान की प्रमुखता को दर्शाया गया है। सम्प्रति, प्रमुख मानने का अर्थ गौण व सर्वथा तिरस्कार करना अथवा उसे असत् मानना नहीं है। विज्ञानवाद, चेतन विज्ञान की एकमात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार करता है। तथापि व्यवहार के स्तर पर बाह्यार्थ को विज्ञानाभास मानता है। अतः अस्तित्व को न मानना अथवा स्वरूप में परिवर्तन को स्वीकार करना वस्तुतः दो अलग-अलग पक्ष हैं। विज्ञानवाद व्यवहारतः बाह्यार्थ के अस्तित्व को असिद्ध नहीं मानता बल्कि उन्हें स्वरूपतः मनोविज्ञान का आभास स्वीकार करता है।

एक अन्य युक्ति के माध्यम से आचार्य ने संघात की तर्कसङ्गत व्याख्या न होने के कारण उपलब्ध संघात अथवा बाह्यार्थ के अस्तित्व का निषेध किया है। पुनः उल्लेखनीय है कि अस्तित्व की सिद्धि व स्वरूपतः विषय का निर्वचन, दो अलग-अलग समस्याएँ हैं। शङ्कर स्वयं भी ब्रह्म को अनिर्वचनीय मानकर उसकी पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार करते हैं। अतः वादी का दर्शन जिस पक्ष पर तर्क से स्वयं सहमत न हो, ऐसे पक्ष या तर्क की प्रतिवादी से अपेक्षा करना वस्तुतः सिद्धान्तपक्ष की ही दुर्बलता का प्रदर्शन करना है।

संक्षेप में, इन सारी युक्तियों का प्रधान निष्कर्ष यही निकलता है कि अचेतन की अपेक्षा चेतन का महत्त्व अधिक है तथापि इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि अचेतन असत् अथवा अनुपयोगी है।

(औ) शङ्करपूर्व मीमांसक आचार्यों द्वारा शून्यवाद का खण्डन

मीमांसक आचार्य कुमारिल ने श्लोकवार्तिक में पृष्ठ १९१-२४५ तक २६४ कारिकाओं में शून्यवाद का विवेचन किया है। आचार्य ने प्रस्तुत अध्याय का नाम यद्यपि 'शून्यवाद' रखा है तथापि इसके अन्तर्गत अन्य बौद्ध सम्प्रदायों व उनके सिद्धान्तों यथा- बाह्यार्थवाद, क्षणभङ्गवाद, विज्ञानवाद आदि की चर्चा भी की है। दूसरे शब्दों में, आचार्य कुमारिल की यह शैलीगत विशेषता है कि उन्होंने सर्वप्रथम विज्ञानवाद के खण्डन के लिए सौत्रान्तिक (बाह्यार्थवाद) मत को आधार बनाया तथा बाह्यार्थ के महत्त्व की सिद्धि की तत्पश्चात् शून्यवाद के सन्दर्भ में यह कहा कि यह सम्प्रदाय विशेष बाह्य शून्यता को मानता है, अतः यह मत स्वीकार्य नहीं है।^१ शून्यता का अर्थ यहाँ अभाव है।^२

शून्यवाद के खण्डन के लिये कुमारिल का तर्क है- विषय की सत्ता नहीं है तो ज्ञान का आकार और उसकी विविधता की व्याख्या करना भ्रान्ति मात्र है।^३ आशय यह है कि शून्यवादी, ज्ञान की उत्पत्ति व उपलब्धि को एकसाथ मानते हैं किन्तु यह युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि बिना विषय के ज्ञान में आकार भी नहीं आएगा।

इस सम्पूर्ण विश्लेषण का आशय यही है कि मीमांसक, बाह्यार्थ के बिना विज्ञान अथवा ज्ञान की सत्ता भी सिद्ध नहीं मानते हैं और शून्यवाद बाह्यार्थ और विज्ञान दोनों का तिरस्कार करता है, इसलिए अभाववादी है।

(अं) शून्यवाद के विरुद्ध शङ्कर की युक्तियों का वैशिष्ट्य

आचार्य शङ्कर ने ब्रसूशाभा में शून्यवाद पर दो प्रधान आपत्तियाँ की हैं- (i) शून्य का स्वरूप किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है (ii) शून्यवाद लोकव्यवहार का निषेध करता है।

उक्त दोनों आपत्तियों के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि दर्शन व्यवहार से जीवन ग्रहण करता है और उसे परार्थोन्मुख बनाता है। इसीलिए दर्शन विशुद्ध परमार्थ का चिन्तन होने के बाद भी व्यवहार की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता। आचार्य नागार्जुन ने, शून्यवाद अथवा अद्वयवाद में इसी सत्य को धाटित

१. एवमाद्यप्रमाणाभ्यां न तावद् बाह्यशून्यता, शून्यवाद परिच्छेद कारिका, २५९.

२. (a) तस्मादभावगम्यत्वं शून्यतायाः स्थितं हि नः, श्लोकवार्तिक, १८.

(b) एवं प्रमाणोऽसिद्धा यैः प्रमेयाश्रयोच्यते, वही, कारिका, २६१.

३. तस्मादर्थस्य संवित्तिः पूर्व यत्नेन साध्यते। वही, कारिका २४१.

किया है। आचार्य ने एक ओर अपने दर्शन में संवृत्ति-सत्य को स्वीकार कर व्यवहार के स्तर पर जहाँ प्रमाण-प्रमेय व्यवस्था की महत्ता को मान्यता दी है। वहीं दूसरी ओर संवृत्ति-सत्य के इस स्वरूप में (प्रमाण-प्रमेय व्यवस्था से) सर्वथा परे, परमार्थ अथवा तथाकथित शून्य को बताया है। आशय यह है कि शून्यवाद के सन्दर्भ में उक्त दोनों आपत्तियाँ निराधार सिद्ध होती हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि आचार्य शङ्कर स्वयं भी अपने दर्शन में ब्रह्म की प्रमाणातीतता को स्वीकार कर, जगत् की पारमार्थिक सत्ता को नहीं मानते हैं। अतः सिद्धान्तपक्ष से भी शून्यवाद पर की गई ये आपत्तियाँ दुर्बल सिद्ध होती हैं।

४. समीक्षा

पूर्व पृष्ठों में शारीरकभाष्य में समागत बौद्ध सन्दर्भों का पारिभाषिक शब्दों, अवधारणाओं और युक्तियों के माध्यम से विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके अनन्तर बुद्ध और बौद्ध सम्प्रदायों के प्रति शङ्कर के दृष्टिकोण पर विचार किया गया और विवादित समस्याओं और युक्तियों के सविस्तर विश्लेषण का प्रयत्न किया गया। इस समस्त प्रस्तुतीकरण का प्राथमिक निष्कर्ष यही है कि आचार्य शङ्कर ने बौद्ध दार्शनिक विचारधारा को महत्त्व तो अवश्य दिया है। पूर्वपक्ष के रूप में उसे प्रस्तुत करते हुए सयुक्तिक विस्तार भी दिया है और यह समस्त प्रयत्न न केवल वेदान्त की दृष्टि से अपितु बौद्ध दृष्टि से भी ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण है। जिस प्राञ्जल और सुस्पष्ट भाषा-शैली में समस्याओं और युक्तियों को प्रस्तुत किया गया है, वह भी एक दुर्लभ प्रकरण बन गया है तथा ऐसा प्रयत्न आचार्य शङ्कर जैसे दार्शनिक व सिद्ध शैली के आचार्य के द्वारा ही सम्भव है।

आचार्य शङ्कर के बौद्ध सन्दर्भों को इतिहास-निरपेक्ष दृष्टि से देखना उचित नहीं है। इसके विपरीत यही आवश्यक है कि उपर्युक्त सन्दर्भों को बौद्ध और वेदान्त के ऐतिहासिक सम्बन्ध की पृष्ठभूमि में देखा जाय। ब्रह्म ने बौद्ध दर्शन पर विचार करके जो शुभारम्भ किया था और गौडपाद ने जिसको सुनिश्चित दिशा दी थी, उसे शङ्कर ने चरम पर पहुँचाया, अन्तर्गर्भित-साम्य और वैषम्य को रेखाङ्कित किया, बहुत कुछ कहकर समझाया तथा इससे भी अधिक लक्षणा, व्यंजना के द्वारा अभिव्यक्त किया अर्थात् न कहकर कहा। उनके विवरण ने दोनों विचारधाराओं की तुलना, परस्पर प्रभाव और योगदान पर विचार और अनुसन्धान के ऐसे अगणित द्वार खोल दिए, जिनके फलस्वरूप आज भी विचारक और अनुसन्धाता इस पक्ष

पर बौद्धिक व्यायाम में संलग्न हैं। यह प्रश्न भिन्न है कि बौद्धों ने वेदान्त से क्या लिया और कितना लिया तथा वेदान्त को क्या और कितना दिया? यह आरम्भ से अद्यावधि विवाद का विषय रहा है और आगे भी रहेगा। किन्तु यह निश्चित है कि आचार्य शङ्कर ने वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्धों को अभिनव आयाम देकर अपना स्वर्णिम योगदान दिया है। दोनों विचारधाराओं के सम्बन्ध पर कोई भी विचार शङ्कर के बिना अधूरा है। जिस तरह से शङ्कर ने जगत् को पारमार्थिक सत्य न मानकर भी उसे महत्त्व दिया है, माया से ब्रह्म को सर्वथा अप्रभावित रखते हुए भी जगत् की व्याख्या की है। उसी प्रकार अपने सिद्धान्त और उसको अभिव्यक्त करने की शैली में बौद्ध विचारधारा को आत्मसात् करते हुए भी बाह्यरूप में उसके प्रति अपनी असहमति को अत्यन्त चतुराई और प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत किया। यह शैली आचार्य शङ्कर के ही वश की बात थी।

वेदान्त और बौद्ध की भाँति ही आचार्य शङ्कर के साथ बौद्धों के सम्बन्ध भी कतिपय ऐतिहासिक विवादों से घिरे हुए हैं। इसमें सर्वोपरि एक विवाद है- **प्रच्छन्न बौद्ध** का। आचार्य शङ्कर पर बौद्धों के प्रभाव के आरोप का सर्वथा तिरस्कार करने वालों के लिए यह तथ्य कम दुखद नहीं है कि स्वयं वेदान्त-सम्प्रदाय के आचार्य^१ ने ही शङ्कर पर **प्रच्छन्न बौद्ध** होने का आरोप लगाया। ऐसे प्रसङ्ग, प्राचीन ग्रन्थों में दुर्लभ हैं, जिनमें बौद्धों ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया हो कि वेदान्त पर बौद्ध विचारधारा का प्रभाव है। किन्तु प्राचीन और अर्वाचीन लेखकों के ग्रन्थों के पृष्ठ इस आरोप से भरे पड़े हैं जिनमें वेदान्त पर बौद्धों के प्रभाव को दर्शाया गया है।

पाठक^२ और शर्मा^३ ने आरोप के पक्ष में तथा उपाध्याय^४ और

१. श्री रामानुज ने शङ्कराचार्य को वेदवादच्छद्म प्रच्छन्न बौद्ध कहा है। वेदवादच्छद्म प्रच्छन्न-बौद्धनिराकरणनिपुणं प्रपञ्चितम्। श्रीभाष्य, २/२/२७.
२. शङ्कर प्रच्छन्न-बौद्ध नहीं है क्योंकि कई दृष्टियों से शङ्कर के विचार बौद्धों से भिन्न हैं। यथा- बौद्ध दार्शनिक 'अर्थ-क्रियाकारित्वलक्षणं सत्' कहकर परिवर्तनशीलता को सत्ता का लक्षण कहते हैं जबकि शङ्कर 'त्रिकालाबाधित्वं लक्षणं सत्' कहकर सत्ता को अपरिवर्तनशील मानते हैं; शून्यवाद जगत् को असत् मानता है शङ्कर इसकी व्यावहारिकसत्ता को स्वीकार करते हैं आदि। राममूर्ति, भादस, पृ. १७०-१७१.
३. बौद्ध दर्शन के प्रस्थापक और अद्वैतवादी आचार्य शङ्कर दोनों ने उपनिषद् रूपिणी माता का स्तन्यपान किया था। अतः दोनों के सिद्धान्तों में समानता होना स्वाभाविक है, परन्तु इस समानता के आधार पर शङ्कर को प्रच्छन्न बौद्ध कहना कदापि सङ्गत नहीं है। राममूर्ति, अवेदा, पृ. ३३९.
४. ब्रह्म को शून्यत्व की ओर ले जाने के कारण व आत्मा को शाश्वत विज्ञान का रूप देने के कारण शङ्कर प्रच्छन्न या प्रकट बौद्ध थे। भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, II, पृ. १०४५.

दासगुप्ता^१ ने विपक्ष में अपने मत प्रकट किये हैं।

T.M.P. Mahadevan ने अपने लेख *Vedanta and Buddhism*^२ में प्रच्छन्न बौद्ध विषयक समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि- दर्शनों में परस्पर समानता होना स्वाभाविक है और केवल समानता मात्र के आधार पर ही एक दर्शन को दूसरे का प्रच्छन्न रूप नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दर्शनों का दर्शन होना ही समानता का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। इसलिए अद्वैत वेदान्त और बौद्ध प्रत्ययवाद में कुछ समानताएँ होना मात्र ही अद्वैत वेदान्त की प्रच्छन्न बौद्धता है। किन्तु इसका तात्पर्य यदि यह है कि अद्वैत वेदान्त उसी सत्य का प्रतिपादन करता है जिसका विज्ञानवाद और शून्यवाद ने किया था तथा अद्वैत वेदान्त उप के आत्मा और ब्रह्म को वैसा ही मानता है जैसा बौद्ध दर्शन विज्ञान या शून्य को मानता है, तो यह आरोप अनुचित, असत्य और अस्वीकार्य है।

शङ्कर शून्य का अर्थ असत् मानते हैं किन्तु यह अर्थ मानने वाले वे एकमात्र दार्शनिक नहीं हैं। सम्पूर्ण आस्तिक परम्परा ही ऐसा मानती है। द्वैत वेदान्तियों ने शङ्कर के निर्गुण ब्रह्म में शून्यवादियों के 'शून्य' से समानता देखी और उन पर प्रच्छन्न बौद्ध होने का आरोप लगाया। जहाँ तक गौडपाद का प्रश्न है कि क्या उन्होंने बौद्धों के प्रत्ययवाद को अपने दर्शन में स्थान दिया? इस प्रश्न के उत्तर में T.M.P. महादेवन^३ का अधोलिखित मन्तव्य द्रष्टव्य है :-

What Gaudapada has really borrowed from Buddhist Idealism, in my view, is some of the latter's terminology and technique of argument...But his purpose in so doing is, it seems to me not to commend Buddhism to his followers, but to establish the conclusions of Vedanta as indisputable truths... it is that the exigencies of his time should have compelled him to use Buddhistic terminology...

वास्तव में गौडपाद और शङ्कर दोनों ने बौद्ध दर्शन के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाए। गौडपाद, विज्ञानवाद और शून्यवाद का स्पष्ट समर्थन करते

१. लेखक ने विज्ञानभिक्षु आदि प्रच्छन्न बौद्धवादियों के मत का अनुसरण करते हुए शङ्कर को प्रच्छन्न बौद्ध बतलाया है तथा उनके दर्शन को उप आत्मा की शाश्वतता के साथ बौद्ध विज्ञान एवं शून्यवाद का मिश्रण कहा है। S.N., *Indian Philosophy*, I, p. 403.

२. p. १३.

३. वही, *Vedanta and Buddhism*, p. 20.

हैं तथा दोनों दार्शनिक चिन्तन-परम्पराओं में साम्य पर विशेष बल देते हैं, इसलिए वे **प्रकट-बौद्ध** माने जा सकते हैं। जबकि शङ्कर, बौद्ध विचारधारा से विरोध के पक्ष को प्रबल मानते हैं और साम्य के प्रति सर्वथा मौन धारण करते हैं। अतः निरपेक्षता से देखने पर गौडपाद और शङ्कर दोनों का दृष्टिकोण बौद्ध के प्रति एकाङ्गी मालूम होता है। आवश्यकता यह थी कि गौडपाद, साम्य के साथ साथ वैषम्य का भी उल्लेख करते तथा शङ्कर, वैषम्य के साथ ही साथ साम्य भी बताते। क्योंकि वस्तुस्थिति यही है कि इन दोनों दर्शन-सम्प्रदायों में साम्य और वैषम्य दोनों ही सबलरूप से विद्यमान हैं। इसलिए केवल साम्य अथवा वैषम्य की बात करना और उसके आधार पर एक दर्शन को दूसरे दर्शन का ऋणी बताना अथवा परस्पर प्रच्छन्नता का आरोप लगाना, न्यायोचित नहीं कहा जा सकता।

आचार्य शङ्कर बौद्धों की आलोचना करते हुए और यही क्यों, अन्य सभी दर्शन सम्प्रदायों की आलोचना करते हुए वेदान्तिक विचारधारा के प्रति अपने दृढ़ आग्रह को नहीं छोड़ते हैं तथापि उनके अपने सम्प्रदाय के विरोधी ही यदि उन पर ऐसा आरोप लगाते हैं तो इसे सत्य मानना और न मानना दोनों ही विडम्बना के पक्ष हैं।

प्रच्छन्न बौद्ध के आरोप के अतिरिक्त शङ्कर की प्रशंसा में उनके योगदान के अध्येता^१ और अनुयायी जिस कार्य का उन्हें श्रेय देते हैं वह है- बौद्धों का भारत से सर्वथा निष्कासन अथवा उसकी समाप्ति। कुछ विशेष ज्ञात-अज्ञात कारणों से विचारक शङ्कर को बौद्धों के परम विरोधी के रूप में प्रचारित करते हैं तथा अपनी जन्मभूमि से ही बुद्ध-मत को सर्वथा ध्वस्त करने का श्रेय शङ्कर को देते हैं किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण और कतिपय विद्वानों के निष्कर्ष इसका समर्थन नहीं करते हैं अर्थात् यह पक्ष निर्विवाद नहीं है। क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से शङ्कर का प्रधान मल्ल सांख्य है- ऐसा स्वयं उनका भाष्य मानता है। इसके साथ ही शङ्कर के प्रादुर्भाव के बाद भी बौद्ध मत का साहित्य लिखा गया और उसका विकास हुआ।

लेखकों ने इसी प्रवाह में एक अन्य कार्य का श्रेय शङ्कर को दिया है, वह है- वैदिक अथवा वेदान्तिक-विचारधारा का पुनरुद्धार। किन्तु यह भी निर्विवाद

१. (a) सातवीं-आठवीं शती में प्रादुर्भूत आचार्य शङ्कर ने अपने ज्ञानकाण्ड की महत्ता बढ़ायी जिसे बौद्ध धर्म सह न सका और धीरे-धीरे यह भारतवर्ष छोड़कर अन्य देशों में फैलने लगा। शर्मा, राजगोपाल, आद्य श्री शंकराचार्य : आविर्भाव काल, पृ. ३.
- (b) अष्टम शतक में शान्तरक्षित के बाद शङ्कराचार्य हुए। उन्होंने बौद्ध दर्शन जो अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा था, को समाप्त कर दिया। शर्मा, चन्द्रधर, बौवे, पृ. २२६.

नहीं माना जा सकता।^१

बौद्ध मत और शङ्कर के विषय में एक अन्य विवाद अध्येताओं में प्रचलित है और वह यह कि शङ्कर ने बौद्धों से बहुत कुछ प्रभाव लिया किन्तु इस प्रसङ्ग में अधिक वाद-विवाद में यहाँ न जाकर प्रसङ्गानुसार केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आदान-प्रदान भारतीय-चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता है और इसका प्रभाव धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार इत्यादि में सहज ही देखा जा सकता है।

कतिपय विचारक^२ समस्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा करते हुए तथा निष्कासन और प्रभाव के विवादों से परे हटकर दोनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की तटस्थता से तुलना करते हैं और केवल तुलना की सीमा में गुण-दोषों का विवेचन करते हैं और साधक-बाधक युक्तियों का मूल्याङ्कन करते हैं। किन्तु पृष्ठभूमि से निरपेक्ष ऐसे तुलनात्मक अध्ययनों को प्रामाणिक मानने में संकोच होता है।

बौद्ध हो या अबौद्ध, दार्शनिक विवाद का प्रधान बिन्दु चेतन व अचेतन की प्रधानता के पक्ष को लेकर रहा है। शङ्कर दर्शन पूर्णतया नित्य चेतनवाद पर आधारित है। शङ्कर दर्शन से सर्वथा विलक्षण मान्यता सर्वास्तिवाद की है। यह सम्प्रदाय न सिर्फ चेतन व अचेतन को समान महत्त्व देता है अपितु पारमार्थिक स्तर पर इनके क्षणिकत्व को भी स्वीकार करता है। दूसरे शब्दों में, यह क्षणिकता अथवा क्षणभङ्गवाद की अवधारणा सर्वास्तिवाद की तत्त्वमीमांसा की पहिचान है।

१. (a) अधर्म, अवैदिक पाखण्डप्रधान अनाचारपूर्ण मतों का नाश करने, जीर्ण हुए वैदिक मत का उत्थान करने, वैदिक धर्म की विजय-वैजयन्ती फहराने अथवा अद्वैत मत का पुनः प्रचार करने के लिए आचार्य शङ्कर ने जन्म लिया। शर्मा, राजगोपाल, आद्य श्री शंकराचार्य : आविर्भावकाल, पृ. ३.

(b) आचार्य शङ्कर के सम्मुख महती समस्या थी- बौद्ध सिद्धान्तों का निराकरण कर वैदिक मत की स्थापना करना। शास्त्री, उदयवीर, वेदइ, पृ. ६४.

२. (a) बहुज्ञ समालोचक राहुल सांस्कृत्यायन ने शङ्कर मायावाद को नागार्जुन के शून्यवाद का ही नामान्तर मात्र कहा है। दर्शन दिग्दर्शन, पृ. ८२०.

(b) शङ्कर के ऊपर विज्ञानवाद का प्रभाव दिखाना भी अनुचित है। क्योंकि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। शङ्कर का ब्रह्म या आत्मा एक नित्य तत्त्व है जबकि विज्ञानवादियों का आलयविज्ञान सतत परिणामी है। विज्ञानवाद आत्मख्याति को मानता है, किन्तु शङ्कर अनिर्वचनीयख्याति का प्रतिपादन करते हैं। विज्ञानवाद ज्ञान को सारूप्य मानता है, शङ्कर इसे तादात्म्य कहते हैं। पाठक, राममूर्ति, भादस, पृ. १७१.

ब्रह्मसूत्रकार व इसके भाष्यकार आचार्य शङ्कर ने सर्वास्तिवाद की आलोचना के प्रसङ्ग में, क्षणभङ्गवाद नामक इसी आधारभूत मान्यता को अपना लक्ष्य बनाया है। यहाँ आचार्य शङ्कर जहाँ एक ओर ब्रह्म में निहित तात्पर्य को भाष्य की परिभाषानुसार विस्तार से प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वसिद्धान्त अर्थात् नित्यतावाद के सर्वथा विरोधी सिद्धान्त के रूप में क्षणभङ्गवाद की अवधारणा को ध्वस्त करने का उनका लक्ष्य भी स्वतःसिद्ध (इष्टसिद्धि) हो जाता है। संक्षेप में, क्षणभङ्गवाद की अवधारणा एक ऐसा बिन्दु है जो अद्वैतवेदान्त की तत्त्वमीमांसा व सर्वास्तिवाद की तत्त्वमीमांसा में भेद स्थापित करता है।

क्षणभङ्गवाद के अतिरिक्त, सर्वास्तिवाद का एक पक्ष ऐसा भी है जो शङ्कर वेदान्त की तत्त्वमीमांसा का सर्वथा विरोधी न होकर आंशिक सहमति रखता है। यह पक्ष है- बाह्यार्थ की सत्यता अथवा व्यवहार के स्तर पर द्वैत की मान्यता। आचार्य शङ्कर व्यावहारिक सत्य के रूप में बाह्यार्थ की सत्ता को स्वीकार करते हैं और यही कारण है कि उन्होंने विज्ञानवाद के खण्डन के सन्दर्भ में बाह्यार्थवाद के पक्ष से युक्तियाँ दी हैं। उक्त कथन का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि आचार्य शारीरकभाष्य में सांख्य का उल्लेख, प्रधान मल्ल के रूप में करते हुए भी उसके सत्कार्यवाद को व्यवहार के स्तर पर स्वीकार करते हैं। एकाकी अचेतन से सृष्टि सम्भव नहीं है- की यह समस्या सांख्य व सर्वास्तिवाद में समान है किन्तु प्रसङ्ग विशेष में दर्शनतः आचार्य के दृष्टिकोण पर अथवा उनके द्वारा दी गई खण्डनात्मक युक्तियों का विश्लेषण किया जाता है तो निष्कर्ष रूप में यह कहना पड़ता है कि शङ्कर द्वारा सांख्य के सन्दर्भ में किया गया इस विचार अथवा तर्क की सूक्ष्मता अपेक्षाकृत सर्वास्तिवाद के कहीं अधिक निकट है। दूसरे शब्दों में, अचेतन से चेतन की उत्पत्ति की इस समस्या पर शङ्कर न तो नित्य अचेतन कारण को स्वीकार करते हैं और न ही क्षणिक अचेतन कारण को मान्यता देते हैं। यहाँ तक कि नित्य अथवा क्षणिक चेतन कारण भी इन्हें स्वीकार्य नहीं है। आशय यह है कि यद्यपि शङ्कर स्वयं परमार्थ-स्तर पर कार्यकारणभाव को स्वीकार नहीं करते हैं तथापि प्रतिपक्षी सम्प्रदाय में ही पक्ष विशेष को लेकर असङ्गितियाँ दिखाना, उनकी शैली का एक आयाम ही माना जा सकता है।

ब्रसूशाभा में विज्ञानवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए आचार्य शङ्कर ने दिङ्नाग और धर्मकीर्ति की रचनाओं से साक्षात् सन्दर्भ लिए हैं। इन दोनों आचार्यों का काल और कृतित्व शङ्कर से पूर्ववर्ती है। उदयवीर शास्त्री^१ ब्रसू २/२/२८ में प्रयुक्त सूत्रांश 'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तत्' को दिङ्नाग-विरचित आलम्बनपरीक्षा से उद्धृत मानते हैं। इसी प्रकार इसी सूत्र के भाष्य में उल्लिखित सहोपलम्भ-नियमादभेदः को धर्मकीर्ति की रचना से उद्धृत मानते हैं।^२ शास्त्री^३ का ही मत है कि विषयविज्ञान के सहोपलम्भनियम का सिद्धान्त धर्मकीर्ति के काल से पहले बौद्ध दर्शन में ही विद्यमान नहीं था अपितु अन्य परम्पराओं में भी यह पद चर्चा का विषय रहा है। अतः यह सम्भव है कि अन्य परम्परा से प्राप्त पदों का इस आनुपूर्वी बौद्ध साहित्य में सर्वप्रथम उल्लेख धर्मकीर्ति ने किया हो तथा शङ्कर ने भी धर्मकीर्ति का अनुमोदन न कर पूर्व-परम्परा के आधार पर पद विशेष का विवेचन किया हो- यद्यपि लेखक स्वयं अपने इस मत के प्रति सुनिश्चित नहीं है। इसलिए इस मत के प्रति उनका विशेष आग्रह भी नहीं है।

चन्द्रधर शर्मा^४ ने शङ्करकृत विज्ञानवाद के खण्डन पर कतिपय टिप्पणियाँ की हैं। इसके अनुसार विज्ञानवाद का यह खण्डन मूल विज्ञानवाद व स्वतन्त्रविज्ञानवाद दोनों पर लागू होता है क्योंकि दोनों ही व्यवहार में विज्ञानवादी हैं और लोकव्यवहार का व्यर्थ में निषेध करते हैं।

शर्मा ने ही अपने अन्य ग्रन्थ^५ में अन्तर्ज्ञेयरूप की ही बहिर्वत् प्रतीति होती है (ब्रसूशाभा, २/२/२८) पर शङ्कराचार्य की टिप्पणी को, मनोवैज्ञानिक वस्तुवाद से प्रेरित दृष्टिकोण माना है। यदि इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया जाता है तो अनुभव-सिद्ध एवं सर्वप्रमाणसिद्ध बाह्य-पदार्थों का किसी भी प्रकार अपलाप नहीं किया जा सकता।

१. दिङ्नाग की आलम्बनपरीक्षा से भी शङ्कर ने 'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तत्' इस वचन का उद्धार किया है (२/२/२८)। वेदङ्ग, पृ. ३५३.

२. सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतन्त्रियोः।

भेदश्च भ्रान्तविज्ञानैर्दृश्येतेन्द्राविवाद्भ्यो।।

इस श्लोक की प्रथम पंक्ति धर्मकीर्ति के प्रमाणविनिश्चय तथा दूसरी प्रमाणवार्तिक (२/३८९) में मिलती है, वही, पृ. ३५२.

३. वही, ३५७.

४. भारतीय दर्शन का आलोचन व अनुशीलन, पृ. २९१.

५. बौध्, पृ. १४०.

शर्मा की प्रथम टिप्पणी से सहमति व्यक्त करना कठिन है क्योंकि यदि विज्ञानवाद अथवा स्वतन्त्रविज्ञानवाद, लोकव्यवहार का सर्वथा निषेध करता तो आचार्य दिङ्गनाग द्वारा समारब्ध और धर्मकीर्ति के द्वारा शिखर पर पहुँचाई हुई बौद्ध प्रमाणमीमांसा का जन्म ही नहीं होता। बौद्ध प्रमाणमीमांसा, विज्ञानवाद को पारमार्थिक दृष्टि से अन्तर्गर्भित करते हुए जिस प्रकार के सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है उससे व्यवहार-दृष्टि की ही पुष्टि होती है। विज्ञानवाद के लिए प्रचलित अन्य नाम योगाचार भी उसकी व्यावहारिकता को उजागर करता है। शर्मा^१ ने अपनी टिप्पणियों के अन्त में शङ्करकृत विज्ञानवाद के खण्डन को इसलिए महत्त्वहीन बता दिया है कि किसी न किसी रूप में स्वयं शङ्कराचार्य भी उन सिद्धान्तों से सहमत हैं।

विज्ञानवाद के विरुद्ध शङ्कर की सबसे बड़ी आपत्ति विज्ञान की क्षणिकता और विज्ञान-सन्तति की व्यष्टिरूपता है। जहाँ तक क्षणिकता और नित्यता का प्रश्न है, वेदान्त और बौद्ध सम्प्रदायों में यह भेद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आचार्य शङ्कर, सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में क्षणिकता का खण्डन करते हुए अपनी दृष्टि से पर्याप्त युक्तियाँ दे चुके थे, इसलिए विज्ञानवाद के प्रसङ्ग में उन्होंने इस पक्ष की अपेक्षा विज्ञान की व्यष्टिरूपता पर अधिक आक्षेप किए हैं। विज्ञानवाद जिस आलयविज्ञान को (क्षणिक) विश्वात्मा अथवा समष्टि की दृष्टि से प्रस्तुत करता है, उससे शङ्कर इसलिए संतुष्ट नहीं हैं कि अन्ततोगत्वा वह भी क्षणिकता से आक्रान्त है इसलिए विश्वात्मरूप या समष्टिगत चैतन्य जैसी कोई अवधारणा विज्ञानवाद में संभव नहीं है और शङ्कर की दृष्टि से यदि देखें तो ऐसे नित्य विश्वात्मा को माने बिना परमार्थ और व्यवहार की सुसङ्गत व्याख्या सम्भव नहीं है। विज्ञान-सन्तति जीव के स्तर तक रह जाती है और आलयविज्ञान में क्षणिकता के कारण, वह सामर्थ्य नहीं कि वह एक, नित्य और विभु ब्रह्म के स्वरूप का स्पर्श कर सके। दोनों विचारधाराओं का यह मतभेद आधारभूत है और इसे दूर करने का प्रयत्न इन विचारधाराओं की स्वतन्त्र पहिचान को ही समाप्त कर देना है।

उक्त विवेचन के सन्दर्भ में शाभा की शैली का यह पक्ष उद्घाटित होता है कि विज्ञानवाद से सर्वथा विरोध न रखते हुए भी वे उसमें विज्ञान की नित्यता को पारमार्थिक स्तर पर न मानने की दुस्साहसिकता से कदापि सहमत नहीं हैं। इस प्रसङ्ग में भरत सिंह उपाध्याय^२ की टिप्पणी इसी भाव का समर्थन करती है।

१. बौवे, १४५.

२. सबसे बड़ी बात जो शङ्कर के प्रत्याख्यानों में हम देखते हैं वह यह है कि... यदि स्थिर आत्मतत्त्व की विद्यमानता हम बौद्ध दर्शन की प्रतिष्ठा में न मानें तो उसका कोई भी सिद्धान्त पृथ्वी पर गिरे बिना नहीं रहता। बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. १०००.

भारतीय दार्शनिक परम्परा में अविद्या की अवधारणा के विकास का इतिहास और तत्त्व दृष्टि से अध्ययन करने वाली विदुषी Soloman² को शङ्करकृत विज्ञानवाद का खण्डन इसलिए रोचक प्रतीत होता है कि यहाँ शङ्कर स्वयं को दृढ़ वस्तुवादी के रूप में प्रस्तुत करते हैं और पाठक भी उनकी युक्तियों के प्रभाव से यह समझने लगता है कि शङ्कर, बाह्य जगत् को सत्य मानते हैं। वस्तुतः विज्ञानवाद और शाङ्कर वेदान्त दोनों ही बाह्य जगत् के प्रति एक-सा दृष्टिकोण रखते हैं किन्तु इसको अभिव्यक्त करने की पदावली भिन्न-भिन्न है। एक उसे मायाजनित व्यावहारिक सत्य कहता है तो दूसरा उसे विज्ञान का आभास अथवा उसकी मनोवैज्ञानिक सत्ता मानता है। दोनों का पारमार्थिक सत्य व्यवहार से भिन्न है।

विज्ञानवाद और शङ्कर के मतभेदों को अभिव्यक्त करने वाला एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु वासना और माया है। शङ्कर की माया जगत् के आभास के लिए उत्तरदायी होने के कारण तत्त्वमीमांसीय अवधारणा है किन्तु इसके साथ ही वह अध्यास के लिए उत्तरदायी होने के कारण प्रमाणमीमांसीय स्वरूप भी रखती है जबकि विज्ञानवाद की वासना, अज्ञान की भूमिका में नहीं है। वह विज्ञानाभास के कारण तत्त्वमीमांसीय स्वरूप में अवतरित होती है।³

शाङ्कर वेदान्त और विज्ञानवाद के मतभेदों का एक अभिव्यञ्जक पक्ष स्वप्नावस्था और जाग्रतावस्थाओं का है। योगवासिष्ठ और गौडपादकारिका में स्वप्नावस्था व जाग्रतावस्था के अनुभवों को अलग-अलग माना गया है। किन्तु शङ्कर ने अपनी दर्शन-दृष्टि के अनुकूल इनकी अवधारणाओं में संशोधन किया है। इस संशोधन को Soloman³ शङ्कर का विशेष योगदान मानती है। जहाँ तक विज्ञानवाद का प्रश्न है, आचार्य वसुबन्धु ने भी इन अवस्थाओं का उल्लेख किया है तथा उनकी दृष्टि भी स्वप्नावस्था के माध्यम से जाग्रत् व सुषुप्ति अवस्थाओं को समझने की रही है। इस प्रसङ्ग में Soloman⁴ ने एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला है। इसके अनुसार शङ्कर की यह मान्यता कि जब तक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह जगत् व्यवस्थित जाग्रत् अवस्था की तरह सत्य है, स्वप्न की तरह असत्य नहीं। ये दोनों दृष्टिकोण, जगत् को व्यावहारिकदृष्टि

१. Avidya-A problem of Truth and Reality, p. 242.

२. Ibid

३. Ibid, p. 244.

४. Ibid, p. 245.

से सत्य व पारमार्थिक-दृष्टि से असत्य बताते हैं और इस व्याख्या के कारण शङ्कर, नागार्जुन की दो सत्यों की अवधारण के निकट पहुँच जाते हैं तथा इसकी पुष्टि परवर्ती शून्यतावादी आचार्य चन्द्रकीर्ति व शान्तिदेव के ग्रन्थों से होती है।

विज्ञानवाद के विरुद्ध, आचार्य शङ्कर द्वारा प्रदत्त समस्त तर्कों के विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्ष रूप में जो तथ्य उद्घाटित होते हैं, उन्हें दो पृथक् वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे तर्क समाविष्ट हैं जिन्हें विज्ञानवाद के पक्ष से असङ्गत अथवा निराधार सिद्ध किया गया है तथा द्वितीय के अन्तर्गत वे तर्क हैं जो स्वयं शङ्कर दर्शन के भी प्रतिकूल जाते हैं अथवा जिनसे सिद्धान्त पक्ष भी खण्डित हो सकता है। आशय यह है कि विज्ञानवाद हो अथवा शङ्कर वेदान्त, वस्तुतः दोनों अद्वैतवादी दर्शन हैं और इसीलिए समस्याओं के समान होने के कारण दर्शनद्वय में परस्पर भेद कम व समानताएँ अधिक हैं। इस आधार पर विज्ञानवाद को शङ्कर दर्शन का सर्वथा विरोधी दर्शन सम्प्रदाय नहीं कहा जा सकता है।

महायान विचारधारा का प्रधान अङ्ग शून्यवाद है और इसे (विवादास्पद रूप में) बौद्ध तत्त्वमीमांसा का चरम भी माना जाता है। शून्यवाद के प्रति आचार्य शङ्कर की आपत्तियाँ अति सरल, स्पष्ट होने के साथ ही अत्यन्त कठिन और रहस्यमयी भी प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि विश्लेषकों में इस खण्डन के प्रति मतैक्य नहीं है। आचार्य शङ्कर, शून्यवाद का न सर्वथा तिरस्कार कर सकते थे और न उसके प्रति अभेद्य मौन धारण कर सकते थे। सुदृढ़ वैदिक परम्परा और वेदरक्षा के अपने संकल्प के कारण वे शून्यवाद से अपनी मौन सहमति को मुखर भी नहीं कर सकते थे। यही कारण है कि उन्होंने लक्षणा, व्यंजना की विशिष्ट शैली में और अतिसंक्षेप में टिप्पणियाँ कीं। इस प्रयत्न से शङ्कर तो बच कर निकल गए किन्तु शून्यवाद ठगा-सा रह गया क्योंकि उससे प्रेरणा और प्रभाव लेकर अपने सिद्धान्त को दैदिप्यमान और प्रखर बनाने वाले शङ्कर भी उसकी इस नियति को और दृढ़तर कर गए, जिस नियति के कारण वह सदैव भ्रान्तस्वरूप में ही समझा जाता रहा और जिसकी पुष्टि अनेक लेखक यथासमय करते रहे हैं^१ और शून्य के अर्थ अभाव के आरोप को प्रक्षालित करने का प्रयत्न अन्य शून्यवादी आचार्य चन्द्रकीर्ति ने भी किया था।

१. Soloman, A. Estheher, *Avidya- A problem of Truth and Reality*, p. 242.

आचार्य शङ्कर ने शारीरक-भाष्य में सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद और शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत कर उनका खण्डन किया है। यह खण्डन कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत है तथा तीनों सम्प्रदायों के प्रति उनकी दृष्टि और शैली के भेद का भी प्रमाण है। इस समस्त खण्डन में शङ्कर ने श्रुतियों का प्रधानरूप से आश्रय नहीं लिया है। उनके प्रयत्न का लक्ष्य यही रहा है कि बौद्ध सम्प्रदायों की तत्त्वमीमांसा को युक्तियों के माध्यम से असङ्गत, अपूर्ण, परमार्थ और व्यवहार दोनों दृष्टियों से असफल और अतार्किक सिद्ध किया जाए। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर वे तीनों सम्प्रदायों में विज्ञानवाद के अधिक निकट दिखाई देते हैं किन्तु उनकी दो सत्यों की अवधारणा को यदि प्रश्रय दिया जाता है तो वे शून्यवाद से निकटता स्थापित करते हैं। ऐसा शून्यवाद जिसका एक छोर बाह्यार्थवाद है। प्रच्छन्न बौद्ध जैसे विवाद और बौद्ध विचारधारा के विध्वंस जैसे निष्कर्ष दोनों ही शारीरकभाष्य के बौद्ध सन्दर्भों के प्रकाश में अप्रासङ्गिक प्रतीत होते हैं।



वैष्णव भाष्यों में बौद्ध सन्दर्भ

प्रस्तावना

पूर्व परिच्छेद में ब्रह्म के बौद्ध विषयक अंश के माध्यम से आचार्य शङ्कर की बौद्ध दृष्टि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। आचार्य शङ्कर न केवल वेदान्त के अपितु भारतीय दर्शन के इतिहास के एक गौरवशाली नक्षत्र हैं। दर्शनाकाश में उनका प्रादुर्भाव एक अद्वितीय ऐतिहासिक घटना थी और उनके प्रतिभासूर्य के प्रादुर्भाव ने वैदिक और अवैदिक अनेक मत-मतान्तररूपी तारागणों को प्रभाहीन कर दिया था। विशृङ्खलित वैदिक मत-मतान्तर को उन्होंने अत्यन्त सफलतापूर्वक अद्वैतवाद के समन्वय-सूत्र में संग्रथित करने का प्रयत्न किया। कुछ इतिहासकारों को तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारतीय दर्शन ने इस आचार्य में अपना चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लिया है किन्तु भारतीय प्रज्ञा का प्रवाह इतनी सरलता से अवरुद्ध नहीं हुआ और इस आचार्य के बाद भी उसका सातत्य बना रहा। वेदान्त के सन्दर्भ में इस सातत्य की दीपशिखा को एक ओर शङ्कर के अनुयायियों ने प्रज्वलित रखा तो दूसरी ओर वैष्णव आचार्यों ने इसमें भक्ति-रस का स्नेह डालकर इसे एक नई चमक दी। शङ्कर के अनुयायियों ने जहाँ उनके कृतित्व के प्रत्येक शब्द की गम्भीर व्याख्या करते हुए अद्वैत वेदान्त के साहित्य की श्रीवृद्धि की वहीं वैष्णवाचार्यों ने शङ्कर के ही रचना-विधान का अनुकरण करते हुए अद्वैत से भिन्न मार्ग का अवलम्बन लिया और वेदान्त के इतिहास को एक अभिनव आयाम दिया। आचार्य शङ्कर के खण्डन के बाद वेदान्त के अतिरिक्त अन्य वैदिक और अवैदिक दर्शनों के स्वरूप और विकास में भी परिवर्तन हुआ और इसके फलस्वरूप कुछ सम्प्रदायों ने तत्त्वमीमांसा की अपेक्षा प्रमाणमीमांसा आदि अन्य क्षेत्रों में अपने वैचारिक विकास को अग्रसर किया। इस प्रकार कुल मिलाकर आचार्य शङ्कर के बाद भारतीय दर्शन का परिदृश्य परिवर्तित हो गया और एक नए दर्शन-युग का प्रारम्भ हुआ।

यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि शङ्कर ने अपने कालखण्ड में भारतीय दार्शनिक विकास और विशेषतः वेदान्त के विकास को तो नई

दिशा दी ही थी किन्तु उनके प्रस्थान के बाद भारतीय दर्शन के विकास का जो क्रम आगे बढ़ा उसमें भी उन्हीं के विचार केन्द्र में रहे। इस प्रकार वेदान्त सहित अन्य भारतीय दर्शन-सम्प्रदायों के शङ्करोत्तर विकास में भी शङ्कर का योगदान अद्वितीय और अशुण्ण रहा।

भारतीय दर्शन का यह शङ्करोत्तर परिदृश्य अधोलिखित चार्ट्स के माध्यम से क्रमेण प्रदर्शित है-

२. शङ्करोत्तर भारतीय दर्शन का परिदृश्य

प्रस्तुतमान चार्ट्स का संक्षिप्त विवरण-

- (अ) शङ्कर-मत के अनुयायी, लेखक एवं व्याख्याकार।
- (आ) प्रस्थानत्रयी की भाष्य-परम्परा में शङ्करोत्तर प्रधान आचार्य।
- (इ) शङ्करोत्तर वैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा।
- (ई) शङ्करोत्तर अवैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा।
- (उ) शङ्करोत्तर काश्मीर शैव दर्शन की चिन्तन-परम्परा।

पृ. १६२ पर चार्ट्स के माध्यम से यह स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन वेदान्त के अतिरिक्त, अवैदिक और आगम-धाराओं में भी विकास के नवीन सोपानों पर अग्रसर होता रहा। जिन बौद्ध सम्प्रदायों और उनके सिद्धान्तों का विरोध शङ्कर सहित वेदान्त के अन्य आचार्यों ने किया था अब बौद्ध सहित उन वेदान्तियों के विरोध के लिए अवैदिकों के अतिरिक्त शैवाचार्यों की सरणि भी आविर्भूत हो गई और इस प्रकार भारतीय दर्शन के इतिहास में चिन्तन-धाराओं का यह संघर्ष त्रिआयामी हो गया। कतिपय इतिहासकारों ने और अध्ययनकर्ताओं ने इस संघर्ष का विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि भारतीय दार्शनिक चिन्तन का चरम शङ्कर के अद्वैत वेदान्त में नहीं अपितु अभिनवगुप्त के काश्मीर शैव दर्शन में है।^१

अस्तु, शङ्कर के बाद चार वैष्णवाचार्यों ने ब्रह्म पर भाष्य लिखकर वेदान्त के विकास को गति दी। इस भाष्य-चतुष्टय में बौद्ध विषयक सन्दर्भों का स्वरूप कैसा है, इसी का वर्णन व विश्लेषण इस परिच्छेद का प्रधान प्रतिपाद्य है।

(अ) शङ्कर-मत के अनुयायी लेखक एवं व्याख्याकार

क्रमाङ्क सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
१. अद्वैत वेदान्त	८०० ई.	सुरेश्वराचार्य	आभासवाद	जगत् को आभासमात्र मानने के कारण मिथ्या मानना आदि।	नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि
२. " (विवरण सम्प्रदाय)	८२० ई.	पद्मपादाचार्य	प्रतिबिम्बवाद	ब्रह्म एवं अविद्या में आश्रयाश्रयिभाव एवं विषयविषयीभावसम्बन्ध मानना आदि।	पञ्चपादिका, प्रपञ्चसार आदि।
३. अद्वैत वेदान्त	८४० ई.	वाचस्पति मिश्र	अवच्छेदवाद	जीव अविद्योपाधि के कारण अनवच्छिन्न एवं असीम ब्रह्म अवच्छिन्न एवं सीमितता को प्राप्त होता है आदि।	ब्रह्मशाखा पर भामती टीका आदि।
४. "	९०० ई.	सर्वशास्त्रमुनि	अधिष्ठानवाद	ब्रह्म का अधिष्ठानरूप सत्य है, आधाररूप नहीं आदि।	संक्षेपशारीरक आदि।
५. "	११४८ ई.	अद्वैतानन्दबोधेन्द्र	-	-	ब्रह्मविद्यामरण, शान्तिविवरण आदि।
६. " (विवरण सम्प्रदाय)	१२०० ई.	प्रकाशात्मयति	-	विवरण टीका के नाम से विवरण सम्प्रदाय का प्रचलन आदि।	पञ्चपादिका पर विवरण टीका आदि।

क्रमाङ्क	सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
७.	अद्वैत वेदान्त	१२२० ई.	चित्तुखाचार्य	-	-	तत्त्वप्रदीपिका, खण्डनखण्डखाद्य की टीका आदि।
८.	"	१३५० ई.	विद्यारण्य	प्रतिबिम्बवाद	-	पञ्चदशी आदि।
९.	"	१५५० ई.- १६०० ई.	प्रकाशनन्द	अधिष्ठानवाद	-	वेदान्तसिद्धान्त- मुक्तावली आदि।
१०.	"	१६०० ई.	मधुसूदनसरस्वती	-	-	सिद्धान्तबिन्दु, संक्षेपशारीरक की व्याख्या।
११.	"	१६वीं शती	सदानन्द	अद्वैतवाद	अज्ञान, अध्यारोप आदि की आलोचनात्मक विवेचना।	वेदान्तसार आदि।
१२.	"	१७वीं शती	धर्मराजाध्वरीन्द्र	-	वृत्ति, साक्षी अनिर्वचनीयख्याती, मिथ्यात्व आदि का मौलिक विवेचना।	वेदान्तपरिभाषा आदि।
१३.	"	१८वीं शती	सदाशिवेन्द्रसरस्वती	-	-	ब्रह्म पर ब्रह्मतत्त्व- प्रकाशिका टीका आदि।
१४.	"	१९वीं शती	रामकृष्णपरमहंस	अद्वैतवाद	-	-
१५.	"	१८वीं-२०वीं शती	विवेकानन्द	"	वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या आदि।	Practical Vedanta etc.

(आ) प्रस्थानत्रयी की भाष्य-परम्परा में शङ्करोत्तर प्रधान आचार्य

क्रमशः सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
१. वेदान्त (श्रीसम्प्रदाय)	१०१७-११३७ ई.	रामानुजाचार्य	विशिष्टाद्वैत	सर्वप्रथम वैष्णव सम्प्रदाय, दार्शनिक चिन्तन में समन्वय अर्चित तत्त्व की ब्रह्मांशरूप में प्रतिष्ठा।	ब्रसू पर श्रीभाष्य आदि।
२. " (हंस सम्प्रदाय)	११वीं शती	निम्बार्काचार्य	द्वैताद्वैतवाद		ब्रसू पर वेदान्तपरिजात-सौरभ भाष्य आदि।
३. " (ब्रह्म सम्प्रदाय)	११९९-१३०३ ई.	मध्वाचार्य	द्वैतवाद	ज्ञान के स्थान पर भक्ति को महत्त्व ब्रह्म, जीव व जगत् में अभेद नहीं, भेद मानना आदि।	ब्रसू पर पूर्णप्रज्ञभाष्य आदि।
४. " (रुद्र सम्प्रदाय)	१४८१-१५३३ ई.	वल्लभाचार्य	शुद्धाद्वैतवाद	माया को ब्रह्म की शक्ति न मानना, शुद्ध अद्वैत तत्त्व के रूप में ब्रह्म का प्रतिपादन।	ब्रसू पर अणुभाष्य आदि।

(इ) शङ्करोत्तर वैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा

क्रमानुसूची	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
१.	मीमांसा (भाट्टमत) ८०० ई.	मण्डन मिश्र	-	-	मीमांसासूत्रानु- क्रमणिका आदि।
२.	" १९वीं शती	पार्थसारथिमिश्र	-	-	न्यायरत्नाकर, न्यायरत्नमाला आदि।
३.	" "	माधवाचार्य	-	प्रसिद्ध दर्शनों का पांडित्यपूर्ण शैली में निष्पक्ष संकलन।	सर्वदर्शनसंग्रह आदि।
४.	मीमांसा (प्रभाकरमत)	शालिकनार्थमिश्र	-	-	प्रभाकर के ग्रन्थ लघ्वी पर दीपशिखा व बृहती पर विमला टीका आदि।
५.	मीमांसा (मुरारिमत)	१२वीं शती मुरारि मिश्र	प्रामाण्यवाद	-	त्रिपादिनिर्दिष्टनियम, एकादशाध्याया- धिकरण आदि।

क्रमाङ्क	सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
६.	सांख्य दर्शन	नवमी शती (पूर्वार्द्ध)	वाचस्पतिमिश्र	-	सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय टीका।	सांख्यकारिका पर तत्त्वकौमुदी टीका आदि।
७.	"	१५वीं शती	अनिरुद्ध	-	-	सांख्यषडध्यायी पर अनिरुद्धवृत्ति आदि।
८.	"	१६वीं शती	महादेव वेदान्ती	-	-	सांख्यषडध्यायी पर वृत्तिसार व्याख्या आदि।
९.	"	१६वीं शती (मध्य)	विज्ञानभिषु	निरीश्वरवाद	सांख्य व वेदान्त में सामंजस्य आदि।	सांख्यप्रवचनसूत्र पर सांख्यप्रवचनभाष्य आदि।
१०.	न्याय दर्शन	८४१ ई.	वाचस्पति मिश्र	-	-	न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका, सांख्यप्रवचनभाष्य आदि।

क्रमाङ्क सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
११.	"	नवम शती (उत्तरार्द्ध)	-	-	न्यायसार पर प्रकरण ग्रन्थ न्यायभूषण आदि।
१२.	न्याय-वैशेषिक	१४८ ई. उदयनाचार्य	-	-	न्यायकुसुमाञ्जलि, न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका पर परिशुद्धि टीका आदि।
१३.	वैशेषिक	दशम शती शिवादित्य	-	वैशेषिक के सात पदार्थ का विशद विवेचन आदि।	सप्तपदार्थो लक्षण- माला आदि।
१४.	नव्य न्याय	१२वीं शती गंगेश उपाध्याय	प्रमाणमीमांसा	-	तत्त्वचिन्तामणि आदि
१५.	"	१७वीं शती अन्नभट	-	-	तर्कसंग्रह आदि।

(ई) शङ्करोत्तर अवैदिक दर्शन की चिन्तन-परम्परा

क्रमाङ्क सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
१. जैन दर्शन	दशम शती	बादिराजसूरि	-	-	प्रमाणनिर्णय न्यायविनिश्चय- विवरण आदि।
२. "	१२वीं शती	हेमचन्द्र	-	-	प्रमाणमीमांसा, अन्ययोगव्यवच्छे- दिका आदि।
३. "	१२९२ ई.	मल्लिषेणसूरि	-	प्रमाण तथा सप्तभङ्गीनय पर विचार आदि।	अन्ययोगव्यवच्छेदिका पर स्याद्वादमंजरी टीका आदि।
४. "	१७वीं शती	यशोविजय	-	-	जैन तर्कभाषा आदि।
५. बौद्ध न्याय	७६०-८२० ई.	कमलशील	प्रत्ययवादी/ अपोहवाद, न्यायमीमांसा	-	तत्त्वसंग्रहपञ्जिका, न्यायबिन्दुटीका आदि।
६. "	९०० ई.	अर्चट	"	-	अवयविनिराकरण, सामान्यदूषण आदि।

क्रमाङ्क	सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
७.	"	९५० ई.	रत्नकीर्ति	"	-	अपोहसिद्धि, क्षणभङ्गसिद्धि आदि।
८.	"	१०वीं शती	मुक्तकुम्भ	"	-	क्षणभङ्गसिद्धिव्याख्या आदि।
९.	"	१०१५ ई.	जिनमित्र	"	-	न्यायबिन्दु पर पिण्डार्थ टीका आदि।
१०.	"	१०२५ ई.	ज्ञानश्रीमित्र	"	-	कार्यकारणभावसिद्धि आदि।
११.	"	११वीं शती	ज्ञानश्रीभद्र	"	-	प्रमाणविनिश्चय टीका आदि।

(उ) शङ्करोत्तर काश्मीर शैव दर्शन-परम्परा

क्रमशः सम्प्रदाय	काल	आचार्य	सिद्धान्त	वैशिष्ट्य	प्रधान ग्रन्थ
१. काश्मीर शैव दर्शन	नवम शती का उत्तरार्द्ध	सोमानन्द	शिवाद्वयवाद	शक्तिवाद व विवर्तवाद (संस्कृत व्याकरण के आधारभूत सिद्धान्त) का खण्डन; वेदान्त के दस सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की विवेचना; शिवाद्वयवाद का प्रथम प्रतिपादन आदि।	शिवदृष्टि आदि।
२. "	"	उत्पलदेव	"	सोमानन्द द्वारा प्रतिपादित शिवाद्वयवाद का परिमार्जन आदि।	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, सिद्धिन्नयी आदि।
३. "	दशम शती	अभिनवगुप्त	"	शिवतत्त्व का वर्णन मायाण्ड संशित ब्रह्म के रूप में, किया गया है किन्तु आचार्य द्वारा निर्दिष्ट परमात्मा की माया अद्वैत वेदान्त एवं सांख्यादि की माया से भिन्न है। यहाँ माया गोपनात्मिका परमेश्वरी इच्छा शक्ति के रूप में चित्रित है।	तन्त्रालोक, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा पर विमर्शिनी टीका आदि।

३. रामानुजाचार्य

(अ) परिचय

वेदान्तीय चिन्तन-परम्परा में अद्वैतवाद का एक अन्य रूप भी प्राप्त होता है जिसे विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है। रामानुज (१०१७ ई.-११३७ ई.) इस मत के सर्वाधिक प्रख्यात आचार्य हैं। इनका जन्म तमिलनाडु के श्रीपेरुम्बदूर में हुआ। सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त करने के अनन्तर इन्होंने यामुनाचार्य (१०वीं शती) और यादव प्रकाश (११वीं शती) से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की। ऐसा माना जाता है कि पूर्ववर्ती भेदाभेदवादी आचार्य भास्कर का भी उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा क्योंकि रामानुज ने उनके विचारों का खण्डन करके विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। रामानुज ने वैष्णव धर्म को दार्शनिक एवं बौद्धिक आधार पर सर्वप्रथम मण्डित कर उसे लोकप्रिय बनाया। रामानुज का यह सम्प्रदाय 'श्रीसम्प्रदाय' के नाम से भी अभिहित है।

(आ) ग्रन्थ व सिद्धान्त

विशिष्टाद्वैत की दार्शनिक चिन्तनधारा के उद्भव और प्रचार का शुभारम्भ बोधायन-प्रणीत ब्रह्मसूत्रवृत्ति से हुआ ऐसा माना जाता है। किन्तु यह ग्रन्थ दुर्भाग्यवश आज अनुपलब्ध है। मान्यता है कि रामानुज को इसकी एक प्रति कश्मीर में प्राप्त हुई थी।

रामानुजाचार्य-प्रणीत ग्रन्थों में ब्रसू पर लिखा गया श्रीभाष्य सर्वप्रमुख है। इसके अतिरिक्त रामानुज ने वेदान्तसार और वेदान्तदीप दो अन्य ग्रन्थों की रचना भी की है जिनमें श्रीभाष्य की विषय-वस्तु को सरल व संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेदार्थसंग्रह रामानुज का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसका विषय उप-वाक्यों की विशिष्टाद्वैतपरक व्याख्या, अन्य मतवादों (विशेषकर शाङ्कर वेदान्त व मीमांसा) की आलोचना तथा भक्ति-सिद्धान्त का दार्शनिक निरूपण करना है। आचार्य ने गीता पर भी भाष्य लिखा है। गद्यत्रय व नित्यग्रन्थ रामानुज द्वारा वैष्णव सम्प्रदाय के समर्थन में लिखे गए अन्य ग्रन्थ हैं।

रामानुज द्वारा प्रणीत इन समस्त ग्रन्थों का यह सामान्य वैशिष्ट्य है कि इनमें उप, ब्रसू व गीता के विचारों का वैष्णव सन्त विचारधारा के साथ समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

विशिष्टाद्वैतवाद का शाब्दिक अर्थ है- विशिष्टयोरद्वैतम् अर्थात् विशिष्ट कारण और विशिष्ट कार्य की एकता। उल्लेखनीय है कि रामानुज अपने दर्शन में चित्, अचित् और ईश्वर- तीन मूल तत्त्व स्वीकार करते हैं। चित् चेतन

१. इसे श्रीसम्प्रदाय इसलिए कहते हैं कि इस सिद्धान्त में श्री शब्द का प्रयोग आदर का द्योतक है। इसके अनुयायी नाम के पूर्व श्री लगाते हैं, जैसे श्रीभाष्य, श्रीवैष्णव इत्यादि।

भोक्ता जीव है, अचित् जड़ एवं भोग्य जगत् है। ईश्वर दोनों का अन्तर्यामी तत्त्व है। यद्यपि ये तीनों समानरूप से यथार्थ व शाश्वत सत्ताएँ हैं तथापि इनमें से दो जीव व जगत् ईश्वराश्रित व उसके द्वारा संचालित हैं। ईश्वर की जीव व जगत् के साथ अपृथक्सिद्धि अर्थात् विशेषण-विशेष्य अथवा अङ्गाङ्गीभाव-सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में, ईश्वर, जीव एवं जगत् अपने स्वरूपभेद से तीन हैं किन्तु पद्धति तथा द्रव्य के ऐक्य के कारण एक हैं। चूँकि रामानुज तीनों के सम्बन्ध को शरीर या आत्मा के सम्बन्ध से अभिन्न करते हैं अतः इनका ब्रह्मवाद चिदचिद्विशिष्ट होने के कारण विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

रामानुज के इस विशिष्टाद्वैतवाद की यह विशेषता है कि इसमें उप के ब्रह्मवाद एवं भागवत धर्म के ईश्वरवाद के समन्वय का प्रयास किया गया है। परिणामस्वरूप इस सिद्धान्त में जहाँ सर्वभेदरहित ब्रह्म का खण्डन करके उसको स्वगत भेद से युक्त माना गया है वहीं दूसरी ओर ब्रह्म के तादात्म्य व जगत् के मिथ्यात्व का निषेध कर जीवों की यथार्थता व जगत् की वास्तविकता को स्वीकार किया गया है। संक्षेप में, तत्त्वमीमांसा के स्वरूपगत विवेचन में अचित् तत्त्व की सापेक्षिक प्रतिष्ठा हेतु उसे ब्रह्मांश रूप में निरूपित करना रामानुज का विशिष्ट अद्वैतवाद है।

(इ) बौद्ध पक्ष

जैसा कि पूर्व परिच्छेदों में बताया जा चुका है, ब्रसू में कुल १५ सूत्रों के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन की आलोचना प्राप्त होती है। इसलिए बौद्ध दर्शन के प्रति सूत्रकार अथवा भाष्यकार के दृष्टिकोण के परिचय का माध्यम ये १५ सूत्र ही हैं।

श्रीभाष्य में, ब्रसू के उन्हीं १५ सूत्रों(?)^१ पर भाष्य लिखने के क्रम में बौद्ध दर्शन के चारों प्रधान सम्प्रदायों (सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार, विज्ञानवाद व माध्यमिक शून्यवाद) का स्पष्टतः नामोल्लेख किया है तथा पूर्वपक्ष के रूप में उनके पारस्परिक व आन्तरिक मतभेदों का भी संक्षिप्त परिचय दिया है।^२

१. रामानुज ने जिन ब्रसू के सूत्रों को अपने भाष्य में दिया है उनकी संख्या और क्रम शङ्कर से भिन्न है विशेषरूप से उपर्युक्त आलोच्य सूत्रों में। श्रीभाष्य में क्षणिकत्वाच्च सूत्र अनुपलब्ध होने से यहाँ आलोच्य सूत्रों की कुल संख्या पन्द्रह न होकर चौदह है।
२. ते चतुर्विधा...। श्रीभाष्य, २/२/१७.

पूर्वपक्ष एवं युक्तियाँ

आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य के माध्यम से, ब्रह्म पर जो बौद्ध विषयक विचार व्यक्त किए हैं, उनके विश्लेषण से प्रथम दृष्टि में यह स्पष्ट होता है कि वे बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध सम्प्रदायों, उनकी तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, अवधारणाओं और समर्थक युक्तियों से परिचित थे। उनके मानस में बौद्ध दर्शन का एक निश्चित स्वरूप था। उसके श्रुति-विरोध तथा तर्क-दृष्टि के सबल-दुर्बल पक्षों के प्रति भी उनकी अपनी मान्यताएँ थीं जो पूर्वाचार्यों की परम्परा से भी प्रभावित थीं और साथ ही उनमें उनकी अपनी मौलिक सोच भी सम्मिलित थी। वे बौद्ध के प्रति अपने ज्ञान और अभिमत को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं रखते थे। श्रुति के प्रति उनकी दृढ़ आस्था और अपने सिद्धान्त के प्रति स्पष्ट आग्रह इस आलोच्य अंश में सर्वत्र दिखाई देता है।

श्रीभाष्य में बौद्ध पूर्वपक्ष चार खण्डों में विभाजित है-

- (i) तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से सौत्रान्तिक, वैभाषिक का सामान्य पूर्वपक्ष।
- (ii) प्रमाणमीमांसीय दृष्टि से सौत्रान्तिक का स्वतन्त्र पूर्वपक्ष।
- (iii) तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से विज्ञानवाद का स्वतन्त्र पूर्वपक्ष।
- (iv) तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से शून्यवाद का स्वतन्त्र पूर्वपक्ष।

सौत्रान्तिक मत का स्वतन्त्र पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए आचार्य ने तत्त्वमीमांसा की तुलना में प्रमाणमीमांसा को अधिक महत्त्व दिया है। सौत्रान्तिक चूँकि प्रमाणमीमांसा के द्वारा तत्त्वों की सिद्धि करते हैं अतः भाष्यकार ने प्रमाणमीमांसा को सौत्रान्तिक सिद्धान्त का सबल पक्ष मानकर उसे पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है तथा इसके खण्डन द्वारा सौत्रान्तिक के तत्त्वमीमांसीय मत का खण्डन किया है।

भाष्यकार ने सूत्र (२/२/१७-१९) में तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष को सामान्य स्वरूप में प्रस्तुत किया है।

आलोच्य सूत्रों के श्रीभाष्य में यद्यपि सामग्री का अपेक्षित व्यवस्था के अनुसार प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है फिर भी समस्त विवरण को व्यवस्था के अनुसार देखने पर उसे अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है-

- (i) बुद्ध और बौद्ध दर्शन के प्रति प्रकट किए गए सामाय विचार
- (ii) प्रत्येक बौद्ध सम्प्रदाय का सिद्धान्त-पक्ष
- (iii) प्रत्येक बौद्ध सम्प्रदाय की समर्थक युक्तियाँ
- (iv) बौद्ध पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या
- (v) प्रत्येक बौद्ध सम्प्रदाय की खण्डनात्मक युक्तियाँ

बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध सम्प्रदायों का नाम सूत्र संख्या (२/२/२५, २७, ३०) के भाष्य में आया है। ये सभी सम्प्रदाय उनकी दृष्टि में सुगतमत अथवा सौगत मत के हैं (२/२/१७, ३०)। बुद्ध ने इन सभी मतों का स्वयं उपदेश दिया है, इनके परस्पर मतभेद सर्वविदित हैं और इनमें क्रम भी विवादास्पद नहीं हैं- ऐसा मानते हुए वे स्पष्ट कहते हैं कि शिष्यों की बौद्धिक क्षमता के अनुसार बुद्ध ने भिन्न प्रतीत होने वाले मतों की देशना की है। क्षणभङ्गवाद, यद्यपि बौद्ध विचारधारा का अत्यन्त प्रसिद्ध सिद्धान्त है फिर भी पारमार्थिक दृष्टि में सुगत-मत का चरम-स्वरूप शून्यवाद में ही प्रकाशित हुआ है- **शून्यवाद एव हि सुगतमतकाष्ठा** (२/२/३०)। प्रथम दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि यह बुद्ध के भाव के साथ न्याय है और उनको आदर देना भी है तथा शून्यवाद भी इस वचन के द्वारा बौद्ध दर्शन में सर्वोच्च प्रतिष्ठा पाता है। किन्तु अन्य विवरणों के साथ इस वक्तव्य को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यह टिप्पणी बड़े सुनियोजित ढंग से की गई है। आगे शून्य का अर्थ अभाव करना और बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित मोक्ष (निर्वाण) को अभावरूप बताना तथा स्वदृष्ट्या अन्ततोगत्वा **शून्य को तुच्छ** कहना, यह दर्शाता है कि आचार्य समस्त बौद्ध दर्शन को ही **तुच्छ** सिद्ध करने की ओर अग्रसर होना चाहते हैं और एतद् द्वारा बुद्ध के विचारों की तुच्छता को युक्तिसंगत सिद्ध करना ही उन्हें अभिप्रेत है।

आचार्य शङ्कर के शून्यवाद के प्रति दृष्टिकोण से रामानुज के दृष्टिकोण में यह भेद है कि शङ्कर जहाँ शून्यवाद को विचार-योग्य भी नहीं मानते हैं वहीं रामानुज बुद्ध और बौद्ध विचारधारा का चरम और प्रतिनिधि स्वरूप शून्यवाद को मानते हैं, शून्य अथवा शून्यवाद के खण्डन के माध्यम से समस्त बौद्ध दर्शन-सम्प्रदायों को खण्डित मानते हैं और अपनी ओर से उसे **तुच्छ** की संज्ञा देते हैं (२/२/३०)।

शून्यवाद की मान्यता का उल्लेख करते हुए आचार्य ने कहा है कि यह मत सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद के तत्त्वविचारों से सहमति नहीं रखता है।

बाह्यार्थ और विज्ञान की सत्ता का निषेध करते हुए यह सर्वशून्यता का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।^१ शून्यवाद की दृष्टि में सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद-सम्मत क्षणभङ्गवाद का सबसे बड़ा दोष यह है कि ये मत जिस क्षण से उत्पत्ति-विनाश की बात करते हैं वह वस्तुतः सापेक्ष है, एक के बिना दूसरा संभव नहीं है और जहाँ तक पदार्थ की उत्पत्ति का प्रश्न है वह न स्वतः हो सकती है और न ही परतः क्योंकि प्रथम विकल्प में आश्रय-दोष का प्रसंग तथा प्रयोजन का अभाव है और द्वितीय में पर के न होने तथा सबसे सबकी उत्पत्ति होने की संभावना का दोष है। न भाव से उत्पत्ति हो सकती है, न अभाव से; और उत्पत्ति के अभाव में विनाश की चर्चा अप्रासङ्गिक है। इसलिए सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद-सम्मत क्षणभङ्गवाद अस्वीकार्य है (२/२/३०)।

आचार्य रामानुज ने शून्यवाद के खण्डन में जो युक्तियाँ दी हैं, उनमें बाह्यार्थवाद भी पृष्ठभूमि में है। उन्होंने शून्यवाद से स्पष्ट प्रश्न किया है कि यह शून्य सत् है अथवा असत् अथवा उससे भिन्न? क्योंकि लोकव्यवहार में भाव और अभाव दो शब्दों का ही व्यवहार देखा जाता है तथा अभाव को भी भाव की ही एक अवस्था विशेष माना जाता है।^२ दोनों से भिन्न तत्त्व को मानना वस्तुतः ऐसे सत्य को मानना है जिसे प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता। प्रमाण से किसी को सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण को मानना आवश्यक है किन्तु शून्यवाद प्रमाण को भी नहीं मानता है। इसलिए उसका शून्य तुच्छ के अतिरिक्त कुछ भी सिद्ध नहीं होता है।^३ अन्त में वेदान्त की तत्त्वदृष्टि को ध्यान में रखते हुए आचार्य कहते हैं कि किसी वस्तु के जन्म और विनाश को मात्र सापेक्ष मानकर उसका खण्डन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह व्यावहारिक स्तर पर देखा ही जाता है। रामानुज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तर्क यह है कि वस्तुतः सत् अथवा असत् से जन्म और विनाश मानना एक प्रकार की भ्रान्ति है और भ्रान्ति बिना अधिष्ठान

१. (a) अन्ये तु सर्वं शून्यत्वमेव संगिरन्ते। श्रीभाष्य, २/२/१७.

(b) विज्ञानं बाह्यार्थाश्च सर्वे न सन्ति, शून्यमेव तत्त्वम्। वही, २/२/३०.

२. किं भवान् सर्वं सदिति वा प्रतिजानीते, असदिति वा, अन्यथा वा, सर्वथा तवाभिप्रेतं तुच्छत्वं न संभवति। लोके भावाभावशब्दयोस्तत्प्रतीत्योश्च विद्यमानस्यैव वस्तुतोऽवस्थाविशेष-गोचरत्वस्य प्रतिपादितत्वात्। श्रीभाष्य, २/२/३०.

३. (a) सर्वं शून्यमिति प्रतिजानता सर्वं सदिति प्रतिजानतेव सर्वस्य विद्यमानस्यावस्थाविशेष योगितैव प्रतिज्ञाता भवतीति भवदभिमतं तुच्छता न कुतश्चिदपि सिध्यति। वही.

(b) कुतश्चित्प्रमाणाच्छून्यत्वमुपलभ्य शून्यत्वं सिषाधयिता तस्य प्रमाणस्य सत्यत्वंभ्युपेत्यम्, तस्यासत्यत्वे सर्वं सत्यं स्यादिति। वही.

के संभव नहीं है। यही अधिष्ठान पारमार्थिक तत्त्व (अथवा ब्रह्म) है जिसके बिना व्यवहार और परमार्थ की सुसंगत व्याख्या नहीं हो सकती।^१

शून्यवाद के बाद, विवेचन के क्रम में सर्वास्तिवाद को लिया जा सकता है- यद्यपि श्रीभाष्य में यह क्रम भिन्न रूप में स्वीकृत है। सर्वास्तिवाद के अन्तर्गत मान्य सौत्रान्तिक और वैभाषिक में तत्त्वमीमांसा का भेद मुख्य नहीं है, उस तत्त्व के ज्ञान में प्रयुक्त प्रमाण का भेद है। इस दृष्टि से वैभाषिक बाह्यार्थप्रत्यक्षवादी कहा जाता है और सौत्रान्तिक बाह्यार्थानुमेयवादी माना जाता है। आचार्य ने वैभाषिक के पूर्वपक्ष को उसके परमाणुवाद के साथ प्रस्तुत किया है और इसी के साथ सौत्रान्तिक पक्ष को रखते हुए उसकी इस मान्यता का विशेषरूप से उल्लेख किया किया है कि बाह्यार्थ के कारण ही ज्ञान में वैचित्र्य आता है- अर्थकृतमेव ज्ञानवैचित्र्यम् (२/२/२५) व ज्ञानवैचित्र्यमप्यर्थवैचित्र्यकृतमेव (२/२/२७)। ज्ञानोत्पत्ति-काल में क्षणिक बाह्यार्थ की अनुपस्थिति के कारण पदार्थ ज्ञान का विषय नहीं बन सकता।^२

ज्ञान में विषय के कारण आकार और वैचित्र्य आता है अथवा बिना विषय के ज्ञान में वैचित्र्य है और वह वैचित्र्य भी विषयकृत नहीं अपितु वासनाकृत है- यह समस्या सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद के मध्य आरम्भ से ही विवाद का विषय रही है। इसी समस्या को रामानुज ने यहाँ उठाया है और दोनों पूर्वपक्षों को रखते हुए अपना मत व्यक्त किया है। सौत्रान्तिक मत यह है कि ज्ञान-काल में विषय को अनुपस्थित मानना उचित नहीं है क्योंकि चक्षु आदि इन्द्रिय तो ज्ञान का विषय हो नहीं सकते। इसके साथ ही विषय की उपस्थिति और अनुपस्थिति ज्ञान के प्रसंग में मुख्य नहीं है, मुख्य यह है कि ज्ञान में आकार का समर्पण किसने किया।^३ इसके विपरीत विज्ञानवाद मानता है कि ज्ञान साकार है और वैचित्र्य भी उसमें अपना है।^४

१. जन्मविनाश सदसदादयोऽप्राप्तिमात्रम्। न च निरधिष्ठानभ्रमासंभावाद् भ्रमाधिष्ठानं किञ्चित्पारमार्थिकं तत्त्वमाश्रयित्वं दोषदोषाश्रयत्वज्ञातृत्वाद्यपारमार्थ्येऽपि भ्रमोपपत्तिवदधिष्ठानापारमार्थ्येऽपि भ्रमोपपत्तेः। श्रीभाष्य, २/२/३०.
२. संप्रयुक्तस्यार्थस्य ज्ञानोत्पत्तिकालेऽनवस्थितत्वाच्च कस्यचिदर्थस्य ज्ञानविषयत्वं संभवतीति।। वही, २/२/२५.
३. न ज्ञानकालेऽनवस्थानमर्थस्य ज्ञानविषयत्वं हेतुः ज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वमेव हि ज्ञानविषयत्वम्। न चैतावता चक्षुरादेः ज्ञानविषयत्वप्रसङ्गः स्वाकारसमर्पणेन ज्ञानहेतोरेव ज्ञानविषयत्वाभ्युपगमात्। वही.
४. अर्थवैचित्र्यकृतं, ज्ञानवैचित्र्यमिति, तन्नोपपद्यते, अर्थवत् ज्ञानानामेव साकाराणां स्वयमेव विचित्रत्वात्। वही, २/२/२७.

ज्ञान में वैशिष्ट्य और वैलक्षण्य अथवा साकारत्व का कारण विषय नहीं, वासना है और यह वासना स्वतन्त्र वस्तु न होकर ज्ञानों का प्रवाह ही है- प्रवाह एव वासनेत्युच्यते (२/२/२७)। ज्ञान पदार्थ के अधीन नहीं है अपितु पदार्थ में जो व्यवहार की योग्यता है वह ज्ञान के कारण ही आती है।^१ जो ज्ञान प्रकाशन की क्षमता रखता है उसका साकार होना आवश्यक है क्योंकि निराकार में प्रकाशन की योग्यता नहीं होती।^२ बाह्य विषय पर ज्ञान के प्राधान्य में विज्ञानवाद की अन्य युक्ति यह है कि ज्ञान और अर्थ की एक साथ उपलब्धि भी यही सिद्ध करती है कि पदार्थ ज्ञान से भिन्न नहीं है- ज्ञानार्थयोः सहोपलम्भनियमाच्च ज्ञानादव्यतिरिक्तोऽर्थः (२/२/२७)। फिर भी वह पदार्थ के रूप में भासित होता है तो यह सम्यक् ज्ञान नहीं अपितु भ्रम है- तस्य च बहिर्वदवभासोऽपि भ्रमकृतः (वही)। अतः विज्ञानवाद का निष्कर्ष है कि ज्ञान से ही समस्त व्यवहार की व्याख्या हो जाती है। इसलिए उसी की तात्त्विक सत्ता मानना उचित है।^३

आचार्य ने बौद्ध विचारधारा के दो परस्पर विरोधी पक्ष प्रस्तुत करते हुए एक के द्वारा दूसरे का युक्तिपूर्वक खण्डन प्रदर्शित किया है। किन्तु जब इन दोनों पूर्वपक्षों के खण्डन का अवसर उपस्थित होता है तो वे इन्हीं में से एक पक्ष का आश्रय भी लेते हैं अर्थात् विज्ञानवाद के खण्डन में बाह्यार्थ की पृष्ठभूमि स्वीकार करते हैं। इस प्रसङ्ग में उनके प्रधान तर्क इस प्रकार हैं- (i) बाह्यार्थ उपलब्ध होता है इसलिए उसका अभाव मानना उचित नहीं है।^४ (ii) सभी ज्ञानों को बाह्यार्थ शून्य मानने पर विज्ञानवाद ही असिद्ध हो जाएगा।^५ (iii) सहोपलम्भनियम, अर्थ और ज्ञान की भिन्नता सिद्ध करता है, अभिन्नता नहीं।^६ (iv) ज्ञान-क्रिया स्वयं कर्ता

१. अर्थस्यापि व्यवहारयोग्यत्वं ज्ञानप्रकाशायत्तं, अन्यथा स्वपरवेद्योरनतिशयप्रसंगात्। श्रीभाष्य, २/२/२७.
२. प्रकाशमानस्य च ज्ञानस्य सकारत्वमवश्याश्रयणीयम् निराकारस्य प्रकाशायोगात्। वही.
३. (a) तावतैव सर्वव्यवहारोपपत्तेः तदव्यतिरिक्तार्थकल्पना निष्प्रामाणिका। ... विज्ञानमात्रमेव तत्त्वम्, न बाह्यार्थोऽस्ति इति। वही.
- (b) तत्र च शरीरान्तर्वर्ती ग्राहकाभिमानरूढो विज्ञानसंतान एवात्मत्वेनावतिष्ठन्ते, तत एव सर्वो लौकिको व्यवहारः प्रवर्तते इति। वही, २/२/२७.
- (c) अपरे त्वर्थशून्यं विज्ञानमेव परमार्थसत् बाह्यार्थास्तु स्वप्नार्थकल्पा इत्याहुः। वही.
- (d) विज्ञानमात्रमेव तत्त्वम्, न बाह्यार्थोऽस्ति। वही, २/२/२७.
४. (a) ज्ञानातिरिक्तस्यार्थस्याभावो वक्तुं न शक्यते (कुतः?) उपलब्धेः। श्रीभाष्य, २/२/२७.
- (b) न बाह्यार्थाभावः। वही.
५. सर्वेषां च ज्ञानानां अर्थशून्यत्वे भवद्भिः साध्योऽप्यर्थो न सिध्यति। वही, २/२/२८.
६. तत्त्ववचनविरुद्धम्, साहित्यस्यार्थभेदकहेतुत्वात्। तदर्थव्यवहारयोग्यतैकस्वरूपस्य ज्ञानस्य तेन सहोपलम्भ- नियमस्तस्मादवैलक्षण्यसाधनमिति च हास्यम्। वही, २/२/२७.

और कर्म की अपेक्षा रखते हैं तथा ज्ञान से भिन्न अर्थ और ज्ञान-क्रिया के कर्ता की सिद्धि करते हैं।^१ (v) ज्ञानों की क्षणिकता मानने पर पूर्वपक्ष के विनष्ट ज्ञान के साथ उसमें रहने वाली वासना भी जब विनष्ट हो जाएगी तब उस वासना का उत्तरज्ञान में संक्रमण कैसे होगा^२ और इस प्रकार वासना की सिद्धि भी कठिन हो जाएगी^३ (vi) विज्ञानवाद का यह प्रयत्न युक्तियुक्त नहीं है कि स्वप्न और जाग्रत अवस्था में सादृश्य है क्योंकि दोनों में वैधर्म्य है और दोनों बाधित होते हैं^४ और स्वप्न-ज्ञान को अर्थशून्य मानना भी अव्यावहारिक है।^५ (vii) अर्थ के कारण ज्ञान में वैचित्र्य आता है- बाह्यार्थवाद के इस मत के खण्डन में आचार्य की खण्डनात्मक युक्ति है कि ऐसा तभी संभव है जब ज्ञान के क्षण में पदार्थ की सत्ता मानी जाए किन्तु क्षणभङ्गवाद में ऐसा संभव न होने से यह पूर्वपक्ष ग्राह्य नहीं है।^६ (viii) विज्ञान मात्र की सत्ता की मान्यता के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण युक्ति यह है कि ज्ञान भी वस्तुतः द्रव्य ही है क्योंकि जैसे प्रदीप का गुण प्रकाश द्रव्य है उसी प्रकार आत्मा का गुण ज्ञान भी द्रव्य ही है।^७

सम्प्रदाय विशेष की आलोचना के लिए भाष्यकार ने एक अन्य पक्ष अर्थक्रियाकारिता का लिया है तथा क्षणभङ्गवाद से इसकी असङ्गति दर्शायी है।

१. (a) सकर्मकेण सकर्तृकेन ज्ञाधात्वर्थेन सर्वलोकसाक्षिकमपरोक्षमवभासमानेनैव ज्ञानमात्रमेव परमार्थ इति साधयन्तः सर्वलोकोपहासोपकरणं भवन्ति। श्रीभाष्य, २/२/२७.
- (b) न केवलस्यार्थशून्यज्ञानस्य भावः संभवति (कुतः?) क्वचिदुपलब्धिः। न हि अकर्तृकस्याकर्मकस्य वा ज्ञानस्य क्वचिदुपलब्धिः। वही, २/२/२९.
२. विनष्टेन पूर्वज्ञानेनानुत्पन्नमुत्तरज्ञानं कथं वास्यते। वही, २/२/२७.
३. निरन्वयविनाशिनं ज्ञानानामनुवर्तमानस्थिराकारविरहाद्वासना च दुरुपपादा। वही.
४. (a) स्वप्नज्ञानवैधर्म्याज्जागरितज्ञानानामर्थशून्यत्वं न युज्यते। वही, २/२/२८.
- (b) निरालंबनानुमानस्याप्यर्थशून्यत्वात्। तस्यार्थवत्त्वे ज्ञानत्वस्यानैकान्त्यात्सुतरामर्थशून्यत्वा-सिद्धिः। वही.
- (c) स्वप्नज्ञानानि हि निद्रादिदोषदुष्टकरणजन्यानि, बाधितानि च जागरितज्ञानानि तु तद्विपरीतानि तेषां न तत्साम्यम्। वही.
५. स्वप्नज्ञानादिष्वपि नार्थशून्यत्वमिति। वही, २/२/२९.
६. अर्थवैचित्र्यकृतं ज्ञानवैचित्र्यमर्थस्य ज्ञानकालेऽवस्थानादेव भवति। वही, २/२/२५.
७. (a) ज्ञानमपि हि द्रव्यमेव। प्रभाद्रव्यस्य प्रदीपगुणभूतस्येव ज्ञानस्याप्यात्वगुणभूतस्य द्रव्यत्वम्। वही, २/२/२७.
- (b) यहाँ वस्तुतः न्याय दर्शन की दृष्टि से द्रव्य के स्थान पर पदार्थ शब्द का प्रयोग होना चाहिये क्योंकि इस मत में आत्मा द्रव्य है और उसमें रहने वाला ज्ञान गुण है जबकि यहाँ आचार्य ने ज्ञान को द्रव्य कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे यहाँ द्रव्य शब्द का प्रयोग पदार्थ के अर्थ में ही कर रहे हैं।

अर्थक्रियाकारिता का यह सिद्धान्त वैभाषिक व सौत्रान्तिक की तत्त्वमीमांसा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अर्थक्रियाकारिता का तात्पर्य यही है कि 'प्रत्येक वस्तु क्रिया के सहित' है। सर्वास्तिवादी तत्त्वमीमांसा, प्रत्येक वस्तु के स्वतन्त्र व क्षणिक अस्तित्व को स्वीकार करती है किन्तु अस्तित्व से उसका तात्पर्य यहाँ वस्तु की क्रियाशीलता अथवा उसके क्रियाकारित्व से है- **अर्थक्रियाकारित्वलक्षणं सत्**। दूसरे शब्दों में, यह क्रियाशीलता, वस्तु के वस्तुत्व की पहिचान है। इस क्रियाशीलता को ही स्वलक्षण के नाम से अभिहित किया जाता है। पुनः स्वलक्षण को देखकर ही वस्तु का अनुमान किया जाता है क्योंकि क्रिया व वस्तु में व्याप्ति सम्बन्ध है।

रामानुज बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदायों^१ का उल्लेख करते हुए प्रत्येक सम्प्रदाय का मत भी अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हैं।^२ शून्यवाद के बाद उनकी खण्डनात्मक युक्तियों का सर्वाधिक प्रधान लक्ष्य क्षणभङ्गवाद बना है। युक्तियों की संख्या और विस्तार की दृष्टि से इसे शून्यवाद से अधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए किया गया है कि ब्रह्म में ही प्रत्यक्षतः क्षणभङ्गवाद के विरोध पर अधिक सूत्र हैं। दूसरा कारण यह भी है कि बौद्धों का क्षणभङ्गवाद ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जिसका सम्बन्ध **तीन सम्प्रदायों से है** इसलिए भी इसे अधिक महत्त्व मिलना स्वाभाविक है।^३

श्रीभाष्य में यह क्षणभङ्गवाद कार्यकारणभाव के रूप में देखा गया है। इसकी आलोचना के जो प्रधान बिन्दु यहाँ प्रकट हुए हैं उनमें उल्लेखनीय हैं-

- असत् से सत् की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।
- उत्पन्न सत् कार्य, बिना कारण के विनष्ट नहीं हो सकता।
- सत् स्वयं उत्पन्न नहीं हो सकता।
- सत् को एक क्षण के बाद विनष्ट मानना, सत् के स्वरूप का ही तिरस्कार है।
- सत् का विनाश मानने के लिए उसका कोई कारण मानना आवश्यक है।
- कारण और कार्य सर्वथा असम्बद्ध नहीं होते। उनमें सरूपता होती है। कारण के स्वभाव को साथ लेकर उससे कार्य उत्पन्न होता है।

१. ते चतुर्विधा...। श्रीभाष्य, २/२/२७.

२. वही, २/२/१८, ३०.

३. त्रयोऽप्येते स्वाभ्युपगतं वस्तु क्षणिकमाचक्षते, उक्तभूतभौतिकचित्तचैतन्यव्यतिरिक्तमाकाशादिकं स्वरूपेणैव नानुमन्वते। वही, २/२/१७.

□ कारण को असत् (अथवा तुच्छ) रूप मानने पर कार्य (जगत्) असत् रूप सिद्ध होना चाहिए किन्तु यह प्रतीति-विरुद्ध है।

क्षणभङ्गवाद के विरुद्ध उपर्युक्त सामान्य बिन्दुओं के माध्यम से ही आचार्य ने वैभाषिक, सौत्रान्तिक और विज्ञानवाद की तत्त्वमीमांसा का खण्डन किया है। इस नीति का लक्ष्य द्विविध संघात (श्रीभाष्य, २/२/१७, १८, १९, २०, २१, २२), त्रिविध असंस्कृत धर्म (वही, २/२/२१, २३), अर्थक्रियाकारिता (वही, २/२/२४), आलयविज्ञान, विज्ञानसन्तति, विज्ञान-वासना-सम्बन्ध, ज्ञान-सादृश्य (वही), स्मृति-प्रत्यभिज्ञा (वही, २/२/२४) आदि अवधारणाएँ बनी हैं। समस्त आलोचना का लक्ष्य, प्रत्येक स्तर पर क्षणभङ्गवाद की असङ्गतियों को उद्घाटित करना और परमार्थ व व्यवहार की सिद्धि में उसकी क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगाना है।

क्षणभङ्गवाद की असङ्गतियों को रामानुज ने न केवल तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से अपितु ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से भी उद्घाटित किया है। उनकी आलोचना की ध्वनि यह भी है कि पूर्वपक्ष का यह मत बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था से भी सुसङ्गति नहीं रखता है।

पारिभाषिक शब्द

बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों के सन्दर्भ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की समीकृत सूची इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है-

सम्प्रदायसूचक- बाह्यार्थास्तिवादी, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार विज्ञानवाद, माध्यमिक शून्यवाद, क्षणभङ्गवाद।

तत्त्वसूचक- परमाणु, चित्त, चैतसिक, क्षणिक, संघात, सन्तान, समुदाय, क्षण (क्षणिक), संस्कार, विज्ञान, षडायतन, वेदना, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध, अर्थक्रियाकारित्व, शून्य, आकाश, सहोपलम्भनियम।

कार्यकारणसूचक- अधिपति प्रत्यय, सहकारी प्रत्यय, आलम्बन प्रत्यय, समनन्तर प्रत्यय, हेतु।

प्रमाणमीमांसीय और निर्वाण-विषयक पारिभाषिक शब्दों का यहाँ प्रयोग नहीं दिखाई देता है। प्रत्यक्ष, अनुमान इत्यादि शब्द उपलब्ध हैं और बौद्ध दर्शन

१. (a) तन्मतेऽपि जगदुत्पत्तिरित्यव्यवहारादिकं नोपपद्यत इत्युच्यते। श्रीभाष्य, २/२/१७.
- (b) क्षणिकत्वासदुत्पत्त्यहेतुकं विनाशाद्यध्युपगमे उदासीनानामनुष्ठानानामपि सर्वाधीनसिद्धिः स्यात्, इष्टप्राप्तिरनिष्टनिवृत्तिर्वा प्रयत्नादिभिः साध्यते। वही, २/२/२६.

में इनके विलक्षण स्वरूप भी हैं। किन्तु यहाँ इन शब्दों का प्रयोग सामान्य अर्थ में ही किया गया है, इसलिए इन्हें पारिभाषिक शब्द नहीं कहा जा सकता है।

४. निम्बार्काचार्य

(अ) परिचय

आचार्य निम्बार्क (११वीं शताब्दी) का सम्प्रदाय **हंससम्प्रदाय** के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि भगवान् ने हंस के रूप में सबसे पहले इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को सनक आदि ऋषियों को सिखलाया। उन सबने फिर कुमार को सिखलाया तथा कुमार ने नारद व नारद से निम्बार्काचार्य को ये उपदेश मिले।^१ इस प्रकार आचार्य निम्बार्क के सम्प्रदाय का उक्त नामकरण हुआ। ये निम्बापुर या नैदूर्यपत्तन वाले तैलङ्गी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अरुण मुनि व माता का जयन्त देवी था। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी शक्ति से एक संन्यासी को नीम के पेड़ पर सूर्य के अस्त हो जाने पर भी सूर्य का दर्शन कराया था। इसीलिए इनका नाम निम्बार्क पड़ा।^२

(आ) ग्रन्थ व सिद्धान्त

आचार्य निम्बार्क द्वारा रचित प्रधान ग्रन्थों में **ब्रसू** पर भाष्य **वेदान्तपारिजातसौरभ** अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह अत्यन्त संक्षिप्त वृत्ति के रूप में है। इसके अतिरिक्त **सिद्धान्तरत्न**, **दशश्लोकी**, **श्रीकृष्णस्तव**, **वेदान्तकौस्तुभ**, **वेदान्तकौस्तुभप्रभा**, **पाञ्चजन्य**, **तत्त्वप्रकाशिका**, **सकलाचार्यमतसंग्रह** आदि की गणना अन्य स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में की जाती है।

आचार्य निम्बार्क का दार्शनिक सिद्धान्त भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैतवाद है। इस मत में जीवात्मा, परमात्मा (ईश्वर) व जड़ (प्रकृति) ये तीन तत्त्व हैं। ये तीनों परस्पर भिन्न हैं। तथापि इनके मत में **चित्** (जीव), **अचित्** (जगत्) से भिन्न होते हुए भी ज्ञाता और ज्ञान का आश्रय है। जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमय है और प्रकाश का आश्रय भी है, उसी प्रकार चित् एक ही काल में ज्ञानस्वरूप व ज्ञान का आश्रय दोनों है।^३

१. वेदान्तपारिजातसौरभ, १/३/८; केशवस्वामी-रचित गीता की टीका.
२. भक्तमाल, सर्ग-२२.
३. निम्बार्क, दशश्लोकी, १.

(इ) बौद्ध सन्दर्भ

विचाराधीन १५ सूत्रों (द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, अधिकरण-३, ४, ५ सूत्र संख्या १८-३२) पर निम्बार्काचार्य ने अपने भाष्य वेदान्तपारिजातसौरभ में बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान सम्प्रदायों की आलोचना की है- सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद।

पूर्वपक्ष

आचार्य निम्बार्क ने भाष्य में सर्वास्तिवाद का स्पष्ट नामोल्लेख न करते हुए, सिद्धान्त विशेष को सुगत-मत के नाम से अभिहित किया है। विज्ञानवाद के सन्दर्भ में भी आचार्य ने अस्पष्टता की यही शैली अपनाई है अर्थात् विज्ञानमात्र का अस्तित्व मानने वाले यह कहकर सम्प्रदाय विशेष को सम्बोधित किया है। सम्प्रदायद्वय के नामकरण की इस शैली के विपरीत भाष्यकार शून्यवाद का स्पष्ट नामोल्लेख करता है।

शून्यवाद के सन्दर्भ में आचार्य ने कोई पूर्वपक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में आचार्य द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष संक्षिप्त है। तथापि अन्य पूर्ववर्ती भाष्यकारों द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष से भिन्न है। भाष्यकार द्वारा सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में प्रस्तुत पूर्वपक्ष की मान्यता इस प्रकार है- परमाणुओं से भूत-भौतिक तथा अविद्या, संस्कार आदि से चित्त-चैतन्य समुदायों की सिद्धि होती है (२/२/१८, १९) तथा चार प्रकार के हेतु (इन्द्रियाँ, आलोक, मनस्कार व विषय) से विज्ञान की उत्पत्ति (२/२/२१)। सर्वास्तिवाद, आकाश को अभावरूप मानता है, ऐसा पूर्वपक्ष दिखाया गया है जो बौद्ध पक्ष के विरुद्ध है। इसी प्रकार असत् से कार्योत्पत्ति की मान्यता को भी पूर्वपक्ष की ओर से प्रस्तुत करना अनुचित प्रतीत होता है (वही)।

सर्वास्तिवाद के पश्चात्, विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष को आचार्य ने अत्यन्त संक्षिप्त स्वरूप में प्रस्तुत किया है। विज्ञानवाद के सन्दर्भ में प्रस्तुत पूर्वपक्ष की मान्यता यह है-

विज्ञानवाद ज्ञानों में वैचित्र्य का कारण बाह्यार्थ को नहीं वासना को मानता है (२/२/३०)।

पारिभाषिक शब्द

वेदान्तपारिजातसौरभ में उल्लिखित समस्त बौद्ध सम्प्रदायों के सन्दर्भ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की समीकृत सूची इस प्रकार है-

सम्प्रदायसूचक- शून्यवाद।

तत्त्वसूचक- भूत, भौतिक, चित्त, चैतसिक, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, संघात, क्षण, क्षणिकत्ववाद, सन्तान, इन्द्रियाँ, आलोक, मनस्कार, विषय, निरोध, ज्ञानवैचित्र्य, वासना, आकाश।

कार्यकारणवादसूचक- हेतु, समुदाय।

अन्य- सुगत।

युक्तियाँ

बौद्धों के सम्प्रदायत्रय के विरुद्ध दी गई युक्तियों के सन्दर्भ में आचार्य के भाष्य में ऐसा कोई भिन्न पक्ष नहीं दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में, प्रस्तुत युक्तियाँ पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दी गई युक्तियों का ही पिष्टपेषण है।

- (i) क्षणभङ्गवाद और तदन्तर्गत कार्यकारणवाद में असत् से उत्पत्ति, उत्पन्न का अकारण विनाश, अचेतन समुदायियों का संघात इत्यादि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनका युक्तियुक्त समाधान प्राप्त नहीं होता है।^१
- (ii) क्षणभङ्गवाद में समस्या केवल यही नहीं है कि संघात की उत्पत्ति कैसे हो, अपितु यह भी समस्या है कि उत्पन्न के प्रवाह का निरोध कैसे हो, मोक्ष का औचित्य कैसे सिद्ध हो और सन्तान से भिन्न संतानी की सिद्धि कैसे हो।^२
- (iii) क्षणभङ्गवाद में कार्यकारणभाव की युक्तियुक्त सिद्धि संभव नहीं है। पूर्वपक्ष की अर्थात् कारण की स्थिति मानते हुए कार्योत्पत्ति मानने में कारण-कार्य के यौगपद्य का दोष है।^३
- (iv) अभाव से भावोत्पत्ति मानना प्रत्यक्ष-विरुद्ध है।^४

१. (a) तेषामपि संघातं प्रत्यकारणत्वात्। वेदान्तपारिजातसौरभ, २/२/१९.
 (b) समुदायिनां अचेतनत्वादस्य संहतिहेतोरनभ्युपगमाच्च समुदायासंभवः। वही, २/२/१८.
 (c) उत्तरोत्पादे पूर्वस्य क्षणिकत्वेन विनष्टत्वात्। वही, २/२/२०.
२. (a) सहेतुकनिर्हेतुकयोर्निरोधयोरसंभवः। वही, २/२/२२.
 (b) संतानविच्छेदस्यासंभवात् संतानिनां च प्रत्यभिज्ञायमानत्वाच्च। वही.
 (c) संतानस्य संतानिव्यतिरिक्तवस्तुत्वाभावात्। वही, २/२/२३.
 (d) संतानिनां च क्षणिकत्वादविद्यादिनिरोधो मोक्ष इत्यपि तन्मतमसंगतम्। वही.
३. सति हेतौ कार्योत्पादाङ्गीकारे पूर्वस्मिन् क्षणे स्थिते सति क्षणान्तरोत्पत्तिर्भवेत्, इदं यौगपद्यं भवतां क्षणिकवादिनां मते स्यात्। वही, २/२/२१.
४. अभावात् भावो न जायते अदृष्टत्वात्। वही, २/२/२६.

- (v) क्षणभङ्गवाद में प्रत्यभिज्ञा की सिद्धि असम्भव है।^१
- (vi) आकाश और पृथिवी आदि में भेद मानना अयुक्तिक है।^२
- (vii) बिना कारण के कार्योत्पत्ति मानने से लोक में अविद्या और आलस्य प्रतिष्ठित हो जायगा।^३
- (viii) विज्ञानवादी बाह्यार्थ की सत्ता का सर्वथा निषेध नहीं कर सकता क्योंकि उसकी उपलब्धि होती है।^४
- (ix) विज्ञानवाद में स्वप्न के उदाहरण से जाग्रत अवस्था के भाव पदार्थ की समानता सिद्ध नहीं की जा सकती क्योंकि दोनों में वस्तुतः आलम्बन होता है।^५
- (x) विज्ञानों में वैचित्र्य का कारण वासना को इसलिये भी नहीं माना जा सकता क्योंकि वासना में वैचित्र्य पदार्थ के कारण आता है और बाह्यार्थ की सत्ता का विज्ञानवाद निषेध करता है। इसलिए वासना की कारणता में बाह्यार्थ की सत्ता भी अन्तर्भूत है तथा इसके अतिरिक्त क्षणिक विज्ञानवाद में वासना के आश्रय का भी अभाव है।^६
- (xi) शून्यवाद भ्रान्तिमूलक सिद्धान्त है तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध है।^७

५. मध्वाचार्य

(अ) परिचय

वैष्णव वेदान्त के द्वैतवादी आचार्य मध्व का जन्म ११९९ ई. - १३०३ ई. में कन्नड़ प्रदेश के उडुली जिले के अन्तर्गत विल्व नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मध्यदेव और माता का नाम देवता था। इनका प्रसिद्ध नाम आनन्दतीर्थ व पूर्णप्रज्ञ था किन्तु पिता इन्हें वासुदेव कहा करते थे। इन्होंने बहुत अल्प समय में ही संन्यास ग्रहण करने की उत्कट इच्छा प्रकट की थी किन्तु

१. इदं तदिति प्रत्यभिज्ञा च तद्दर्शनमसत्। वेदान्तपारिजातसौरभ, २/२/२५.
२. पृथिव्यादिभिरविशेषात्। वही, २/२/२४.
३. अन्यथाऽनुपायतोविद्याद्यर्थसिद्धिः स्यात्। वही, २/२/२७.
४. ...किन्तु भाव एव... कुत उपलब्धेः। वही, २/२/२८.
५. स्वप्नादिप्रत्ययदृष्टान्तेनापि न जाग्रत प्रत्ययार्था भावः प्रतिपादयितुं शक्यः, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात् स्वप्नज्ञानस्यापि सालम्बनाच्च। वही, २.२.२९.
६. (a) न संभवति तव मते बाह्यार्थानामनुपलब्धेः। वही, २/२/३०.
(b) न वासनाभाव आश्रयस्य तव मते, क्षणिकत्वात्। वही, २/२/३१.
७. शून्यवादोऽपि भ्रान्तिमूलः। सर्वथानुपपन्नत्वात्। प्रत्यक्षादिप्रमाणविरोधात्। वही, २/२/३२.

माता-पिता के अनुरोध से इनकी इच्छा पूरी न हो सकी। कुछ दिन बाद जब इनकी माता को दूसरा पुत्र हुआ, तब इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और पूर्णप्रज्ञ नाम से प्रसिद्ध हुए।

इसके बाद यह भारत-भ्रमण के लिए निकले और हरिद्वार पहुँचे। यहाँ कुछ दिन रहकर वे बदरिकाश्रम चले गए तथा वहाँ इन्होंने योगाभ्यास व साधना की। कहा जाता है कि साधना के अन्त में व्यासदेव ने इन्हें दर्शन दिया और वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए तथा ब्रसू पर भाष्य रचने की आज्ञा दी। मध्वाचार्य द्वारा स्थापित वेदान्त का द्वैतवादी सम्प्रदाय ब्रह्मसम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है।

(आ) ग्रन्थ एवम् सिद्धान्त

आचार्य मध्व ने शाङ्कर अद्वैतवाद की प्रतिक्रियास्वरूप द्वैतवादी दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना की तथा इस दार्शनिक वैशिष्ट्य को उन्होंने अनेकानेक ग्रन्थ-लेखन द्वारा प्रकट किया।

आचार्य मध्व-रचित प्रधान ग्रन्थों में प्रस्थानत्रय पर भाष्य, ब्रसू पर पूर्णप्रज्ञभाष्य, उपभाष्य व गीताभाष्य प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त ब्रसू पर अणुव्याख्यान नामक ग्रन्थ व भागवतपुराण पर भागवत-तात्पर्य-निर्णय टीका भी उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। उपाधिखण्डन, मायावादखण्डन, तत्त्वोद्योत, तत्त्वविवेक, तत्त्वसंख्यान आदि भी मध्व की रचनाएँ बताई जाती हैं।

अन्य वैष्णव वेदान्त-सम्प्रदायों के समान मध्व ने भी शाङ्कर के विरोध में सविशेष ब्रह्मवाद, परिणामवाद, जगत्सत्यत्व, भक्तिवाद आदि सिद्धान्तों का समर्थन किया है। तथापि कुछ अंशों में वैष्णव वेदान्त की परम्परा से हटकर वह वस्तुवादी द्वैतवाद^१ का अथवा आत्यन्तिक भेदवाद का प्रतिपादन भी करते हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रह्म, जीव एवं जड़ जगत् में अभेद न मानकर भेद सिद्ध करना ही आचार्य मध्व के द्वैतवादी दर्शन का वैशिष्ट्य है।^२ वेदान्त के साथ न्याय-वैशेषिक एवं सांख्य के सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करना मध्व के दार्शनिक सिद्धान्त की एक अन्य विलक्षणता है।

१. इसका द्वैतवाद नाम कार्य-कारण-सम्बन्ध की दृष्टि से नहीं रखा गया है। इस मत में निमित्त कारण और उपादान कारण का आत्यन्तिक भेद या द्वैत मान्य है इसलिए भी द्वैत नाम सार्थक माना जा सकता है।

२. Ghate, *The Vedanta*, p. 33.

(इ) बौद्ध सन्दर्भ

पूर्वपक्ष- विचाराधीन १५ सूत्रों (द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, अधिकरण-७, ८, ९ सूत्र संख्या १८-३२) पर मध्वाचार्य ने अपने भाष्य **पूर्णप्रज्ञ** में बौद्ध पूर्वपक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

सर्वास्तिवाद

आचार्य मध्व ने, सर्वास्तिवाद को **परमाणुपुञ्जवाद** के नाम से अभिहित किया है। इसके अन्तर्गत परमाणु-समुदाय, क्षणभङ्गवाद, कार्यकारणभाव और संस्कृत धर्मों की अवधारणाओं की परीक्षा की गई है। ध्यातव्य है कि क्षणभङ्गवाद के पूर्वोत्तर क्षण को यहाँ कारण और कार्य के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है जो बौद्ध मत की दृष्टि से उचित नहीं है।

विज्ञानवाद

सूत्र २/२/३०-३१ में प्रस्तुत विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष की यह विशेषता है कि इन दो सूत्रों में से सूत्र (क्षणिकत्वाच्च २/२/३१) का प्रयोग पूर्ववर्ती आचार्य शङ्कर द्वारा जहाँ शून्यवाद व विज्ञानवाद (सम्प्रदायद्वय) के सन्दर्भ में किया गया था वहीं आचार्य मध्व ने इस सूत्र के माध्यम से मात्र विज्ञानवाद की समीक्षा की है। यदि सिद्धान्त की दृष्टि से देखें तो क्षणिकवाद का सम्बन्ध शून्यवाद से नहीं अपितु बाह्यार्थवाद व विज्ञानवाद से है। अतः **क्षणिकत्वाच्च** सूत्र द्वारा शून्यवाद का खण्डन न कर विज्ञानवाद का खण्डन किया जाना जहाँ बौद्ध दर्शन के पक्ष में उचित प्रतीत होता है वहीं दूसरी ओर बौद्ध दर्शन के प्रति शङ्कर की तुलना में मध्व के दृष्टिकोण के वैलक्षण्य को भी दर्शाता है।

शून्यवाद

पूर्णप्रज्ञभाष्य के सूत्र २/२/२६-२९ में शून्यवाद की समालोचना प्राप्त होती है। यहाँ एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि इन चारों सूत्रों का प्रयोग, पूर्व भाष्यकारों ने जहाँ विज्ञानवाद के सन्दर्भ में किया था वहीं आचार्य मध्व ने, इन सूत्रों के माध्यम से शून्यवाद को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। मध्वाचार्य के मतानुसार शून्य व अभाव शब्द पर्यायवाची हैं।

पारिभाषिक शब्द

पूर्णप्रज्ञभाष्य में उल्लिखित समस्त बौद्ध सम्प्रदायों के सन्दर्भ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की समीकृत सूची अधोलिखित है-

सम्प्रदायसूचक- परमाणुपुञ्जवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद।

तत्त्वसूचक- समुदाय, परमाणु, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध, आकाश, सन्तान, क्षणिक, विज्ञान, शून्य।

कार्यकारणसूचक- हेतु।

युक्तियाँ

आचार्य मध्व ने भाष्य के माध्यम से बौद्ध सम्प्रदायों की अवधारणाओं का युक्तिपूर्वक संक्षिप्त खण्डन प्रदर्शित किया है। सम्मिलितरूप में और सम्प्रदायानुसार उनकी खण्डनात्मक युक्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

- (i) सभी बौद्ध सम्प्रदायों की प्रधान अवधारणाएँ, इसलिए स्वीकार योग्य नहीं हैं कि उनकी सिद्धि प्रमाणों से नहीं होती है तथा वे सभी श्रुति, स्मृति और युक्तियों के विरुद्ध हैं।^१ प्रमाणाभाव की युक्ति को यहाँ न्यायोचित्त कहा जा सकता है किन्तु श्रुति, स्मृति से बौद्ध अवधारणाओं का विरोधी होना, दोष-कोटि में नहीं आता है।
- (ii) पूर्व एवं उत्तर क्षण में परस्पर अपेक्षा अर्थात् कार्यकारणभाव की सुसङ्गत व्याख्या न होने से क्षणभङ्गवाद युक्तियुक्त नहीं है।^२
- (iii) समुदाय की सिद्धि के लिए एक को कारण मानना अपर्याप्त है, एकाधिक कारण मानने पर अन्योन्याश्रय दोष आता है। इसके साथ ही एक अथवा अनेक (कारणों) को न मानने पर भी यदि समुदाय कल्पित किया जाता है तो यह असत् से सत् की उत्पत्ति का प्रसङ्गा होगा।^३
- (iv) कारण के होने पर कार्य अवश्य होता है, इस स्थिति में क्षणभङ्गवादानुसार जहाँ एक ओर सदा कार्योत्पत्ति होती रहेगी वहीं दूसरी ओर कार्य-कारण में भेद की व्यवस्था नहीं बन सकेगी।^४

१. प्रमाणाभावात् सर्वश्रुतिस्मृतियुक्तिविरुद्धत्वाच्च नैते पक्षा ग्राह्याः। पूर्णप्रज्ञभाष्य, २/२/३२.
२. न, एकं कार्यमुत्पाद्य तस्य विनष्टत्वात् परस्परप्रत्ययस्तदपेक्षया व्यवहार इति न युज्यते। वही, २/२/१९.
३. (a) समुदायस्यैकहेतुत्वं न युज्यते। वही, २/२/१८.
(b) उभयहेतुकेऽप्यन्योन्याश्रयत्वात्तदप्राप्तिः। वही.
(c) सर्वदाविद्यमानोऽपि समुदायः परस्परापेक्षया व्यवहियत।...कारणे सति कार्यं भवत्येवेति हि तस्य नियमः। वही, २/२/१९.
४. (a) कारणे सति कार्यं भवति एवेति नियमाभात्। वही, २/२/२२.
(b) कारणे सति कार्यं भवत्येवेति नियमे...। वही, २/२/२३.
(c) सर्वदा कार्याभावान्न कार्यकारणविशेषः। अनियमे कार्यानुत्पत्तिः। वही.

- (v) क्षणभङ्गवाद में कार्य के विनाश की व्यवस्था भी युक्तिसङ्गत नहीं है।^१
- (vi) क्षणभङ्गवाद के साथ आकाश को नित्य मानना असङ्गत है।^२
- (vii) व्यवहार में उपयोगी तथा अनुभव की जाने वाली प्रत्यभिज्ञा को भ्रान्ति मानना उचित नहीं है तथा साथ ही क्षणभङ्गवाद में इसका व्यावहारिक स्वरूप भी घटित नहीं हो सकता।^३
- (viii) जगत् को विज्ञानमात्र मानना अनुभव विरुद्ध है।^४
- (ix) बौद्ध विज्ञानवादी बाह्य पदार्थ को स्थायी और ज्ञान को क्षणिक मानते हैं। अतः इन दोनों में ऐक्य नहीं हो सकता।^५ मध्व की यह युक्ति बौद्ध मत के साथ न्याय नहीं करती है क्योंकि किसी भी बौद्ध सम्प्रदाय ने ज्ञान की क्षणिकता, बाह्य पदार्थ की स्थिरता और फिर इन दोनों की एकता का मत प्रस्तुत नहीं किया है। जहाँ तक विज्ञानवाद का प्रश्न है वह विज्ञान-संतति के आभास के रूप में बाह्य पदार्थ को मानता है।
- (x) शून्य को अभाव के अर्थ में ग्रहण करते हुए आचार्य इसे व्यवहार-विरुद्ध, प्रमाण-विरुद्ध, कार्योत्पत्ति में सर्वथा असमर्थ और लोक के लिए अहितकारी मानते हैं।^६

६. वल्लभाचार्य

(अ) परिचय

दक्षिण भारत के तैलङ्ग ब्राह्मण वल्लभ (१४८१ ई.-१५३३ ई.) ने

१. (a) कार्योत्पत्तावेव कारणस्य विनाशाच्च न विशेषकार्योत्पत्तिः। पूर्णप्रज्ञभाष्य, २/२/२०.
 - (b) तत्काले कारणमस्ति चेत् विनाशकारणाभावाद् योगपट्टं सर्वकार्यणाम्। वही, २/२/२१.
 - (c) निःसंतानः ससन्तानश्च विनाशो न युज्यते। वही, २/२/२२.
 २. दीपादिषु विशेषदर्शनात् क्षणिकत्वेनान्यत्रापि क्षणिकत्वमनुमीयते चेदाकाशादिष्विशेष-दर्शनादन्यत्रापि तदनुमीयते। वही, २/२/२४.
 ३. प्रत्यभिज्ञाया भ्रान्तिवत्त्वे विशेषदर्शनस्यापि भ्रान्तित्वम्। वही, २/२/२५.
 ४. न विज्ञानमात्रं जगत् तथानुभवाभावात्। वही, २/२/३०.
 ५. ज्ञानं क्षणिकं, अर्थानां च स्थायित्वमुक्तं, अतश्च नैक्यम्। वही, २/२/३१.
 ६. (a) न च जगदेव शून्यमिति वाच्यम् दृष्टत्वात्। वही, २/२/२८.
 - (b) न च दृष्टस्यापि स्वप्नादिवदभावः। तस्योत्तरकाले स्वप्नोऽयं नायं सर्प इत्याद्यनुभवात्। न चात्र तादृशं प्रमाणमस्ति। वही, २/२/२९.
 - (c) अदृष्टत्वादसतः कारणत्वं न युज्यते। वही, २/२/२६.
 - (d) असतः कारणत्वे उदासीनानां हेयोपादेयबुद्धिवर्जितानां खपुष्पादीनामपि सकाशात् कार्यसिद्धिः। वही, २/२/२७.
७. विद्म- वर्मा, राजलक्ष्मी, आचार्य वल्लभ और उनका दर्शन।

अधिकांश जीवन वाराणसी में तथा आसपास के क्षेत्रों में अपने अध्ययन एवं शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रचार में बिताया था। उनका सम्प्रदाय **रुद्र-सम्प्रदाय** एवं **तुष्टिमार्ग** के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण तीन बार किया था तथा उनके अनुयायियों में सभी वर्गों के व्यक्ति आते हैं। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि व अग्नि का रूप मानकर शङ्कर के अद्वैतवाद का खण्डन अथवा भागवत (वैष्णव मत) का मण्डन किया था।^१

(आ) ग्रन्थ एवं सिद्धान्त

वल्लभ ने अपने शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन प्रधानरूप से **ब्रसू** पर **अणुभाष्य** नामक ग्रन्थ लिखकर किया है। **श्रीमद्भागवतपुराण** पर **सुबोधिनी** नामक व्याख्या भी आपकी प्रसिद्ध कृति है। एक दृष्टि से गीता व भागवत एक स्तर पर तथा वेद व ब्रसू दूसरे स्तर पर रखे जाते हैं। आचार्य वल्लभ का यह वैशिष्ट्य है कि इन्होंने प्रस्थानत्रय के स्थान पर **प्रस्थानचतुष्टय** को महत्त्वपूर्ण माना है। इनके **प्रस्थानचतुष्टय** में- वेद-उप, गीता, ब्रसू व भागवतपुराण समाविष्ट हैं। दूसरे शब्दों में, इस सम्प्रदाय की दृष्टि में उक्त चारों ग्रन्थ एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। वल्लभ का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **तत्त्वार्थदीपनिबन्ध** भी है जिस पर स्वयं वल्लभ ने **प्रकाश** नामक टीका चार भागों में लिखी है।

आचार्य वल्लभ ने शङ्कर की माया, भास्कर की उपाधि, रामानुज के तत्त्वत्रय, निम्बार्क तथा मध्व के भेद अथवा शाक्तों की शक्ति की निमित्त-कारणता का प्रतिवाद करते हुए सच्चिदानन्द स्वरूप एवं सर्वधर्मविशिष्ट ब्रह्म तथा जीव-जगत् के परस्पर सम्बन्ध की समस्या का एक नया समाधान-शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रस्तुत किया है। संक्षेप में, ब्रह्म के माया-सम्बन्ध से अलिप्त होने की मान्यता के कारण यह वल्लभ-सिद्धान्त शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है।^२

(इ) बौद्ध सन्दर्भ

अणुभाष्य में आचार्य ने ब्रसू के विचाराधीन १५ सूत्रों (द्वितीय अध्याय, द्वितीय पाद, अधिकरण- ४, ५) को आधार बनाकर बौद्ध मत के तीन प्रमुख

१. वेदभागान् यथार्थानिपि व्याख्याय सदसद्विलक्षणामसदपरपर्यायामविद्यां सर्वकारणत्वेन स्वीकृत्य तन्निवृत्त्यर्थं जातिभंशरूपं संन्यासपाखण्डं प्रसार्य सर्वमेव लोकं व्यामोहितवन्तः। व्यासोऽपि कलहं कृत्वा शंकरं शप्त्वा तूष्णीमास। अतोऽग्नि मया सर्वतः सदुन्माराय यथाश्रुतानि श्रुतिसूत्राणि योजयता सर्वो मोहो निराकृतो वेदितव्यः। अणुभाष्य, २/२/२६.
२. मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्। शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, २८.

दर्शन-सम्प्रदायों (सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद व माध्यमिक) का स्पष्ट नामोल्लेख करते हुए उनका खण्डन किया है।

पूर्वपक्ष

अणुभाष्य में बुद्ध का सन्दर्भ इस रूप में प्राप्त होता है- श्रुति की इच्छा (मोक्ष के शास्त्र का निर्माण करने के उद्देश्य) से बुद्ध का अवतार हुआ। बुद्ध ने अवताररूप में जन्म लेकर सत्-असत् से विलक्षण अविद्या से सारे जगत् (कार्य) की उत्पत्ति स्वीकार की। जातिवाद का विनाश करने वाले उपदेशों को कहकर वेद-ज्ञान का तिरस्कार किया, पाखण्डपूर्ण संन्यास का प्रचार किया और इस प्रकार की देशना कर संसार को मोहित किया (२/२/२६)।

बाह्यार्थवाद (सौत्रान्तिकवाद) को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए भाष्यकार का कथन है कि परमाणु-समूह अर्थात् पृथ्वी आदि भूतों का समुदाय तथा स्कन्ध-समूह अर्थात् रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा व संस्कार- पञ्चस्कन्धों के समुदाय के सम्बन्ध से जीव की सांसारिकता बनती है। अतः ये समुदाय जीव के भोग के लिए हैं। इन दोनों समुदायों के सम्बन्ध की समाप्ति का नाम मोक्ष है।

प्रस्तुत पूर्वपक्ष का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि भाष्यकार पूर्वाचार्यों के सदृश बाह्यार्थवाद की आलोचना के लिए क्षणभङ्गवाद को प्रधान आधार बनाते हुए इसके अन्तर्गत कार्यकारणवाद, समुदाय की अनुपपत्ति और असंस्कृतधर्म की असङ्गतियों का व्याख्यान तत्त्वमीमांसीय व मोक्षपरक दोनों दृष्टियों से करता है। तथापि शङ्कर के पश्चात् पुनः एक बार यहाँ बौद्ध सम्प्रदाय को **वैनाशिक** के नाम से सम्बोधित किया गया है (२/२/२१)।

आचार्य द्वारा प्रस्तुत विज्ञानवाद के पूर्वपक्ष में यद्यपि कोई नवीनता नहीं है अर्थात् मतविशेष की दृष्टि से यह भाष्य पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष का अनुकरण मात्र है। तथापि उल्लेखनीय पक्ष यह है कि इसमें भाष्यकार ने विज्ञान की विचित्रता, वासना की अनादिता आदि समस्याओं पर विचार करते हुए अन्ततः विज्ञान तत्त्व का खण्डन न कर विज्ञानाभास रूप प्रपञ्च की असत्यता का खण्डन किया है। विज्ञानवाद के प्रति भाष्यकार का यह दृष्टिकोण पूर्ववर्ती आचार्यों के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है (२/२/२८-३०)। बाह्य पदार्थ यदि विज्ञानाभास नहीं हैं तो क्या हैं और क्या इसका तात्पर्य बाह्यार्थ की सिद्धि माना जाए। यदि बाह्यार्थ हैं तो यह बौद्ध दर्शन का बाह्यार्थवाद होगा किन्तु यह विज्ञानवाद और वल्लभ-दर्शन दोनों के ही विपरीत है अर्थात् यहाँ खण्डन की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

ब्रसू में शून्यवाद का स्पष्ट संकेत न प्राप्त होते हुए भी वल्लभाचार्य ने भाष्य (२/२/३१) में माध्यमिक मत की चर्चा की है। भाष्यकार के मतानुसार यह सम्प्रदाय मायावादियों (?) की तरह अनर्गल प्रलाप करने वाला तथा उपेक्षा योग्य है।

शून्यवाद के प्रति वल्लभाचार्य की टिप्पणी न केवल माध्यमिकों के प्रति उनके अन्तर्भाव को व्यक्त करती है अपितु शङ्कर के प्रति भी उनकी भावना को उजागर करती है। भाष्यकारों का बौद्ध मत से विरोध तो ब्रह्मसूत्रकाल से प्रारम्भ हो गया था क्योंकि ब्रसू में ही इसका प्रावधान कर दिया गया था किन्तु बौद्ध दर्शन के विरोधी शङ्कर को भी बौद्ध दर्शन के ही पक्ष का मान लेना, यह ब्रसू की भावना से आगे बढ़ना है और वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्धों में साम्य और वैषम्य खोजने की परम्परा को अभिनव आयाम देना है। वल्लभ ने मायावादियों के नाम से जिस मत की ओर संकेत किया है वह आचार्य शङ्कर का ही है इसमें कोई सन्देह नहीं है क्योंकि बौद्ध मत और शङ्कर की निकटता अथवा समानता की ओर वल्लभ से पूर्व रामानुज अधिक तीक्ष्णतापूर्वक ध्यान आकृष्ट कर चुके थे।

पारिभाषिक शब्द

अणुभाष्य में उल्लिखित समस्त बौद्ध सम्प्रदायों के सन्दर्भ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की समीकृत सूची अधोलिखित है-

सम्प्रदासूचक- बाह्यार्थवाद, सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद, माध्यमिक।

तत्त्वसूचक- क्षणिक, प्रत्यय, क्षणिकत्वप्रतिज्ञा, चित्त, चैत, संस्कृत, आकाश, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध, बाह्यार्थ, वासना, ज्ञानवैचित्र्य, आलयविज्ञान, सन्तति।

कार्यकारणवादसूचक- हेतु, समुदाय, प्रतीत्या।

मोक्षसूचक- निरोध।

युक्तियाँ

बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों की अवधारणाओं का खण्डन करते हुए आचार्य वल्लभ ने जो युक्तियाँ दी हैं, उनमें अनेकत्र पिष्टपेषण है तथापि संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है-

- (i) क्षणभङ्गवादी दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। एक ओर वस्तु को क्षणिक मानते हैं तथा दूसरी ओर उसके चार प्रकार के हेतु भी बताते हैं।^१

१. एका क्षणिकत्वप्रतिज्ञा, अपरा चतुर्विधान् हेतून् प्रतीत्य चित्तचैत्ता उत्पद्यन्त इति।
अणुभाष्य, २/२/२१.

- (ii) पूर्वक्षण का विनाश मानने पर अथवा विनाश न मानने पर अर्थात् दोनों स्थितियों में कार्य का प्रादुर्भाव कैसे होगा।^१
- (iii) अविद्या के विनाश मात्र को मोक्ष मानने की क्षणभङ्गवादियों की मान्यता उचित नहीं है तथा यह उसी प्रकार दोषपूर्ण है जैसे मिथ्यावादी अद्वैत वेदान्ती मानते हैं।^२
- (iv) अभाव से भावोत्पत्ति की मान्यता लोक में ज्ञान और श्रम के प्रति उदासीन रहने वालों के प्रोत्साहन का कारण बन जाएगी।^३
- (v) क्षणभङ्गवाद में सबको क्षणिक मानना न केवल समुदाय की सिद्धि में बाधक है अपितु इससे प्रमाता द्वारा उसका ज्ञान भी संभव नहीं होगा।^४
- (vi) क्षणभङ्गवाद की मान्यता इस प्रकार की है जिससे पूर्व क्षण, उत्तर क्षण, उनमें परस्पर कार्यकारण भाव उनके एक स्थिर ज्ञाता द्वारा ग्रहण तथा समुदायियों में सम्बन्ध के पुनः विच्छेदक के अभाव इत्यादि समस्याओं का युक्तिसङ्गत समाधान प्राप्त नहीं होता (इनमें से किसी की भी सिद्धि नहीं होती)।^५
- (vii) सृष्टि, स्थिति और प्रलय की विभिन्न क्रियाओं की क्षणभङ्गवाद में सुसङ्गत व्याख्या का अवसर नहीं है।^६
- (viii) संघात के रूप में क्षणों की एकता मानते हुए, क्षणभङ्गवादी प्रथम, द्वितीय क्षणों की अवधारणाओं को स्वयं ही असिद्ध करता है।^७
- (ix) एक ओर सन्तति-प्रवाह मानना तथा दूसरी ओर बिना कारण के उनका निरोध मानना परस्पर असङ्गत है।^८

१. अनुपमद्वयं प्रादुर्भावं वैनाशिकाः मन्यन्ते। अणुभाष्य, २/२/२६.
२. प्रतिसंख्याननिरोधान्तर्गतविद्याविनाशो मोक्ष इति क्षणिकवादिनो (मिथ्यावादिनश्च) मन्यन्ते। वही, २/२/२३.
३. यद्यभावाद्धोत्पत्तिरङ्गीक्रियते तथा सत्युदासीनानामपि साधनरहितानां सर्वोपि धान्यादिः सिध्येत, अभावस्य सुलभत्वात्। वही, २/२/२७.
४. (a) तत्र उभयहेतुकेपि समुदाये जीवस्य तदप्राप्तिः। वही, २/२/१८.
(b) क्षणिकत्वात्, सर्वक्षणिकत्वे जीवमात्रक्षणिकत्वे वा तदप्राप्तिः। वही.
५. (a) क्षणिकत्वेपि पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरप्रत्ययविषयत्वात् कारणत्वात् सन्ततेरेव जीवत्वाज्जडत्वाच्च न काप्यनुपपत्तिरिति। वही, २/२/१९.
(b) न, उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्, अनुसन्धानाध्युपगमे स्थिरत्वापत्तिः, सम्बन्धवियोगार्थं को वा यतेत? स्थैर्याभावात् समुदायानुपपत्तिश्च। वही.
६. उत्तरोत्पत्तिरपि न सम्भवति, खलूत्यादकत्वं, अत उत्तरोत्पत्तिसमये पूर्वस्य नष्टत्वादुत्पत्तिक्षण एव स्थितिप्रलयकार्यकारणसर्वाङ्गीकारे विरोधादेकेमपि न स्यात्। वही, २/२/२०.
७. द्वितीयः क्षणिकाङ्गीकारेणैव सिद्धत्वान्नाङ्गीकर्तव्यः। वही, २/२/२२.
८. निरोधद्वयमपि न प्राप्नोति सन्ततेरविच्छेदात्, पदार्थानाञ्च नाशकसम्बन्धाभावात् प्रतिबन्धसम्बन्धाभावः, आद्यो निरोधः, पदार्थविषयको व्यर्थः। वही.

- (x) अविद्या एकाकी नहीं, सपरिवार होती है अर्थात् सबला होती है और उसका बिना कारण के विनाश मानना वैसा ही है जैसे रज्जु में प्रतीत होने वाले सर्प का वन्ध्यापुत्र द्वारा विनाश मानना। यह मान्यता शास्त्रों को भी विफल करती है।^१
- (xi) असत् से कार्योत्पत्ति नहीं होती।^२
- (xii) पृथिवी आदि से आकाश में कोई वैशिष्ट्य नहीं है जिससे उसे भिन्न स्वरूप (निरुपाख्य) माना जाए।^३
- (xiii) स्थिर प्रमाता के बिना स्मृति, अनुभव की व्याख्या संभव नहीं है।^४
- (xiv) क्षणभङ्गवाद एक ओर वस्तु की क्षणिकता मानता है तथा दूसरी ओर चार प्रकार के हेतुओं से संघात की उत्पत्ति मानता है। यह उचित नहीं है क्योंकि प्रथम क्षण की वस्तु का द्वितीय क्षण की वस्तु से सम्बन्ध मानने पर वस्तु की क्षणिकतारूप प्रथम प्रतिज्ञा भङ्ग होगी, न मानने पर हेतुओं से कार्योत्पत्तिरूप दूसरी प्रतिज्ञा भङ्ग होगी और द्वितीय प्रतिज्ञा भी न मानने पर किसी प्रतिबन्धक के न रहने पर सबसे सबकी एक साथ उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा जो अनुभवविरुद्ध है।^५
- (xv) बौद्ध बाह्यार्थवाद में अर्थात् बाह्यार्थ की क्षणिकता मानने में कोई गम्भीरता नहीं है। इस मत पर जितना भी विचार किया जाए इसकी (प्रमाण-अनुभव से) असम्बद्धता अधिकाधिक प्रकट होती जाती है।^६
- (xvi) बौद्ध मत का सबसे बड़ा दोष इसकी वेदविरोधिता है।^७
- (xvii) बाह्य जगत् का अभाव सिद्ध नहीं होता क्योंकि वह उपलब्ध होता है।^८

१. अविद्यायाः सपरिकराया निहेतुकविनाशे शास्त्रवैफल्यं, अविद्यातत्कार्यातिरिक्तस्याभावात् सहेतुकोपि, न हि वन्ध्यापुत्रेण रज्जुसर्पो नाशयते। अणुभाष्य, २/२/२३.
२. असत् अलीकात् कार्यं स्यात्, तत्र, अदृष्टत्वात्, न हि शशशृंगादिभिः किञ्चित्कार्यं दृश्यते। वही, २/२/२६.
३. तत्र आकाशेऽपि सर्वपदार्थवद्वस्तुत्वेत्यवहारस्याविशेषात्। वही, २/२/२४.
४. स एवायं पदार्थ इत्यनुस्मरणात्, अनुभवस्मरणयोरेकाश्रयत्वमेकविषयत्वञ्च। वही, २/२/२५.
५. वस्तुनः क्षणान्तरसम्बन्धे प्रथमप्रतिज्ञा नश्यति, असति द्वितीया, द्वितीयां चेन्नाङ्गीक्रियते तदा प्रतिबन्धाभावात् सर्वे सर्वत एकदेवोत्पद्येत। वही, २/२/२१.
६. बाह्यवादो यथा यथा विचार्यते तथा तथा असम्बद्ध एव। वही, २/२/३२.
७. वेदविरोधो मुख्यः। वही, २/२/३२.
८. अस्य प्रपञ्चस्य नाभाव उपलब्धेः उपलब्धते हि प्रपञ्चः, यस्तूपलभन्नेव नाहमुपलभ इति वदति स कथमुपादेयवचनः स्यात्। वही, २/२/३८.

(xviii) बाह्यार्थ की सत्ता के निषेध के लिए स्वप्न का उदाहरण असङ्गत है क्योंकि स्वप्न के अनुभव का बाध होता है, जाग्रत् अवस्था का नहीं।^१

(xvix) वासना के कारण ज्ञान में वैचित्र्य नहीं माना जा सकता क्योंकि बाह्यार्थ मानने पर ही उसके कारण वासना में वैचित्र्य आता है और तभी उससे ज्ञान में वैचित्र्य का आना सम्भव है।^२

(xx) वासना की सत्ता सिद्ध करने के लिए उसका आश्रय मानना आवश्यक है। आलयविज्ञान यह भूमिका नहीं निभा सकता क्योंकि उसे भी पूर्वपक्ष क्षणिक मानता है।^३

(xxi) माध्यमिक शून्यवाद का सूत्रकार ने ही निरास नहीं किया है क्योंकि यह मत असङ्गत मान्यता के कारण (मायावाद की भाँति) उपेक्षा के योग्य है।^४

७. समीक्षा

ब्रसू पर रचित चार वैष्णव भाष्य-विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत व शुद्धाद्वैत-यद्यपि सिद्धान्त पक्ष की दृष्टि से परस्पर मतभेद रखते हैं किन्तु जहाँ तक बौद्धों का प्रश्न है, इन सभी भाष्यकारों के लिए बौद्ध पूर्वपक्ष है, विरोधी मत है। बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त पक्ष की असङ्गतियों को उद्घाटित करना, प्रत्येक भाष्यकार का मुख्य लक्ष्य है। तथापि इस लक्ष्य की सम्पूर्ति के लिए उनकी शैली व युक्तियों में कुछ साम्य है और कुछ वैषम्य।

ब्रसू में कुल पन्द्रह सूत्रों के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन की आलोचना प्राप्त होती है। किन्तु रामानुज के श्रीभाष्य में क्षणिकत्वाच्च सूत्र उनुपलब्ध होने से यहाँ आलोच्य सूत्रों की कुल संख्या पन्द्रह न होकर चौदह ही है।

आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य में बुद्ध सहित बौद्ध दर्शन के चार प्रधान सम्प्रदायों (वैभाषिक, सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद व शून्यवाद) का न केवल स्पष्ट नामोल्लेख किया है अपितु पूर्वपक्ष के रूप में उनके आन्तरिक व पारस्परिक मतभेदों

- १ न वैधर्म्यात् स्वप्नादिषु, तदानीमेव, स्वप्नान्ते वा वस्तुनोऽन्यथाभावोपलम्भात् न तथा जागरिते। अणुभाष्य, २/२/२९.
२. न वासनानां न भाव उपपद्यते, त्वन्मते बाह्यार्थस्यानुपलब्धेः उपलब्धस्य हि वासनाजनकत्वं, अनादित्वेऽप्यन्यपरम्परान्यायेनाप्रतिष्ठैव अर्थव्यतिरेकेण वासनाया अभावाद्वासनाव्यतिरेकेणाप्यर्थोपलब्धेरन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थसिद्धिः। वही, २/२/३०.
३. वासनाया आधरोपि नास्ति, आलयविज्ञानस्य क्षणित्वादवृत्तिविज्ञानवत्। वही, २/२/३१.
४. माध्यमिकस्तु मायावादिवदित्यसम्बद्धभाषित्वादुपेक्ष्य इति न निराक्रियत आचार्येण। वही, २/२/३१.

का परिचय भी दिया है। श्रीभाष्य में प्रस्तुत पूर्वपक्ष की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें सम्प्रदाय विशेष की मान्यताओं को तत्त्वमीमांसीय व प्रमाणमीमांसीय दृष्टिकोण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

रामानुज द्वारा बौद्ध अवधारणाओं को प्रस्तुत करने और उनके खण्डन के समस्त सन्दर्भों का विश्लेषण करने पर ऐसा निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे बौद्ध पक्ष को भी वेदान्तिक शब्दों और शैली के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। जैसे-

- (i) बौद्ध आचार्य क्षणभङ्गवाद की व्याख्या प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से करते हैं। स्वयं बौद्ध सम्प्रदायों में इस विषय में जो मतभेद हैं वे भी प्रतीत्यसमुत्पाद की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं पर आधारित हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद की यह बौद्ध अवधारणा, वैदिक सम्प्रदायों में मान्य परम्परागत कार्यकारणवाद से भिन्न है। तथापि रामानुज ने सम्पूर्ण बौद्ध सन्दर्भ में प्रतीत्यसमुत्पाद शब्द का उल्लेख न करते हुए इसे कार्यकारणभाव मानकर ही आलोचना की है।
- (ii) बौद्ध साहित्य में कहीं भी तुच्छ शब्द का प्रयोग नहीं है किन्तु आचार्य यहाँ पूर्वपक्ष को प्रस्तुत करने के क्रम में भी इस शब्द का व्यवहार करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि बौद्ध मत तुच्छ कारण से उत्पन्न भाव को भी तुच्छ ही मानता है।^१
- (iii) रामानुज स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि प्रतिसंख्यानिरोध आदि की अवधारणाओं को तुच्छरूप इसलिए सिद्ध किया गया और उनकी तुच्छरूपता का इसलिए भी निराकरण किया गया कि इन अवधारणाओं के माध्यम से (अर्थात् स्थूल विनाश व सूक्ष्म विनाश के माध्यम से) किसी एक स्थिर तत्त्व की सिद्धि की जा सके। उनका तर्क है कि उत्पत्ति और विनाश एक ही तत्त्व की दो अवस्थाएँ हैं।^२
- (iv) क्षणभङ्गवाद में मान्य क्षणिक भाव के प्रादुर्भाव और तिरोभाव की अवधारणा को सीधे-सीधे उत्पत्ति और विनाश के परम्परागत अर्थ में ग्रहण नहीं किया जा सकता। तथापि रामानुज ने ऐसा ही मानकर उसका खण्डन किया है।^३

१. क्षणिकत्वादिभिरभ्युपेता तुच्छादुत्पत्तिः उत्पन्नस्य तुच्छतापत्तिश्च...। तुच्छादुत्पत्तौ तुच्छात्मकमेव कार्यं स्यात्। श्रीभाष्य, २/२/२२.

२. बाह्याभ्यन्तरवस्तुनः स्थिरत्वप्रतिपादनाय प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधयोस्तुच्छरूपता निराकृता, तत्प्रसंगेन ताभ्यां सह तुच्छत्वेन सौगते परिगणितस्याकाशस्यापि तुच्छता प्रतिक्षिप्यते। वही, २/२/२३.

३. सतो निरन्वयविनाशे सत्येकक्षणादूर्ध्वं कृत्स्नस्य जगतः तुच्छतापत्तिरेव स्यात्। वही, २/२/२२.

रामानुज की उक्त शैली से पृथक् आचार्य मध्व के पूर्णप्रज्ञभाष्य में, बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान सम्प्रदायों (परमाणुपुञ्जवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद) को पूर्वपक्ष के रूप में तो दिखाया गया है किन्तु इस प्रस्तुतीकरण में बुद्ध का नामोल्लेख नहीं प्राप्त होता है। एक अन्य उल्लेखनीय पक्ष यह है कि पूर्ववर्ती भाष्यकार शङ्कर (क्षणिकत्वाच्च, सूत्र २/२/३१) के माध्यम से शून्यवाद व विज्ञानवाद (सम्प्रदायद्वय) का उल्लेख करते हैं वहीं आचार्य मध्व ने इस सूत्र को विज्ञानवाद के खण्डन का माध्यम बनाया है।

पूर्वपक्ष की दृष्टि से आचार्य निम्बार्क का भाष्य वेदान्तपारिजातसौरभ, पूर्ववर्ती भाष्यकारों की अपेक्षा सरल व अतिसंक्षिप्त है। लक्षणों की कसौटी से उसे भाष्य कहने में भी संकोच होता है।^१ आचार्य ने पूर्वपक्ष में तो बुद्ध का स्पष्ट नामोल्लेख किया है किन्तु शून्यवाद के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायद्वय (सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद) का नामतः उल्लेख नहीं है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि भाष्य में, विज्ञानवाद व शून्यवाद के नाम से भी किसी मतविशेष का प्रतिपादन नहीं किया गया है। सर्वास्तिवाद के सन्दर्भ में यहाँ प्रस्तुत पूर्वपक्ष अन्य भाष्यकारों द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष की अपेक्षा भिन्नता रखता है।

बौद्ध पक्ष के साथ न्याय का जहाँ तक प्रश्न है तो भाष्यकार ने वाक्यार्थ के आधार पर बौद्ध पूर्वपक्ष को इतने संक्षिप्त स्वरूप में प्रस्तुत किया है कि बिना पूर्वाचार्यों के विवरण को पढ़े, मात्र उससे पूर्वोत्तर पक्ष का तात्पर्य सुस्पष्ट नहीं होता है।

वल्लभ का अणुभाष्य बुद्ध सहित बौद्ध दर्शन के तीन प्रधान दर्शन-सम्प्रदायों (बाह्यार्थवाद अथवा सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद व माध्यमिक) का स्पष्ट नामोल्लेख करता है किन्तु पूर्वपक्ष में प्रतिपादित सिद्धान्त पक्ष की दृष्टि से यहाँ कोई वैशिष्ट्य नहीं दिखाई देता है। पारिभाषिक शब्द व युक्तियों की दृष्टि से भी मौलिकता नहीं है।

युक्तियों के सन्दर्भ में तीन वैष्णव भाष्यों पूर्णप्रज्ञ, वेदान्तपारिजातसौरभ व अणुभाष्य की अपेक्षा रामानुज का श्रीभाष्य अधिक समृद्ध है। आचार्य रामानुज ने तत्त्वमीमांसीय, प्रमाणमीमांसीय, मोक्षपरक व व्यावहारिक सभी प्रधान दृष्टियों से बौद्ध पक्ष के विरोध में युक्तियाँ दी हैं तथापि उनके द्वारा प्रदत्त युक्तियों पर

१. भाष्य का लक्षण तो 'आक्षिप्तभाषणात् भाष्यम्' अर्थात् अपने ही को आक्षेप करते हुए सिद्धान्त की स्थापना की जाए। गोस्वामी, ललितकृष्ण, निवेदा, पृ. ५३.

पूर्ववर्ती भाष्यकार (शङ्कर) का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अन्य तीन भाष्यकार-मध्व, निम्बार्क व वल्लभ आचार्य रामानुज द्वारा दी गई तत्त्वमीमांसीय व ज्ञानमीमांसीय युक्तियों का अनेकत्र पिष्टपेषण करते हुए दिखाई देते हैं।

बौद्ध विरोध की दृष्टि से एकता रखने वाले इन वैष्णव भाष्यकारों की खण्डन शैली ही वस्तुतः एक ऐसा महत्वपूर्ण बिन्दु है जो न केवल बौद्ध दर्शन के प्रति इन भाष्यकारों के आदर/तिरस्कार/विरोध अथवा समन्वय के भाव को प्रदर्शित करती है अपितु वेदान्ताचार्यों अथवा भाष्यकारों के परस्पर सैद्धान्तिक मतभेद को भी प्रकट करती है। उदाहरणार्थ रामानुज ने शङ्कर पर बौद्ध मत के प्रभाव को मानकर उन्हें न केवल **प्रच्छन्न बौद्ध** की उपाधि से विभूषित किया है अपितु अपने भाष्यों में बौद्ध दर्शन का खण्डन करते हुए स्वतन्त्ररूप से शङ्कर के दर्शन पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी की हैं।^१ इसी क्रम में वल्लभ का **अणुभाष्य** भी शङ्कर के प्रति कटु उक्तियों से भरा पड़ा है।^२ इतना ही नहीं सर्वास्तिवाद के प्रति तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करते हुए भाष्यकार ने उसे **वैनाशिक** के नाम से भी संबोधित किया है।



१. ... वेदवादच्छद्मप्रच्छन्नबौद्धनिराकरणे निपुणतरं प्रपञ्चितम्। श्रीभाष्य, २/२/२७.

२. (a) अणुभाष्य, २/२/२६.

(b) अपि च वैनाशिकाः कल्पयन्ति...। वही, २/२/२१.

षष्ठ परिच्छेद

वेदान्त और बौद्ध : संवाद एवं प्रभाव

वेदान्त के प्रधान ग्रन्थों में समामत बौद्ध सन्दर्भों के अध्ययन और विवेचन की इस शोध-योजना के अन्तर्गत पूर्व परिच्छेदों में विषय की प्रस्तावना, कृत-कार्य का सर्वेक्षण तथा ग्रन्थशः सन्दर्भों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इस विश्लेषण में प्रधानरूप से आलोच्य ग्रन्थों के अंशों पर ही ध्यान केन्द्रित रहा है जिसके कारण वहाँ तुलनात्मक विवेचन का अवसर सुलभ नहीं था। इस अन्तिम परिच्छेद में उक्त आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयास किया जाएगा। तथ्यों का विश्लेषण और विवेचन किए बिना सम्यक् निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सकते और अध्ययन के आरोहण द्वारा निष्कर्षरूप शिखर का लक्ष्य प्राप्त करने के बाद अवरोह के माध्यम से उपसंहार के धरातल पर भी आना आवश्यक है- ऐसा मानते हुए निष्कर्ष और उपसंहार के बिन्दुओं का समावेश भी इस परिच्छेद में इष्ट है।

१. संवाद, शास्त्रार्थ और सन्दर्भ

भारतीय संस्कृति के विकास के मूल में लोकतान्त्रिक मूल्य रहे हैं। वैचारिक विविधता और उनमें परस्पर संवाद, विकास की प्रक्रिया के अपरिहार्य अङ्ग रहे हैं। ज्ञान के अक्षय भण्डार वेद का चतुर्धा स्वरूप, उसके आधार पर विकसित ब्राह्मण, आरण्यक, उप आदि के नाना वैचारिक आयाम, पुराणों की बहुलता, ब्रह्मसूत्र पर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से लिखे गए भाष्य आदि सभी इस तथ्य के ऐतिहासिक प्रमाण और उदाहरण हैं कि प्रज्ञा-शील-सम्पन्न मुनियों की इस तपःस्थली में प्रत्येक मुनि का अपना स्वतन्त्र चिन्तन रहा है।^१

वैचारिक विविधता में दीप्ति और सुगन्धि संवाद के बिना सम्भव नहीं है। यह संवाद दो अथवा दो से अधिक विचारधाराओं में कभी प्रत्यक्षरूप में दृष्टिगोचर होता है तो कभी अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति अप्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष संवाद अपनी सुस्थिरता, परिपक्वता और दृढ़ता के चरम पर पहुँच कर शास्त्रार्थ के माध्यम

१. वेदाः विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः।

नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।।

से मुखरित होता है और अनेकानेक शास्त्रार्थों के मन्थन से निकले नवनीत के रूप में सन्दर्भों में अभिव्यक्त होता है। भारतीय शास्त्रीय ग्रन्थों में अत्यन्त सुविचारित और सुव्यवस्थित स्वरूप में दिखाई देने वाले सन्दर्भों की सुदीर्घ और समृद्ध पृष्ठभूमि रही है। इन तीनों के स्वरूप को और अधिक विस्तार से स्पष्ट करना चाहें तो कह सकते हैं कि सन्दर्भ एकाङ्गी, अप्रत्याशित और अनिच्छाजन्य भी हो सकते हैं किन्तु संवाद द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय होता है। यह विवशता से नहीं, आवश्यकता से जन्म लेता है, उसमें मतभेद के बावजूद समानता के अन्तर्वर्ती सूत्र विद्यमान रहते हैं। वह दो या अनेक विचारधाराओं में युक्तिपूर्वक विचारों के आदान-प्रदान के सातत्य को प्रकट करता है। सन्दर्भ की तुलना में वह जुगनु की चमक की तरह क्षणिक नहीं होता अपितु निश्चित परिणति तक विषय को ले जाने का प्रयास करता है और यदि वह संवाद, रोचक, गंभीर और सार्थक हुआ तो उसकी ध्वनि इतिहास में बहुत दूर तक सुनाई देती है। इसी संवाद का एक लोकप्रिय और शास्त्रीय रूप शास्त्रार्थ है। इसके माध्यम से दो विचारधाराएँ सामाजिकों के समक्ष अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं और इसी के माध्यम से उनका और उनके प्रतिनिधि का प्रचार होता है।^१ संवाद और शास्त्रार्थ के रूप में निकला हुआ नवनीत ग्रन्थों में पूर्वपक्ष अथवा सन्दर्भ बन कर अवतरित होता है।

सन्दर्भ से पूर्व संवाद की परम्परा विद्यमान थी, इसके सम्बन्ध में एक अन्य प्रमाण यह भी दिया जा सकता है कि भारतीय दर्शन का (चार्वाक को छोड़कर)^२

१. ज्ञान के विकास की भारतीय शैली में शास्त्रार्थ का स्थान प्राचीन काल में महनीय था। किन्तु वर्तमान में इस शैली की प्रतिष्ठा धूमिल दिखाई देती है। अब इसकी कुछ झलकियाँ संस्कृत-संस्थाओं में बौद्धिक व्यायाम और पुरस्कार की पृष्ठभूमि में यदा-कदा मिलती हैं अथवा किसी सम्प्रदाय के आचार्य विशेष के समक्ष कुछ क्षणों के लिए प्रकट हुए प्रायोजित स्वरूप में दिखाई देती है। प्राचीन की तुलना में शास्त्रार्थ के इस नवीन स्वरूप से विद्या, विषय और समाज में क्या और कितना कल्याण हो रहा है, यह स्वतन्त्र विचार का विषय है। किन्तु इसके हास के कारणों के अनुसन्धान में यह पक्ष अवश्य ही रखा जा सकता है कि धार्मिक असहिष्णुता ने ज्ञान की सरलता, निष्कपटता, उदारता और महत्ता को पृष्ठभूमि में धकेल दिया है। विशुद्ध ज्ञान अथवा सत्य पर आधारित शास्त्रार्थ अब अतीत की वस्तु बन गये हैं तथा इस वस्तुस्थिति का प्रभाव शास्त्रीय संवाद और सन्दर्भ दोनों पर पड़ा है।

२. पाठक, सर्वानन्द, चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, द्वितीय परिच्छेद.

कोई ऐसा सम्प्रदाय नहीं है जिसके उप सम्प्रदाय न हों। दूसरे शब्दों में, विविध सम्प्रदायों में संवाद अथवा विवाद द्वारा खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया ही वस्तुतः भारतीय दर्शन के विकास की प्रक्रिया है। इसलिए एक ही सम्प्रदाय के सहसम्प्रदायों से अथवा एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदायों से संवाद का होना नितान्त अपरिहार्य और स्वाभाविक है। संवाद के अभाव में दर्शन का विकास अथवा ग्रन्थ-विशेष में दार्शनिक समस्याओं पर चर्चा (सन्दर्भ) का होना असंभव है।

जहाँ तक शास्त्रार्थ का प्रश्न है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि लिखित शास्त्रों में सन्दर्भों के अवतरण से पूर्व सम्बद्ध विषय के विद्वानों में कहीं न कहीं, कभी न कभी और किसी न किसी स्तर पर पर शास्त्रार्थ हुआ होगा। वेदान्त के प्रसङ्ग में आचार्य शङ्कर तो इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं ही और उन्हीं के माध्यम से इस परम्परा की प्राचीनता का अनुमान किया जा सकता है। बौद्धों की भी अपनी विशिष्ट तर्क-वितर्क या शास्त्रार्थ की शैली रही है। धर्मकीर्ति-रचित वादन्याय^१ आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं।

संक्षेप में, भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों में संवाद, शास्त्रार्थ और सन्दर्भ रूप तीनों तत्त्व विद्यमान रहे हैं। किन्तु उनके कालक्रम का सुनिश्चित विभाजन करना कठिन है। दूसरे शब्दों में, भारतीय इतिहास-दृष्टि भिन्न-भिन्न प्रकार की रही है। यहाँ कालिक इतिहास की अपेक्षा चिन्तन को अधिक महत्त्व दिया गया है। यही कारण है कि आचार्य, सम्प्रदाय और ग्रन्थ के आरम्भ व विकास का क्रम अथवा उसकी सुनिश्चित तिथियाँ उपलब्ध नहीं हैं।

इतिहास-पक्ष के प्रति उपेक्षा की इस पृष्ठभूमि में यदि वेदान्त और बौद्ध के परस्पर सम्बन्ध और उसके विकास-क्रम का मूल्याङ्कन करना चाहें तो इसमें प्रत्यक्ष का नहीं, अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है। अनुमान से तात्पर्य यहाँ दोनों विचारधाराओं के साहित्य में प्राप्त वर्तमान सन्दर्भों के प्रत्यक्षीकरण अथवा विश्लेषण द्वारा वस्तुतः भूतकाल में व्यवहार के स्तर पर हुए संवाद की प्रक्रिया तक पहुँचना है।

पक्ष-विपक्ष में हुए संवाद की परम्परा का एक सशक्त प्रमाण उप साहित्य है। इसमें, सन्दर्भ, शास्त्रार्थ और संवाद तीनों की स्पष्ट ध्वनि विद्यमान है। इसमें अद्वैत के साथ द्वैतवादी विचारधाराओं को भी महत्त्व मिला है। प्रश्न अथवा जिज्ञासा के साथ उत्तर और समाधान दोनों वहाँ मिलते हैं। जिज्ञासा से प्रारम्भ हुई यह

१. द्र.- पाण्डेय, रामचन्द्र, पाण्डेय, राघवेन्द्र एवं मन्जु (सानुवाद अध्ययन)।

यात्रा समाधान के लक्ष्य की पूर्णता तक किस तार्किक पद्धति के माध्यम से पहुँचती है, इसका भी विवरण उप में उपलब्ध है। परवर्ती दर्शन-सम्प्रदायों में इसी शैली का विस्तार देखा जाता है। भारतीय दर्शन-सम्प्रदायों के अधिकांश ग्रन्थों में न केवल उत्तरपक्ष अपितु पूर्वपक्ष की सिद्धि में भी युक्तियों का प्रयोग मिलता है। ऐसे युक्तियुक्त पूर्वपक्ष के सन्दर्भ वस्तुतः उस ऐतिहासिक परम्परा का संकेत देते हैं जो परम्परा दो विचारधाराओं में जीवन्त संवाद का प्रतीक रही है।

वेदान्त के दार्शनिक साहित्य में बौद्ध सन्दर्भ का सर्वप्रथम उदाहरण **ब्रसू** है। यह सन्दर्भ सहसा अथवा विवशता में अवतरित नहीं हुआ है। इन सन्दर्भों को देखकर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इनके पीछे संवाद की सशक्त परम्परा रही है। **ब्रसू** से पूर्व भी अन्य ग्रन्थों में सन्दर्भ रहे होंगे अथवा व्यावहारिक स्तर पर इन विचारधाराओं में संवाद और शास्त्रार्थ की परम्परा रही होगी। स्वयं **ब्रसू** की रचना-प्रक्रिया विवादास्पद है और यह स्थिति भी संवाद की संभावना को जन्म देती है।

ब्रसू वेदान्त की शास्त्रीय परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। लेखक ने जिस प्रकार अपने समय में प्रचलित अन्य दार्शनिक विचारधाराओं को पूर्वपक्ष के रूप में सम्मान देकर उनका खण्डन किया, वह एक इतिहास है जिसकी पुनरावृत्ति उसी रूप में अन्य मौलिक ग्रन्थों में नहीं मिलती। यह ग्रन्थ समन्वय और व्यवस्था के पक्षों को उजागर करता है। ब्रह्मवाद की समन्वय-दृष्टि से ग्रन्थकार ने विकीर्ण विविध पूर्वपक्षी मतों का समन्वय करने का संकल्प लिया और उसका सफलतापूर्वक निर्वाह किया। वेदान्त के इस संवाद ने **ब्रसू** में एक व्याख्या और दिशा पाने के बाद अनेक परिवर्तन देखे। यह ग्राफ गौडपाद, शङ्कर और रामानुज आदि में और उसके बाद भी कभी ऊँचा और कभी नीचा होता रहा और संभवतः आज भी जारी है। किन्तु इस सुदीर्घ और जीवन्त संवाद के मर्म को यदि निष्पक्षता से छूने का प्रयास किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेदान्त और बौद्ध विचारधाराएँ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। कम से कम दर्शन के रूप में ये अपने प्रादुर्भाव-काल से बाह्य रूप से विरोधी दिखाई देते हुए भी एक भूमिका पर खड़े प्रतीत होते हैं। बुद्ध के **बहुजन सुखाय बहुजन हिताय** के देशकालादि निरपेक्ष उपदेश में उप की गूँज सुनाई देती है। इसलिए शब्द, शैली, अवधारणा और बाह्य विरोध की समस्त प्रतिकूल सामग्री होते हुए भी बौद्ध दर्शन, वेदान्त से उतना दूर नहीं दिखाई देता जितने न्याय-वैशेषिक आदि वैदिक दर्शनों के समुदाय दिखाई देते हैं। बौद्ध दर्शन का यदि वेदान्त के समन्वयवाद

में समन्वय नहीं होता है तो यह बौद्ध दर्शन की नहीं, वेदान्त के सिद्धान्त की दुर्बलता मानी जानी चाहिए। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन के शून्यवाद के संकल्प में यदि वेदान्त के लिए व्यवहार और परमार्थ दोनों में से किसी भी स्तर पर समन्वय का अवसर सुलभ नहीं है तो उसका शून्यवाद अथवा समन्वयवाद भी अपूर्ण और दोषपूर्ण माना जाएगा। सार्थक समन्वय-दृष्टि किसी दुर्बल या सदोष सिद्धान्त का तिरस्कार करने में नहीं अपितु किसी भी युक्तियुक्त स्तर पर उसका समाहार करने में है। वेदान्त और बौद्ध दोनों की चिंतना का चरम उन्हें एक समान भूमि पर लाकर खड़ा ही नहीं करता है अपितु उन्हें एक ही सत्य को भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त करने वाली विचारधाराएँ सिद्ध करता है। भेद में अभेद और अभेद में भेद कैसे रहता है इसके ज्वलन्त प्रमाण भारतीय दर्शन की ये दोनों प्रतिनिधि विचारधाराएँ हैं और इन दोनों का समुचित समावेश किए बिना भारतीय दर्शन की अप्रतिम प्रतिमा पूर्ण नहीं होती।

सन्दर्भ का वर्तमान स्वरूप तीन प्रसंगों में देखा जा सकता है। (i) आधुनिक साम्प्रदायिक लेखन में, (ii) आधुनिक आलोचनात्मक ग्रन्थों में और (iii) आधुनिक विद्वानों की परिचर्चाओं में। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक साम्प्रदायिक लेखक प्राचीन विचारों का ही पिष्टपेषण कर रहे हैं। तुलना और विस्तार की दृष्टि से उनका लेखन अपेक्षित स्पष्टता और दिशा-बोधक निष्कर्ष से रहित है। आधुनिक आलोचनात्मक ग्रन्थों की स्थिति भी कुछ विशेष नहीं है। इन ग्रन्थों में भी दो विचारधाराओं के साम्य-वैषम्य की तुलना पर विशेष बल दिया जाता है; समीक्षा के रूप में नवीन व संशोधित विचारों का यहाँ भी अभाव पाया गया है। आधुनिक विद्वज्जन की परिचर्चाओं में पूर्वाग्रह और अपने पक्ष को श्रेष्ठतम सिद्ध करने की प्रवृत्ति सामान्य रूप में अवलोकनीय है। भूत और वर्तमान-काल में सन्दर्भों की यह स्थिति देखकर, यह आशा करना कि भविष्य में मात्र इन सन्दर्भों के माध्यम से किन्हीं दो विचारधाराओं में अथवा वेदान्त एवं बौद्ध में संवाद का पूर्व प्रचलित इतिहास अपनी निरन्तरता और जीवन्तता बनाए रखेगा, दुस्साहसिक कथन होगा।

२. भारतीय साहित्य, दर्शन और जीवन में वेदान्त का स्थान

वेद, भारतीय प्रज्ञा की जीवन-रेखा है जिसमें विश्व-संस्कृति के सूत्र समन्वित हैं। इसी वेद-गंगा की एक धारा वेदान्त है। इसलिये वेदान्त वाङ्मय का एक छोर यदि वेद है तो दूसरा छोर अद्वैतवाद आदि विचारधाराएँ हैं। ग्रन्थ और ग्रन्थकार का देश और काल तो सीमित और निश्चित हो सकता है किन्तु विचार का आकाश अनादि और अनन्त है।

भारतीय धर्म और दर्शन, साहित्य और संस्कृति विश्व में प्राचीन तथा विलक्षण मानी जाती है। इस प्राचीनता और विलक्षणता के प्रमाणस्वरूप सर्वप्रथम वेद को ही उद्धृत किया जाता है। यही नहीं, भारतीय-प्रज्ञा की उदारता और श्रेष्ठता को विश्व-स्तर पर स्थापित करने के लिए भी जो प्रमाण और उदाहरण दिए जाते हैं, उनमें भी वेद का ही प्रमुख स्थान रहता है। वेदों के आधार पर ही धर्म, दर्शन, समाज, राजनीति आदि के शास्त्रों का विकास हुआ है। वर्णाश्रम व्यवस्था, षोडश संस्कार आदि का भारतीय समाज में जो प्रभाव दिखाई देता है, उसका कारण भी वैदिक जीवन-शैली है। यह विचारधारा, भारतीय मानस में इस प्रकार रच-बस गई है कि उसका स्थान सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी कोई अन्य विचारधारा नहीं ले सकी है।

वेद और उप संख्या की दृष्टि से अनेक हैं और दृष्टि-भेद तथा व्याख्या-भेद के कारण इनके आधार पर अनेक दर्शन-सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव और विकास भी हुआ है। तथापि प्रधानता की दृष्टि से वेदान्त ही भारतीय दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य शङ्कर के विलक्षण, प्रतिभापूर्ण एवं समन्वयात्मक व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण वेदान्त में भी शङ्कर का अद्वैत सर्वप्रमुख बन गया। इस अद्वैतवाद ने वेदान्त के शान्त जीवन को इस प्रकार आन्दोलित कर दिया कि उसके परवर्ती विकास का केन्द्रीय पक्ष शङ्कर वेदान्त ही बना रहा। चाहे उस विकास की दिशा शङ्कर मत की व्याख्या हो अथवा उसका विरोध। ज्ञानप्रधान, शङ्कर प्रस्थान में प्रत्यक्ष रूप से (अथवा तत्त्वदृष्टि से) क्रिया अथवा व्यवहार का कोई स्थान नहीं था। किन्तु फिर भी माया के मिस उपासना और व्यवहार की सभी पद्धतियों का उसमें समन्वय किया गया। इसी पक्ष को अनेक व्याख्याकारों ने व्यावहारिक वेदान्त पर ग्रन्थ लिखकर उद्धाटित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार वेदान्त और शङ्कर दर्शन, भारतीय मनीषा के उज्ज्वल रत्न बन गए। शङ्कर अद्वैतवाद के नैतिक एवं आध्यात्मिक आदर्श ने भारतीय समाज में प्रेम, एकता, उदारता, सहानुभूति एवं विश्व-दृष्टि को बढ़ाया है। समन्वय का इसका विचार सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई के रूप में मानकर **वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः** की शिक्षा ही नहीं देता अपितु इस शिक्षा को व्यवहार में परिणत कर भारतीय संस्कृति के सातत्य को बनाए रखने में सफल भी हुआ है।

३. भारतीय साहित्य, दर्शन और जीवन में बौद्ध विद्या का स्थान

वेदान्त विचारधारा से कुछ साम्य तथा वैषम्य रखने वाली बौद्ध विचारधारा, भारतीय सभ्यता व संस्कृति के इतिहास में अपनी स्वतन्त्र पहिचान रखती है।

यह स्वतन्त्र पहिचान ही वस्तुतः उसकी महत्ता, विलक्षणता अथवा उसका योगदान है।

बौद्ध विचारधारा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके धर्म, दर्शन, तन्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, साहित्य आदि विभिन्न पक्षों ने न केवल भारतीय-समाज को ही लाभान्वित किया है अपितु इसकी चिंतना आज भी विश्व-स्तर पर, आदर्श जीवन के मानक स्थापित कर रही है।

भारतीय परिवेश में, बौद्ध विद्या की सफलता बहुआयामी है। श्रुति-सम्मत वैदिक धर्म की उदारता से रूढ़ भारतीय मानस को इसने शास्त्रवाद के चक्रव्यूह से निकालकर बुद्धिवाद का मार्ग दिखाया- **धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।** जहाँ अन्य धर्म **तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितोः...** का उपदेश दे रहे थे वहीं बौद्ध विचारधारा ने **अप्पदीपाः भवथा अत्तशरणाः** का मूलमन्त्र दिया। धर्म अथवा जीवन के नाम पर इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचार देना, स्वयं में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

वैदिक विचारधारा में एक अन्य सबसे बड़ी कमी यह थी कि वहाँ मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। वैदिक विचारधारा जो एक ओर अद्वैतवाद के माध्यम से विश्व को एक सूत्र में समन्वित करने का लक्ष्य रखती थी, उसके मूल में स्वयं वेद के अध्ययन तक का अधिकार समाज के केवल कुलीन वर्ग को प्राप्त था। शूद्र व स्त्रियाँ वेदाध्ययन की इस व्यवस्था से वञ्चित थीं।^१ बौद्ध परम्परा ने जाति-व्यवस्था के इस दोष को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर मनुष्य की लघुता अथवा गुरुता की परिभाषा की। दूसरे शब्दों में, वैदिक विचारधारा ने जीवन व अनुशासन को भले ही भारतीय चेतना का पर्याय बनाकर प्रस्तुत किया हो किन्तु व्यवहार में अनुशासन व उदारता के सुन्दर समन्वय का कार्य, बौद्ध विचारधारा द्वारा सम्पादित किया गया है।

वैदिक विचारधारा में धर्म अथवा दर्शन के नाम पर लोककल्याणकारी तत्त्व नहीं थे, यह कहना अनुचित ही होगा। तथापि इस विचारधारा की यह विशेषता थी कि उन्होंने इसका प्रचार-प्रसार, संस्कृत भाषा के माध्यम से किया। परिणामस्वरूप लोक-जीवन के कल्याणकारी तत्त्व, समाज के मात्र शिक्षित व कुलीन वर्ग तक सीमित होकर रह गए। जबकि इसके विपरीत बौद्धों ने, धर्म, दर्शन, अध्यात्म

१. **स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी श्रुतिगोचरा।**

इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्। - महाभारत

आदि गंभीर विषयों को आरम्भ से ही एक सरल व सुबोधगम्य भाषा (पालि) के माध्यम से कथा-कहानी की शैली में जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार बौद्ध चिन्तन की सुगन्धि, मानस-चेतना पर एकाधिकार करने में सफल रही और बौद्ध धर्म अशोक के काल से लगभग दो सौ वर्षों तक भारत का राजकीय धर्म बना रहा।

धर्म अथवा जीवन के क्षेत्र में ही नहीं, दर्शन के क्षेत्र में भी वैदिक दर्शनाचार्यों के समक्ष व्यवस्था, सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या और श्रुति-प्रमाण के साथ युक्तियों का विशेषतः प्रयोग इत्यादि करने की चुनौती बौद्ध जैसे तार्किक दर्शन ने ही रखी। यही कारण है कि वैदिक दर्शन सहित शैवागमों ने भी बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों को न केवल पूर्वपक्ष के रूप में सम्मान दिया बल्कि इस दर्शन के मौलिक ग्रन्थों के अनुच्छेद तथा तर्कों के सारांश अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए सर्वत्र सम्मिलित किए।

ब्रह्ममित्र अवस्थी मानते हैं कि अहिंसा, सत्य आदि योगाङ्गों का मूल बौद्ध परम्परा में निहित है। इसी प्रकार चित्त-प्रसादन के उपायभूत मैत्री आदि परिकर्म, जीवन और साधना दोनों ही क्षेत्रों में बौद्ध परम्परा की ही देन है।^१ साधना की इस विशेष विधि के प्रवर्तन का श्रेय बुद्ध को है। बौद्धों के इस अध्यात्म का प्रभाव पशुयाग आदि की व्याख्याओं पर भी पड़ा।^२

१. योगसाधना के क्षेत्र में अथवा योगाङ्गों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नाम से स्वीकृत यमों के मूल का यदि अनुसन्धान किया जाए तो वह बौद्ध-परम्परा में ही मिलेगा। ये अहिंसा आदि वैदिक यज्ञ यज्ञादि के साथ प्रतिष्ठित नहीं थे। क्योंकि यदि सर्व-सामान्य साधनाओं में प्रतिष्ठित होते तो बौद्ध-परम्परा के सिक्खा पदों (शिक्षापदों) में इन्हें सर्वप्रथम परिगणित करने की आवश्यकता नहीं होती।... पातञ्जलयोग पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, पृ. २-३.

२. आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में बुद्ध और उनके द्वारा प्रवर्तित परम्परा का अत्यधिक महत्त्व है। भगवान् बुद्ध ने साधना की एक ऐसी विधि प्रवर्तित की... जिसके परिणामस्वरूप जीवन के सभी क्षेत्रों में आध्यात्मिक साधना के उस दर्शन की मान्यताएँ समग्ररूप से समाहित हो गईं और उनसे मेल न खाने वाली मान्यताएँ सर्वथा विलीन हो गईं। इतना ही नहीं बौद्ध मान्यताओं के प्रभाव-स्वरूप पशुयाग, सोमयाग आदि की व्याख्याएँ वैदिक परम्परा में भी बदलने लगीं। यागाङ्गभूत पशुवध सोम और वाजपेय जन सामान्य में भी नित्य माने जाने लग गए। दूसरे शब्दों में, भारतीय सांस्कृतिक चेतना पर बुद्ध-प्रभाव समग्ररूप से छा गया। वही, पृ. २.

बौद्ध विचारधारा और जीवन-शैली का प्रभाव भारतीय गणतन्त्र और संविधान के स्वरूप पर भी पड़ा।^१

भारत ही नहीं, भारत के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय देशों से सम्बन्ध के स्तर पर भी बौद्ध विद्या ने सेतु की भूमिका निभाई।^२ तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान आदि पाश्चात्य देशों में जाकर इस विचारधारा ने जनसामान्य की जीवन शैली को तो प्रभावित किया ही साथ ही संस्कृत व मिश्र संस्कृत में लिखे गए बौद्ध धर्म, दर्शन, तन्त्र आदि सहस्रों मूल ग्रन्थों का अनुवाद विदेशियों ने अपने-अपने देश की भाषा में करके बौद्ध साहित्य को भी समृद्ध किया।

४. वेदान्त और बुद्ध

बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व वैदिक चिन्तन और साहित्य अपनी विकास-यात्रा का प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण चरण पूरा कर चुका था। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक जैसे पड़ावों के बाद उप साहित्य में वैदिक चिन्तन का दार्शनिक स्वरूप उद्भूत होता है। कतिपय इतिहासकार उप-साहित्य को वैदिक चिन्तन की पूर्णता अथवा चरम परिणति मानते हुए उसे वेदान्त की संज्ञा से विभूषित करते हैं। कालान्तर में इसका विस्तार प्रस्थानत्रयी और उस पर आधारित साहित्य के रूप में हुआ। प्रस्थानत्रयी में परिगणित ब्रह्म को बुद्ध के बाद की रचना मानना एक ऐतिहासिक सत्य है। इस प्रकार वेदान्त के रूप में ख्यात उप ही ऐसी दार्शनिक विचारधारा है, जिसे बुद्ध पर प्रभाव की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण आयाम माना जा सकता है। अनुसन्धानकर्ताओं ने इस पक्ष पर अपने ग्रन्थों में यत्र-तत्र कुछ टिप्पणियाँ भी की हैं।

१. बौद्ध भिक्षुसंघ गणतन्त्रात्मक प्रणाली पर विश्वास करता है। यह समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृत्वभाव के सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता है। यही उसका आदेश है अथवा यही भारतीय संविधान है। एकत्रित होकर निर्णय लेने की परम्परा, वर्णभेद की अस्वीकृति, दण्डविधान, परिवास, उपोसथ, शमथ-पञ्चति, प्रतिसारणीय कर्म, संघ की सम्पत्ति का अधिकार आदि जैसे बौद्ध संधीय विधान, गणतन्त्र-परम्परा की ओर सङ्केत करते हैं और अम्बेडकर ने संभवतः भारतीय संविधान के मूलाधिकार जैसे कतिपय तत्त्व यहीं से लिए हैं। जैन, भागवन्द, भारतरत्न डॉ. अम्बेडकर और बौद्ध धर्म, पृ. १५४-५५.

२. विद्र, उपाध्याय, बलदेव, बौद्धमी, पृ. ७.

(अ) उपनिषद् और बुद्ध

वेद का एक पर्याय ज्ञान है किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों ने इस ज्ञान को कर्म की दिशा दी। यह प्रयत्न परमार्थ को व्यवहार में अनूदित करने का था जिसे सर्वथा उचित और आवश्यक कहा जा सकता है। किन्तु यह कर्म धीरे-धीरे यज्ञादि कर्मकाण्ड के रूप में इतना रूढ़ हो गया कि वेद की व्यापकता से बहुत दूर चला गया और उसमें अनेक विकृतियाँ आ गईं। कर्म को विकृतियों से मुक्त करने के लिए और ज्ञान की ही पुनः प्रतिष्ठा के लिए उप ने दार्शनिक चिन्तन का आधार तैयार किया। इस अभियान से ही बुद्ध के संकल्प की तुलना की जा सकती है। बुद्ध ने भी कर्मकाण्ड की विकृतियों से असहमति रखते हुए संबोधि का मार्ग चुना और ज्ञान का अनुवाद, याग के रूप में न करके शील के रूप में करने का प्रयत्न किया। उप और बुद्ध की परस्पर निकटता और संगति का यही मूल सूत्र है, जिसे साधारण भाषा में **बुद्ध पर उप के प्रभाव** के रूप में रखा जाता है।

उप और बुद्ध के सम्बन्ध पर अनुसन्धानकर्ताओं और आधुनिक लेखकों ने यत्र-तत्र प्रकाश डाला है और तुलना के माध्यम से साम्य और वैषम्य के कुछ बिन्दुओं को उद्घाटित किया है। किन्तु यहाँ प्रश्नावली के माध्यम से काशीस्थ विद्वानों के समक्ष कुछ जिज्ञासाएँ रखी गईं, जिनका संक्षिप्त उत्तर उन्होंने दिया। कुछ विद्वान् बुद्ध पर उप के प्रभाव को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं, कुछ इसका सर्वथा विरोध करते हैं तथा कुछ टिप्पणी को सशर्त बनाकर प्रस्तुत करते हैं। **मुरलीधर पाण्डेय**, उदार भारतीय परम्परा का उल्लेख करते हुए यह कहते हैं कि पूर्वाचार्यों से अच्छी बातों को ग्रहण करना उदात्त भारतीय-परम्परा रही है। इसलिए बुद्ध ने यदि उप के गूढ़ ज्ञान को आत्मसात् करके अपने धार्मिक विचारों को स्वरूप देने में कोई सहायता ली है तो इसमें कोई दोष नहीं है। वे इस दृष्टि को वेदान्ताचार्यों पर की गई **प्रच्छन्न-बौद्ध** जैसी टिप्पणी का भी उत्तर मानते हैं। अर्थात् यदि गौडपाद और शङ्कर, बौद्ध अवधारणा और शैली के प्रभाव को लेने के कारण चौर कर्म के दोषी हैं तो उप से प्रभाव लेने के कारण बुद्ध भी उसी दोष से ग्रस्त माने जाने चाहिये। पाण्डेय के इस उत्तर में बुद्ध और उप के सम्बन्ध उद्घाटित करने का प्रयत्न कम और वेदान्ताचार्यों को प्रच्छन्न-बौद्ध के आरोप से बचाने का प्रयत्न अधिक दिखाई देता है। वे बुद्ध-

उप के सम्बन्ध की गङ्गा में प्रच्छन्न-बौद्ध की कालिमा को शीघ्र डुबकी लगाकर धोने में अधिक उत्साहित दिखाई देते हैं। रमेश कुमार द्विवेदी और अभिमन्यु सिंह, बुद्ध पर उप के प्रभाव का निषेध तो दृढ़ता से करते हैं किन्तु अपने मत के समर्थन में कोई ऐतिहासिक प्रमाण या तर्क प्रस्तुत नहीं करते। जहाँ द्वितीय टिप्पणीकार, बुद्ध और उप के चिन्तन में भेद और दूरी को प्रधानता देते हैं वहीं प्रथम टिप्पणीकार को ऐसा लगता है कि बुद्ध पर उप के प्रभाव को स्वीकार करना, वैदिक विचारों के प्रति समर्पण होगा, उप की श्रेष्ठता सिद्ध करना होगा, बुद्ध के तपःपूत मौलिक चिन्तन के महत्त्व को कम करना होगा और हिन्दू-मानसिकता के समक्ष झुकना होगा। रामशङ्कर त्रिपाठी, विषय की गंभीरता को समझते हुए सावधानी से टिप्पणी करते हैं। वे प्रश्न की व्याख्या पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए मानते हैं कि प्रभाव से तात्पर्य यदि बुद्ध को उप का ज्ञान होने से है तो यह बुद्ध के गौरव को बढ़ाने वाली बात है क्योंकि उस सर्वज्ञ को अन्य विषयों के साथ उप का ज्ञान होना भी स्वाभाविक है। किन्तु यदि प्रभाव का अर्थ अनुकरण है तो यह बुद्ध के गौरव को हानि पहुँचाने वाली बात है, अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। बुद्ध, उप-ज्ञान के अथवा औपनिषदिक दर्शन के अनुयायी कदापि नहीं थे, इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी देशना में लौकिक समस्याओं का समाधान उस अनात्मवाद के माध्यम से बताया जो उप के आत्मवाद की विरोधी विचारधारा थी।

वस्तुतः उप और बुद्ध के सम्बन्ध के प्रश्न को दो दृष्टियों से देखा जाना चाहिए- इतिहास-दृष्टि से और तत्त्व-दृष्टि से। टिप्पणीकार ने प्रभाव के समर्थन और विरोध की जो बातें कहीं उनमें पूर्वाग्रह प्रतीत होता है। जहाँ वेदान्ताचार्य प्रभाव को स्वीकार करके उप के गौरव को स्थापित करना चाहते हैं और बुद्ध-विचारों की मौलिकता को कम आंकना चाहते हैं वहीं प्रभाव न मानने वाले विद्वान् सभी प्रकार से बुद्ध के व्यक्तित्व को पूर्ण और निरपेक्ष सिद्ध करना चाहते हैं। प्रश्न का सशर्त उत्तर देने वाले विद्वान् भी इसी मानसिकता हैं कि यदि उत्तर से बुद्ध का गौरव बढ़ता है तो प्रभाव मानने में कोई आपत्ति नहीं है और घटता है तो प्रभाव कदापि स्वीकार्य नहीं है। जबकि प्रश्न की मूल भावना में पूर्वाग्रह के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जिस आवश्यकता ने उप-विचार को जन्म दिया, उसी आवश्यकता ने बुद्ध-विचार का भी प्रादुर्भाव किया। युग की इस आवश्यकता की भूमि पर उप और बुद्ध दोनों एकसाथ खड़े हैं। बुद्ध, स्वतन्त्र विचार रखते हैं, अपने मत को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र शैली

की खोज में हैं, वहीं उप, वेद से अपने आप को जुड़ा हुआ मानते हैं और उसी परम्परा को पुष्ट और विकसित करना चाहते हैं। उप, यागरूप व्यवहार की सीमाओं और दुर्बलताओं का अनुभव कर चुके हैं इसलिए अब उन्हें ज्ञान हाँ के क्षेत्र में विकास के चरम को छूना है। उनका यह परमार्थ-चिन्तन ही दार्शनिक सम्प्रदायों के चिन्तन का और विशेषरूप से अद्वैत वेदान्त का आधार बना और इसके फलस्वरूप दर्शन ही दर्शन के सम्प्रदायों का विकास हुआ। किन्तु दूसरी ओर बुद्ध के लिए यागों की सदोषता देखने के बाद भी यह यात्रा का प्रथम बिन्दु था। इसलिए बुद्ध-देशना-रूप ज्ञान से दर्शन के साथ धर्म का भी विकास हुआ। यह दर्शन, विज्ञानवाद और शून्यवाद में चरम पर पहुँचा और धर्म, शील के अभिनव स्वरूप में सामने आया। बुद्ध की यह ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक स्थिति, ऐसी नहीं है जिस पर उप से वैचारिक निकटता मान लेने पर किसी प्रकार से इसका स्तर और महत्त्व कम हो जाए। बुद्ध, वह विभूति हैं जिसकी अपनी प्रभा, उप की निकटता के बाद और भी अधिक प्रखर होकर उभरती है, न कि क्षीण होती है।

वस्तुतः बुद्ध-विचार श्रमण-विचारधारा का एक अङ्ग है। दूसरा अङ्ग, जैन विचारधारा है। इस विचारधारा का प्रादुर्भाव ब्राह्मण विचारधारा के समानान्तर अथवा उसकी प्रतिक्रियास्वरूप माना जाता है। बुद्ध और महावीर से पूर्व भी अनेक तीर्थङ्कर और बुद्ध हो चुके हैं।^१ इसलिए इस श्रमण-विचारधारा की प्राचीनता का इतिहास और भी पीछे जाता है। जहाँ तक बुद्ध का सम्बन्ध है, धर्मानन्द कौसाम्बी मानते हैं कि बुद्ध से पूर्व लगभग बासठ ऐसे पन्थ थे जिनका सम्बन्ध श्रमण-विचारधारा से घनिष्ठ रूप से था।^२

बौद्ध विचारधारा अपने जिस वर्तमान स्वरूप में अभिव्यक्त और प्रचारित हुई है, उसका श्रेय भी व्यक्तिरूप बुद्ध को है। यही बुद्ध और इसकी देशना, बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों में सर्वोपरि प्रमाण है। बौद्ध आचार्य इसे प्रज्ञा, सम्यक्

१. पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी एवं उत्तर प्रदेश, जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ ने २६-२८ अप्रैल २००३ को महावीर एवं बुद्ध-पूर्व श्रमण-परम्परा विषय पर राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया था। इसमें लेखिका ने 'बुद्ध-पूर्व श्रमण-परम्परा का तात्पर्य' विषय पर शोध-लेख प्रस्तुत किया था जो श्रमण पत्रिका में प्रकाशनाधीन है।
२. इन पन्थों के कतिपय उल्लेखनीय आचार्यों और सिद्धान्तों का इस प्रकार स्मरण किया जा सकता है- पूरण कस्सप का अक्रियवाद, मक्खलीगोसाल का नियतिवाद, अजितकेसकम्बल का उच्छेदवाद, पकुधकच्चायन का अन्योन्यवाद, संजयबेलडुपुत्त का विक्षेपवाद, निगण्ठनाथपुत्र का चातुर्यामसंवरवाद आदि। आत्मा से सम्बन्धित विचारधाराएँ अनेक थीं, जिनके अन्तर्गत ईश्वरप्रजापति पुरुष आदि की अवधारणाएँ भी परिगणित की जा सकती हैं। भगवान् बुद्ध और जीवन दर्शन, पृ. १२९-१३३.

ज्ञान, तर्क आदि के प्रतिनिधि के रूप में देखते हैं। दूसरी ओर, वेदान्त के सभी सम्प्रदाय श्रुति को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। यह श्रुति, नित्य, सनातन, अपौरुषेय और बुद्धीन्द्रियातीत है। इसलिए वेदान्ताचार्यों की दृष्टि में बौद्ध विचारधारा, व्यक्तिवाद पर आधारित है और श्रुति-वचन की तुलना में, बुद्ध-वचन की महत्ता नगण्य है। इसी मूल विचार से प्रेरित होकर वेदान्त के प्रायः सभी आचार्य बौद्ध दर्शन की विसङ्गतियों और अपूर्णताओं को उद्घाटित करते हुए, बुद्ध को भी आलोचना का लक्ष्य बनाते हैं।

(आ) ब्रह्मसूत्रादि ग्रन्थों में बुद्ध

ब्रह्मसूत्रकार यद्यपि बौद्ध खण्डन के प्रथम प्रस्तोता हैं तथापि इस ग्रन्थ के बौद्ध सन्दर्भ बुद्ध के उल्लेख से सर्वथा शून्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मसूत्रकार खण्डनात्मक युक्तियों के माध्यम से बौद्ध मत के दार्शनिक सिद्धान्तों के विरोध तक स्वयं को सीमित रखना चाहते हैं। यह एक व्यावहारिक दृष्टि है, जिसमें पूर्वाग्रह का लेश भी दिखाई नहीं देता। बुद्ध और बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों का उल्लेख न करना और केवल सिद्धान्त और युक्ति की चर्चा करना, ब्रह्मसूत्रकार की दार्शनिक दृष्टि को उजागर करता है। ऐसा तभी सम्भव है जबकि ब्रह्मसू की रचना के काल तक वेदान्ताचार्य, बौद्ध के प्रति विरोध के इस मूल कारण बुद्ध तक न पहुँच पाए हों फिर भी तटस्थ दार्शनिक के रूप में यह बिन्दु ब्रह्मसूत्रकार को गौरव ही प्रदान करता है।

बुद्ध के विषय में ब्रह्मसूत्रकार के मौन धारण करने के बाद गौडपाद ने न केवल उनका नामोल्लेख किया है अपितु उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव भी प्रकट किया है। उन्होंने समस्त धर्मों के ज्ञाता, प्रकाशरूप और मुक्त पुरुष के रूप में बुद्ध का स्मरण किया है। गौडपाद के भाष्यकार होने के कारण और उनके तात्पर्य की विस्तृत व्याख्या करने के कारण, शङ्कर को इस श्रद्धा और आदर का विस्तार करना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं हुआ। बुद्ध के प्रति वेदान्त के आचार्यों की श्रद्धा आचार्य गौडपाद से प्रारम्भ हुई और उन्हीं के साथ समाप्त भी हो गई। इस दृष्टि का आगे विकास नहीं हुआ। आचार्य शङ्कर ने, बौद्ध दर्शन की समस्त असङ्गतियों, दुर्बलताओं और मतभिन्नताओं का श्रेय बुद्ध को दे दिया और उनके प्रति तिरस्कार का भाव प्रकट करते हुए, उनकी देशना को असम्बद्ध प्रलाप बताया। उन्होंने बुद्ध के विचारों में असङ्गतियाँ बताकर यह आरोप लगाया है कि वे समाज को भ्रान्ति और विद्वेष के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं और वास्तविक मोक्ष के मार्ग से समाज को पथ-भ्रष्ट करते हैं।

आचार्य शङ्कर का बुद्ध के प्रति यह भाव, बौद्ध विचारधारा से न केवल दार्शनिक मतभेद को प्रकट करता है अपितु इसमें शङ्कर के कतिपय पूर्वाग्रहों की भी अभिव्यक्ति होती है। बुद्ध के प्रसङ्ग में, शङ्कर की प्रतिक्रिया एक दार्शनिक की न होकर, वैदिक-संस्कृति के प्रतिनिधि की है। इस पक्ष के स्वरूप का उद्घाटन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। यहाँ प्रसङ्गानुसार केवल इतना कहना आवश्यक है कि ब्रह्मसूत्रकार के मौन और गौडपाद के सद्भाव को जो उन्होंने तिरस्कार की दिशा दी, वह भाष्यों के मूल ग्रन्थों के लेखकों की भावना के भी विपरीत प्रतीत होती है।

बुद्ध के प्रति वेदान्ताचार्यों के भाव को एक दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- मौन अथवा तटस्थ, सद्भाव और तिरस्कार। ब्रह्मसूत्रकार के मौन के ही समर्थन में रामानुज और निम्बार्क ने सुगत शब्दों व पर्यायों का प्रयोग करते हुए तटस्थता की नीति अपनाई है। इन्होंने दार्शनिक की मर्यादा में रहते हुए अपनी टिप्पणियाँ की हैं। रामानुज ने बहुत ही व्यावहारिक और यथार्थसम्भव निर्विवाद टिप्पणी की है कि शून्यवाद बुद्ध-मत की पराकाष्ठा है। इस वक्तव्य के द्वारा न केवल उन्होंने बुद्ध को महत्त्व दिया है अपितु जिस शून्यवाद को आचार्य शङ्कर विचारणीय भी नहीं मानते उसे बुद्ध-मत की पराकाष्ठा कहकर गौरव प्रदान किया है। यह लघु बिन्दु भी शङ्कर और रामानुज के मतभेद को उजागर करता है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ तक बुद्ध के द्वारा अधिकारी-भेद से उपदेश देने की बात है, रामानुज, शङ्कर का ही समर्थन करते हैं। जहाँ तक निम्बार्क का प्रश्न है, वे सर्वास्तिवाद को सुगत-मत के नाम से उल्लिखित करते हैं और बुद्ध के प्रति न व्यक्तिगत टिप्पणी करते हैं और न उनके उपदेशों में अधिकारी-भेद देखते हैं।

द्वैतवादी मध्व, बुद्ध के विषय में और बौद्ध दर्शनों के स्वरूप और विकास में, बुद्ध-देशना की भूमिका के प्रति ब्रह्मसूत्रकार की भाँति ही मौन धारण करते हैं। आचार्य वल्लभ, बुद्ध (शब्द) के उल्लेख के माध्यम से शङ्कर की तिरस्कार-नीति का ही अनुसरण करते हैं और शङ्कर के ही स्वर में अपना योगदान करते हुए बुद्ध पर आरोप लगाते हैं कि वे मोह के शास्त्रों के प्रणेता और असत्यभाषी हैं। वल्लभ मानते हैं कि बुद्ध, ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने काल्पनिक आगमों का निर्माण और प्रचार किया जिसके फलस्वरूप सामान्यजन, वेदों और देवों से पराङ्मुख हो गए। बुद्ध के प्रति इस तिरस्कार-भाव को प्रकट करने मात्र से आचार्य वल्लभ को संतोष नहीं हुआ। इस कटु टिप्पणी के बाद संभवतया उन्हें यह अनुभूति हुई की बुद्ध के प्रति लगाए गए उक्त आरोप, पूर्वाग्रहपूर्ण अथवा अनुचित माने

जाएँगे क्योंकि समाज में बुद्ध के प्रति श्रद्धा का भाव प्रबल है। तब उन्होंने एक ऐसी कल्पना की जो वेदान्त की परम्परा के लिए तो नवीन थी, उससे सामञ्जस्य भी नहीं रखती थी, किन्तु पुराणों से सामञ्जस्य रखती थी। यह कल्पना है- बुद्ध को ईश्वर की ही इच्छा के अवतार के रूप में स्वीकार करना। इस कल्पना के माध्यम से आचार्य वल्लभ यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि यदि बुद्ध में कुछ अच्छाई अथवा बुराई है तो वह ईश्वर की इच्छा के कारण है अर्थात् बुद्ध, जो वेद-विरोधी, उपदेश देकर समाज में भ्रम फैला रहे हैं, यह भी ईश्वर की उस इच्छा से प्रेरित होकर किया जा रहा है जो ईश्वर प्रतिकूल विचारों द्वारा भी वेद-विचारों को ही प्रतिष्ठित करना चाहता है।

(इ) आधुनिक चिन्तन में वेदान्त और बुद्ध

प्राचीन वेदान्ताचार्यों के बुद्ध-भाव का संक्षिप्त विश्लेषण पूर्व पृष्ठों में किया गया। सम्प्रति, इस बिन्दु पर आधुनिक विद्वानों के विचार अवलोकनीय हैं। वैसे तो राधाकृष्णन्, विनोबा, राहुल सांकृत्यायन जैसे अनेक मनीषियों ने बुद्ध पर अपने विचार व्यक्त करते हुए भारतीय धर्म-दर्शन और विश्व के सन्दर्भ में, उनके महत्त्व और योगदान को रेखाङ्कित किया है। किन्तु प्रसङ्गानुसार यहाँ केवल विवेकानन्द का यह विचार उल्लेखनीय है जिसके अनुसार वे बुद्ध को एक महान् वेदान्ती मानते हैं।^१

वेदान्त और बौद्ध दर्शन के काशीस्थ कुछ विद्वानों से जो वार्तालाप हुआ, उसमें भी एक प्रधान बिन्दु बुद्ध था। अतः इन आधुनिक आचार्यों के विचार भी प्रस्तुत प्रसङ्ग में उपयोगी हैं। इन विचारों से ऐसा प्रकट होता है कि बुद्ध के प्रति आचार्य शङ्कर द्वारा प्रारम्भ विचार ही सतत पुष्ट होता रहा है। आधुनिक वेदान्ताचार्य भी पूर्वाचार्यों से सहमति रखते हुए स्वीकार करते हैं कि बुद्ध की देशना में जो विविधता है, उसका कारण अधिकारीभेद है। वेदान्ताचार्य ही नहीं, बौद्ध दर्शन के आधुनिक विद्वान् रामशङ्कर त्रिपाठी भी वेदान्तियों की उक्त व्याख्या से सहमति प्रकट करते हैं। **मुरलीधर पाण्डेय, सुधांशु शेखर शास्त्री, रघुनाथ गिरि, आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती** इत्यादि वेदान्ताचार्य स्पष्टरूप से बुद्ध के प्रति की गई शङ्कर की टिप्पणी को सर्वथा उचित मानते हैं। बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों के खण्डन में बुद्ध का प्रसङ्ग लाना और उन पर व्यक्तिगत टिप्पणी करना कहाँ तक उचित है, इस बिन्दु पर भी वेदान्त समर्थक-आधुनिक विद्वान् आचार्य शङ्कर के समर्थन में खड़े दिखाई देते हैं। किन्तु उनके समर्थक विचार दार्शनिक शैली

के अनुकूल नहीं हैं। जहाँ **सुधाशुं शेखर शास्त्री** मानते हैं कि अनुयायियों में विवाद के लिए प्रधान पुरुष को बीच में लाना समाज की परम्परा है जैसे बुद्ध में सैनिकों की जय-पराजय से राजा को जोड़ना। वहीं **रघुनाथ गिरि** मानते हैं कि बुद्ध के उपदेशों के कारण ही बौद्ध दार्शनिकों ने नित्यात्मवाद का विरोध किया और अनात्मवाद का प्रचार किया। इसलिए सर्वप्रथम आलोच्य बुद्ध ही हैं। इन्हीं की यह मान्यता भी उल्लेखनीय है कि शङ्कर ने युग की उस माँग के अनुरूप आचरण करते हुए बुद्ध के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया, जो बुद्ध की विरोधी थी। **आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती** मानते हैं कि बुद्ध का दुःस्साहस, यज्ञ के विरोध से प्रारम्भ होकर वेद तक जा रहा था और इस प्रवाह को रोकना, शङ्कर के लिए आवश्यक था, वह उन्होंने किया और सर्वथा उचित किया।

५. ब्रह्मसूत्र और बौद्ध दर्शन

ब्रसू, वेदान्त के प्रारम्भिक इतिहास का प्रतिबिम्ब और उसके भावी विकास की धुरी है। इसमें पूर्ववर्ती वेदान्त विचारधारा के विभिन्न मत-मतान्तरों का सूत्र-शैली में समन्वय किया गया है। इसके साथ ही ब्रह्म-विद्या के सिद्धान्त-पक्ष और अन्य दर्शनों के मतों को जिस खण्डनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है उसके फलस्वरूप यह वेदान्त दर्शन का आधारभूत एवं मानक ग्रन्थ बन गया है। इसी पर परवर्ती वेदान्ताचार्यों ने नाना भाष्य लिखकर, वेदान्त को पल्लवित और पुष्पित किया। प्रधान भाष्यकारों के इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो **ब्रसू** से वल्लभ तक के काल का अन्तराल लगभग १००० वर्ष का है और इसी बीच शङ्कर, रामानुज, निम्बार्क और मध्व ने भी इसी के माध्यम से अपनी वेदान्तिक दृष्टि को अभिव्यक्त किया। इस पृष्ठभूमि में, यह कहा जा सकता है कि वेदान्त के शङ्कर, रामानुज आदि आचार्य ब्रह्म, माया के स्वरूप और सम्बन्ध पर भले ही आन्तरिक मतभेद रखते हों किन्तु वेदान्त के इस आधार-ग्रन्थ के महत्त्व के प्रति वे एकमत थे। **ब्रसू** की यह प्रतिष्ठा वेद और उप की भाँति ही मानी जा सकती है। इसीलिए इसे प्रस्थानत्रयी में स्थान मिला।

ब्रह्मसूत्रकार ने अन्य दर्शनों के साथ बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों को भी पर्याप्त महत्त्व दिया। इसी के फलस्वरूप परवर्ती वेदान्ताचार्य भी बौद्ध दर्शन पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए बाध्य हुए। **ब्रसू** में बौद्ध दर्शन को दिया गया महत्त्व अतीत के संवाद का भी संकेत करता है। **ब्रसू** के इस आधारभूत योगदान के बिना वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध के अतीत और परवर्ती विकास की कल्पना भी कठिन है।

६. माण्डूक्यकारिका और बौद्ध दर्शन

वेदान्त की विचारधारा को अथवा उसके ब्रह्मवाद को सुनिश्चित अद्वैतवादी दिशा देने का श्रेय, आचार्य गौडपाद को है। इसके अतिरिक्त इस वेदान्ताचार्य को यह श्रेय भी दिया जाता है कि इसने वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध को भी सुनिश्चित किया और अभिनव दिशा दी। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि प्रथम दिशा में, वेदान्त ने विकास के ऊँचे शिखरों पर ध्वज-स्थापन किया। किन्तु इस दूसरी दिशा का प्रारम्भ और अन्त गौडपाद के साथ ही हो गया। यह दूसरी दिशा, ब्रह्मसूत्रकार से भिन्न थी, एक दार्शनिक की ही नहीं, एक साधक और समन्वयक की भी थी। आचार्य गौडपाद ने एक ही उप के आधार पर जिस कारिका-शैली में अपने अज्ञातवाद को प्रस्तुत किया, उसके पूर्व वे बौद्ध साहित्य के मर्म और शैली को आत्मसात् कर चुके थे, ऐसा कुछ विद्वानों^१ का मत है। उनका यह बौद्ध ज्ञान और उसके प्रति सामञ्जस्य की भावना उनके कारिकाग्रन्थ में स्पष्ट परिलक्षित होती है। माध्यमिक दर्शन के विज्ञानवाद और शून्यवाद दोनों को उन्होंने युक्तिपूर्वक ग्रहण किया। संक्षेप में, उनकी शैली पर नागार्जुन का प्रभाव माना जाता है। विज्ञानवाद-सम्मत, विज्ञान के स्वरूप और चित्त की अवस्थाओं को उन्होंने ब्रह्मज्ञान के महत्त्वपूर्ण सोपान की मान्यता प्रदान की है। बौद्ध शब्दों को वेदान्त की दृष्टि से व्याख्यात करना और विज्ञानवाद की पद्धति से उप के सत्य को सिद्ध करना, उनके इस प्रयत्न के साक्षी हैं कि वे वेदान्त और बौद्ध किंवा श्रुति और तर्क की दूरी को कम करने का संकल्प रखते थे।^२

गौडपाद और शून्यवाद में जो तात्त्विक और दृष्टिगत भेद है उसे संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि एक समस्त व्यावहारिकताओं के रहते हुए भी पारमार्थिक सत् का पक्षधर है तो दूसरा सत् असत् से विलक्षण, चतुष्कोटिविनिर्मुक्त, सभी दृष्टियों से अतीत, सभी स्वभावों से अतीत, परमार्थ का अनुसन्धाता है। दोनों दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले Caterina Conio का यह निष्कर्ष समर्थन योग्य प्रतीत होता है कि गौडपाद का दर्शन बौद्धों से प्रभावित भले ही हो। तथापि न केवल बौद्ध दार्शनिक

१. गौडपाद की विचारधारा में माका एक तरह से घुल गई है और अद्वैतवाद (वेदान्त) पर बौद्ध प्रभाव को दर्शाती है। तथापि गौडपाद माध्यमिकों से इस प्रभाव को लेकर उसे लक्ष्य की अन्तम ऊँचाई तक नहीं पहुँचा सके। Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 87-88.

२. *Ibid*, p. 120.

विचारधारा से भिन्नता रखता है अपितु पूर्ववर्ती वेदान्त की विचारधारा से भी उसका भेद है।^१

अद्वैतवादी होने के कारण, पारमार्थिक सिद्धान्त की व्याख्या में भाषा और शैली-सम्बन्धी जो कठिनाई सभी अद्वैतवादियों के समक्ष आती है। (चाहे वह वेदान्त, शैव अथवा बौद्ध अद्वैतवाद हो) वैसी कठिनाइयाँ गौडपाद के समक्ष भी रही हैं और जिस शैली का आचार्य ने आश्रय लिया है, उस पर बौद्ध आचार्यों के प्रभाव को स्वीकार किया जाता है, इसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। वेदान्त के श्रुति-प्रामाण्य की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए भी गौडपाद ने तर्क को यथोचित महत्त्व दिया है, इसे भी बौद्ध प्रभाव मानना अनुचित नहीं है।

गौडपाद पर बौद्ध प्रभाव को उद्घाटित और स्वीकृत करने का तात्पर्य उनकी चिन्तन-प्रतिभा की स्वतन्त्रता पर आक्षेप नहीं है, न ही वेदान्त के प्रति उनकी निष्ठा में यह शिथिलता का उदाहरण माना जाना चाहिए। अपितु प्रभाव के ऐसे प्रसंगों से यही ध्वनित होता है कि गौडपाद, वेदान्त और बौद्ध को सर्वथा विरोधी विचारधारा नहीं मानते थे। यह जानते हुए भी कि बौद्ध, श्रुति-विरोधी हैं तब भी वे दोनों में सार्थक व तात्त्विक सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उन्होंने दोनों विचारधाराओं में मतभेद की सीमा-रेखाओं को समझते हुए भी उनमें दूरी को कम करने का प्रयत्न किया तथा वेदान्त के मतानुकूल ग्राह्य का ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं किया। वे यह जानते थे कि वेदान्त के आचार्यों और अनुयायियों को उनका यह प्रयत्न अप्रिय लगेगा तथापि उन्होंने इस क्रान्तिकारी मार्ग का अनुसरण किया।

अजातवाद और शून्यवाद की निकटता पर पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है। इन दोनों में समानता सायास भी हो सकती है तथा एक ही सिद्धान्त और दृष्टि के अनुकरण के कारण भी आ सकती है। कारण चाहे जो भी हो, दोनों में साम्य के साथ वैषम्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार 'चित्त' भी एक ऐसी अवधारणा है जो दोनों विचारधाराओं की निकटता की द्योतक है।

१. (a) गौडपाद का दर्शन बौद्धों के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी बौद्धों से भिन्न और उससे पूर्ववर्ती वेदान्त की विचारधारा से भिन्न है। Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-Karika*, p. 139.

(b) यदि गौडपाद के सभी तर्कों को स्वीकार न किया जाए और यह भी मान लिया जाए कि ब्रह्म का ज्ञान प्रातिभ है और बौद्धिक प्रतिभा और तार्किक ज्ञानों में अन्तर नहीं है, तब भी माध्यमिक और गौडपाद में यही बिन्दु अन्तर करता है। क्योंकि माध्यमिक तर्क का उपयोग खण्डन में करता है और अपनी स्वयं की कोई दृष्टि देने का प्रयत्न नहीं करता। *Ibid*, p. 167.

७. शाङ्करभाष्य और बौद्ध दर्शन

आचार्य गौडपाद के परवर्ती (अथवा प्रशिष्य) शङ्कराचार्य, प्रस्थानत्रयी द्वारा प्रवर्तित वेदान्त अथवा ब्रह्मविद्या को, गौडपाद द्वारा समारम्भ अद्वैत-मार्ग पर अग्रसर करते हुए चरम पर पहुँचाने वाले अद्वितीय आचार्य हैं। उन्होंने जिस **ब्रसूशाभा** को सविस्तर प्रस्तुत किया, उसने प्राचीन अथवा पूर्ववर्ती अनेक अव्यवस्थाओं को व्यवस्थित किया, असङ्गतियों में सङ्गति स्थापित की, अस्पष्टताओं और जटिलताओं को सरल और स्पष्ट बनाया। उन्होंने वेदान्त के अन्य दर्शनों के साथ सम्बन्ध और मतभेद को युक्तिपूर्वक उजागर किया तथा ब्रह्म, माया, मोक्ष जैसे तत्त्वों की विलक्षण व्याख्याएँ भी कीं। किन्तु इसके साथ ही अनेक नवीन विवादों को जन्म भी दिया।

वेदान्त दर्शन के अतीत और अनागत स्वरूप की दृष्टि से आचार्य शङ्कर का महत्त्व सर्वाधिक है। जो स्थान कभी **ब्रसू** का था, वही स्थान बाद में **शारीरकभाष्य** अथवा शङ्कर का हो गया। इसके साथ ही बौद्ध विचारधारा से उनके सम्बन्ध का अध्ययन और विस्तार पा गया। गौडपाद स्पष्ट सामञ्जस्य और बौद्ध दर्शन के प्रति सद्भाव के लिए जाने जाते हैं। किन्तु शङ्कर, बौद्ध दर्शन से अपने अस्पष्ट और अनिश्चित सम्बन्ध के लिए **प्रच्छन्न बौद्ध** के लाञ्छन से लाञ्छित होते हैं तथा इसमें भी उल्लेखनीय बात यह है कि यह लाञ्छन बौद्धों के द्वारा नहीं अपितु वेदान्त के ही परवर्ती आचार्य (रामानुज) द्वारा उन पर लगाया गया।^१ इस लाञ्छन की यथार्थता पर विचार किया जा चुका है। किन्तु यहाँ प्रसङ्गानुसार यह उल्लेख आवश्यक है कि यह आरोप शङ्कर दर्शन की बौद्ध दर्शन से समानता, निकटता और आदान-प्रदान की भावना की पुष्टि करता है।

८. वैष्णव भाष्यकार और बौद्ध दर्शन

आचार्य शङ्कर के बाद **ब्रसू** के भाष्यों का क्रम वैष्णवाचार्यों ने आगे बढ़ाया। इसी के अन्तर्गत उन्होंने बौद्ध दर्शन को भी आलोचना का विषय बनाया।

१. इतिहास के तथ्यों को अलग रखते हुए अन्य दृष्टि से देखा जाए तो वैष्णव और अन्य द्वैतवादी सम्प्रदाय वेदान्तियों पर प्रच्छन्न बौद्ध होने का आरोप लगाते हैं। **पद्म-पुराण** का वक्तव्य इसके लिए प्रमाण है, जिसमें महादेव नामक एक आचार्य कहता है- हे ईश्वर मुझे क्षमा करो, मैंने ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर वेदान्त की ऐसी किताब लिखी है जो गुप्त रूप से बौद्धों की है। Sempa, Dordze, Buddhism and Hinduism, p. 50.

ये आचार्य यद्यपि शाङ्कर मत से सहमति नहीं रखते थे तथापि इनके बौद्ध सन्दर्भ, शाङ्कर भाष्य के रचना-विधान इत्यादि का ही अनुकरण करते हैं।

आचार्य रामानुज का बौद्ध दर्शन-विषयक ज्ञान, विवेचनात्मक था। वे उसके गुण-दोषों और सबल-निर्बल पक्षों से ही परिचित नहीं थे अपितु पूर्ववर्ती वेदान्ताचार्य और विशेषरूप से शङ्कर किस प्रकार बौद्ध मत से प्रभावित थे, इस पर भी उनका अपना सुनिश्चित मत था। यही कारण है कि पूर्ववर्ती शाङ्कर दर्शन और बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए उन्होंने शङ्कर पर वैसी टिप्पणी (प्रच्छन्न बौद्ध) की जैसी टिप्पणी करने का साहस स्वयं बौद्धों ने भी कभी नहीं दिखाया था।

भेदाभेदवादी निम्बार्क, भेदवादी मध्व और शुद्धाद्वैतवादी वल्लभ का बौद्ध दर्शन-विषयक जो ज्ञान भाष्यों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है, वह मुख्यरूप से शाङ्कर भाष्य का ही अनुकरण करने वाला है। यद्यपि शाङ्कर मत से उनके मतभेद सुविदित और स्पष्ट हैं। वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध की जो त्रिरूपता ब्रह्म, गौडपाद और शङ्कर में दिखाई देती है, उसमें कोई नवीन योगदान इन वैष्णवाचार्यों ने नहीं किया है, एकमात्र उल्लेखनीय पक्ष यह है कि इन आचार्यों में कुछ ने बौद्धों के विरोध में आचार्य शङ्कर को भी बौद्ध पक्ष में डाल दिया।

पाँचों भाष्यों में आचार्य शङ्कर का भाष्य न केवल काल की दृष्टि से सर्वप्रथम है अपितु कलेवर की दृष्टि से भी उसका स्थान सर्वोपरि है। शङ्कर की अपेक्षा रामानुज ने लगभग एक तिहाई सूत्रों को अधिक महत्त्व दिया है।

भाष्य में प्रस्तुत प्रतिपाद्य के मूल्याङ्कन की दो दृष्टियाँ हो सकती हैं- (i) सूत्र के साथ भाष्य की सङ्गति (ii) प्रस्तुत विषय अथवा बौद्ध पक्ष के साथ न्याय। दूसरे शब्दों में, सूत्रों के भावों को पूर्ववर्ती भाष्यकारों ने जिस रूप में ग्रहण किया अथवा जितने विस्तार के साथ प्रस्तुत किया था, भाष्य में न केवल उन मन्तव्यों को अतिसङ्क्षेप में प्रस्तुत किया गया है अपितु उनके सूत्रार्थों में भी मतभेद है। यथा- सूत्र (सर्वथानुपपत्तेश्च, २/२/३२) का प्रयोग शङ्कर व रामानुज द्वारा सम्मिलितरूप से बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों के खण्डन अथवा उनकी मान्यताओं की अनुपपत्ति दर्शाने में किया गया है, जबकि आचार्य निम्बार्क ने तत् सूत्र द्वारा शून्यवाद के खण्डन को ही अभिलक्षित किया है।

यदि शङ्कर जैसे पूर्ववर्ती भाष्यकार बौद्ध मत का खण्डन विस्तार से नहीं करते अथवा उनकी मान्यताओं को सविस्तर पूर्वपक्ष में नहीं रखते, तो मात्र

सन्दर्भ विशेष में प्रस्तुत वाक्यार्थ के आधार पर बौद्ध मत को अथवा आचार्य निम्बार्क की दृष्टि में बौद्ध दर्शन से तात्पर्य को, समझ पाना अत्यन्त दुष्कर होता।

जन्म और मृत्यु अथवा उत्पत्ति और विनाश को एक ही तत्त्व की दो अवस्थाएँ मानना और इसी प्रकार भाव और अभाव को एक तत्त्व की दो अवस्थाएँ मानना, रामानुज का दृष्टिकोण है, जिसे उन्होंने विज्ञानवाद के खण्डन में अभिव्यक्त किया है जबकि क्षणभङ्गवाद के इसी पक्ष के प्रति शून्यवाद का खण्डनात्मक तर्क है कि उत्पत्ति और विनाश तथा भाव और अभाव परस्पर सापेक्ष हैं। अतः क्षणभङ्गवाद के विरुद्ध रामानुज और शून्यवाद द्वारा दी गई खण्डनात्मक युक्तियों में दृष्टि-भेद है। रामानुज अपनी युक्तियों द्वारा बाह्य के माध्यम से नित्य तत्त्व को सिद्ध करना चाहते हैं जबकि शून्यवाद बाह्य पदार्थों की परस्पर सापेक्षता बताकर उनसे भिन्न निरपेक्ष और निःस्वभाव शून्य तत्त्व की सिद्धि करना चाहता है। इस स्थिति में शङ्कर और अन्य आचार्यों का मत विचारणीय है।

क्षणभङ्गवाद पर आक्षेप की अनेक दृष्टियाँ हैं। आलोचक की दृष्टि में यह वाद असत् से उत्पत्ति का वाद है। बिना कारण के कार्योत्पत्ति का वाद है। बिना नित्य कर्ता के कारणों से कार्य की उत्पत्ति का वाद है, कारण से कार्य की सम्बद्धता का वाद है।

ब्रह्मसूत्रकार, सर्वास्तिवाद और क्षणभङ्गवाद की प्रधान अवधारणाओं में विशेष रुचि दिखते हैं जबकि माण्डूक्यकारिकाकार की रुचि विज्ञानवाद और शून्यवाद की अवधारणाओं में है। आचार्य शङ्कर तीनों सम्प्रदायों की अवधारणाओं का उल्लेख करते हैं फिर उनमें सर्वास्तिवाद का आधिक्य है। रामानुज इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने उक्त सम्प्रदायों की तत्त्वमीमांसा के साथ प्रमाणमीमांसीय अवधारणाओं का भी इनमें समावेश किया है। निम्बार्क, मध्व और वल्लभ बौद्ध की अवधारणाओं को प्रस्तुत करने की दृष्टि से न्यूनाधिक रूप में शङ्कर का ही अनुकरण करते हैं।

रामानुज द्वारा क्षणभङ्गवाद की आलोचना का एक लक्ष्य उसकी असङ्गति और अव्यावहारिकता बताना है। किन्तु दूसरी ओर वह इस प्रकार खण्डनात्मक युक्तियों का चक्रव्यूह बनाना चाहते हैं जिससे यह सिद्ध हो सके कि इस सिद्धान्त में क्षणिक तत्त्व न सत् और न असत् है। पूर्वपक्ष सबको असत् और सबको सत् नहीं मान सकता और जिसे एक क्षण के लिए वह सत् कहता है

उसका दूसरे क्षण से पूर्व विनाश मान लेने से वह सत् की व्याख्या पर भी स्थिर नहीं रहता। क्योंकि उत्तर पक्ष की मान्यता है कि सत् नित्य और अविनाशी होता है जबकि पूर्वपक्ष सत् को क्षणिक और विनाशशील मानता है। इसलिए उत्तरपक्ष की दृष्टि में क्षणिक और सत् परस्पर विपरीत धारणाएँ हैं (श्रीभाष्य, २/२/२१)।

विनाश एक कार्य है और उसका कारण अवश्य होना चाहिए जबकि क्षणभङ्गवाद में बिना कारण के विनाशरूपी कार्य माना जाता है। आलोचक आचार्य रामानुज की यह प्रथम आपत्ति है। दूसरी आपत्ति यह है कि सत् यदि वस्तुतः सत् है तो उसका विनाश ही असंभव है और विनाश असंभव होने से उत्पत्ति भी असंभव है (वही)।

पूर्वपक्ष बिना कारण के विनाशरूपी कार्य की उत्पत्ति में दीपक का उदाहरण देता है किन्तु उत्तरपक्ष इस उदाहरण का खण्डन करते हुए घटादि का प्रत्युदाहरण देता है (वही)।

शङ्कर, रामानुज और वल्लभ ने बौद्धों की अप्रतिसंख्यानिरोध की अवधारणा का उल्लेख तो किया है किन्तु उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने में विशेष रुचि नहीं दिखाई है, इन्होंने उसका परिचय केवल यह कहकर दिया है कि अप्रतिसंख्यानिरोध, प्रतिसंख्यानिरोध के विपरीत है जबकि बौद्ध ग्रन्थों में इसके स्वरूप को भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है।

निरोध का अर्थ, विनाश मानना बौद्ध अवधारणा के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता क्योंकि निरोध और विनाश में महद् अन्तर है। निरोध शब्द का सम्बन्ध बौद्धों की प्रवाह की अवधारणा से है। भूत, भौतिक, चित्त, चैतन्य का वे निरन्तर प्रवाह मानते हैं। वहाँ विज्ञान भी स्थिर नहीं, प्रवाहरूप है। इसलिए उस प्रवाह का निरुद्ध होना आवश्यक है। यह प्रवाह जीवन के सातत्य का प्रतीक है और निरोध, बार-बार जन्म की प्रक्रिया का सदा के लिए अवरुद्ध हो जाना है अर्थात् निर्वाण है। वेदान्त या नित्य आत्मवादियों में प्रवाह की अवधारणा नहीं है, वहाँ केवल सृष्टि, स्थिति और विनाश तथा आत्मा की स्थिरता की अवधारणा है। स्थिर आत्मा से प्रवाह और निरोध की तुलना की जा सकती है किन्तु साथ ही उल्लेखनीय एक भेद यह है कि सृष्टि, स्थिति विनाश सकारण है, ये पदार्थ के स्वभाव नहीं हैं जबकि प्रवाहरूपता पदार्थ का स्वभाव है और निरोध प्रयत्न-साध्य।

रामकृष्ण आचार्य^१ ने अपनी सूत्रानुसारी तुलनात्मक दृष्टि के अनुसार सूत्रों के पाठ, उनकी परस्पर सङ्गति, उनके शब्द और अर्थ पर भाष्य-चतुष्टय के माध्यम से विचार किया है। प्रासङ्गिक रूप में यह भी दिखाया गया है कि किस भाष्य ने किस सूत्र का प्रधान निराकरणीय सम्प्रदाय किसे माना है। क्षणिकत्वाच्च सूत्र (२/२/३१) पर लेखक की यह टिप्पणी उद्धरणीय है। रामानुज को छोड़कर अन्य सभी भाष्यकारों ने क्षणिकत्वाच्च सूत्र को अधिक माना है- वैष्णव-भाष्यकारों से पूर्ववर्ती भाष्यकारों में शङ्कर उक्त सूत्र को मानते हैं और भास्कर नहीं मानते, किन्तु विचार करने पर यह मौलिक सूत्रपाठ का अंश प्रतीत नहीं होता... ऐसा प्रतीत होता है कि क्षणिकत्वाच्च सूत्र ऐसे ही किसी मत का प्रसाद है जो पदार्थों की सत्ता न मानते हुए भी उनकी

१. (a) समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्ति (२/२/१७) में 'अप्राप्ति' अंश का तात्पर्य वल्लभ को छोड़कर अन्य भाष्यकारों के अनुसार 'समुदाय' के स्वरूप की निष्पत्ति के अभाव से है और वल्लभ के अनुसार उक्त समुदायों की जीव को प्राप्ति के अभाव से है। वल्लभ की अपेक्षा अन्य भाष्यकारों का पक्ष अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ब्रवैअ, पृ. २७९.
- (b) सूत्र २/२/१८ का सूत्रपाठ भाष्यकारों ने समानरूप में नहीं माना है। रामानुज व निम्बार्क के अनुसार इसका पाठ इतरेतरप्रत्ययत्वादुपपन्नमिति चेन्न संघातभावानिमित्तत्वात् है और अन्य भाष्यकारों के अनुसार इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् है। शङ्कर ने उक्त पाठों में से द्वितीय पाठ को माना है। द्वितीय पाठ मौलिक प्रतीत होता है और प्रथम पाठ उसका संशोधित रूप है। वही, पृ. २७९.
- (c) २/२/२५-२६ का प्रयोग मध्व को छोड़कर सभी भाष्यकारों ने पूर्वसूत्रों में निराकृत मत से ही सम्बन्धित माना है जो कि उचित है। मध्व इसमें असदहेतुकोत्पत्तिवाद का निराकरण मानते हुए भी उक्तवाद को शून्यवाद का सिद्धान्त समझते हैं जो स्पष्टतः तथ्यविपरीत है। शून्यवाद अनिरोधमनुत्पादम् के सिद्धान्त को मानता है, तदनुसार सत् या असत् सभी से उत्पत्ति का स्पष्ट निराकरण करता है। वही, पृ. २८५-८६.
- (d) २/२/२५-२७ में रामानुज ने सौत्रान्तिकों के इस सिद्धान्त का निराकरण माना है कि अनुभूत पदार्थ क्षण भर में असत् होने पर भी अपने आकार को ज्ञान में छोड़ जाता है जिसके वैचित्र्य से अर्थ-वैचित्र्य का अनुमान किया जाता है। निम्बार्क व वल्लभ ने इसमें असत् से सत् की उत्पत्ति का निराकरण माना है। मध्व ने निम्बार्क व वल्लभ के समान सूत्र का उक्त प्रतिपाद्य मान कर यह भी कहा है कि इसमें शून्यवाद का निराकरण है। वही, पृ. २८५.
- (e) सूत्र २/२/३० में मध्व व वल्लभ को छोड़कर अन्य भाष्यकार उक्त सूत्र को पूर्वसूत्रों के प्रतिपाद्य (विज्ञानवाद) से पृथक् कर इसमें एक भिन्न विचारधारा (शून्यवाद) का निराकरण मानते हैं, मध्व व वल्लभ इसे पूर्वसूत्रों से ही सम्बद्ध रखते हैं जो कि उचित प्रतीत होता है। क्योंकि जैसा कि सूत्र के स्वरूप से स्पष्ट है सर्वधानुपपत्तेश्च से स्पष्ट है, इसमें अपने से पूर्वसूत्रों का सामान्य निन्दात्मक उपसंहार किया गया है। वही, पृ. २९३.

उपलब्धि के आश्रय को नित्य मानता है किन्तु आश्रय को नित्य माना जाय या क्षणिक, सूत्रकार अपने सिद्धान्त को (२/२/२७-२८ में) स्पष्ट कर चुका है कि उपलब्ध पदार्थों का अभाव नहीं, भाव है।

सर्वास्तिवाद दो प्रकार की क्षणिक सत्ताओं का संघात स्वीकार करता है और पारिभाषिक अर्थ में उसे संघात या समुदाय का नाम देता है। इसी समुदाय को आन्तर और बाह्य दोनों प्रकार का कहा जा सकता है। वेदान्त के आचार्यों ने और विशेषरूप से शङ्कर ने 'क्षणभङ्गवाद में समुदाय की सिद्धि नहीं हो सकती', इस आलोचनात्मक पक्ष को रखा है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसी आलोचना में दोनों प्रकार के समुदायों का खण्डन अन्तर्निहित है। क्षणभङ्गवाद समुदाय के कितने ही प्रकार मानें और वस्तुतः प्रत्येक बाह्य पदार्थ घटादि अपने आप में समुदाय है ही इसलिए आन्तर और बाह्य दोनों स्तरों पर समुदाय का नानात्व तो सिद्ध है ही इसलिए स्वाभाविक रूप से आलोचना का लक्ष्य समुदाय की असिद्धि है तथा समुदाय के प्रकारों का प्रश्न यहाँ गौण बन जाता है। तथापि वैष्णव भाष्यकारों ने समुदाय के खण्डन को विस्तार देने के लिए समुदाय के प्रकारों का प्रश्न उठाया है और इस पक्ष से प्रेरणा लेकर रामकृष्ण आचार्य ने समुदाय के विवरणों पर तुलनात्मक रूप से विचार किया है। फिर भी यहाँ यह कहना असङ्गत प्रतीत नहीं होता कि वेदान्त के भाष्यकारों द्वारा बौद्ध पक्ष के खण्डन में समुदाय का सामान्य स्वरूप ही प्रधान आलोच्य है, उसके प्रकार नहीं।

सामान्यतया प्रत्येक दर्शन-सम्प्रदाय, अन्य सम्प्रदायों को अपना विरोधी मानता है। तथापि यह प्रश्न रोचक और महत्वपूर्ण है कि किस सम्प्रदाय का सर्वाधिक विरोधी सम्प्रदाय कौन सा है? वैदिक, अवैदिक, आस्तिक, नास्तिक

१. (a) दो समुदाय, रामानुज को छोड़कर अन्य भाष्यकारों के अनुसार, आन्तर और बाह्य समुदाय हैं, जिनमें से प्रथम विज्ञानादिस्कन्धहेतुक व द्वितीय परमाणुहेतुक है। रामानुज के मत में उक्त दो समुदाय अप्णुहेतुक पृथिव्यादिभूतरूप समुदाय व पृथिव्यादिहेतुक शरीरेन्द्रिय विषयरूप समुदाय हैं। रामानुज की अपेक्षा अन्य भाष्यकारों का यह पक्ष अधिक उपयुक्त एवं बौद्ध मान्यता के अनुकूल है। ब्रवैअ, पृ. २७९.

(b) उभयहेतुकेऽपि... (२/२/१७) इस अंश का तात्पर्य मध्य को छोड़कर अन्य भाष्यकारों के अनुसार उक्त विचारधारा के द्वारा स्वीकृत परस्परभिन्नहेतुक दो समुदायों से है। मध्य के अनुसार द्विहेतुक एक समुदाय से है। मध्य का उक्त अर्थ न तो निराकरणीय मत की मान्यता के अनुकूल प्रतीत होता है और न सूत्राक्षरों के। उक्त अंश का वही अर्थ उचित प्रतीत होता है जो अन्य भाष्यकारों ने माना है। वही, पृ. २७८.

जैसे वर्गीकरण इस विरोध को कम करने के उपाय हैं। किन्तु सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का सामान्य तुलनात्मक विश्लेषण ही यह निष्कर्ष देता है कि वर्गीकरण से विरोध का वेग कम नहीं हुआ है। वेदान्त और सांख्य दोनों ही वैदिक दर्शन माने जाते हैं तथापि शङ्कर, सांख्य को प्रधान मल्ल कहते हैं।^१ जहाँ तक वेदान्त और बौद्ध का प्रश्न है, आलोच्य ग्रन्थों में सभी बौद्ध सम्प्रदाय समानरूप से विरोधी नहीं हैं। ब्रह्मसूत्रकार, प्रधानरूप से सर्वास्तिवाद और उसके भी अन्तर्गत क्षणभङ्गवाद को अपनी युक्तियों का लक्ष्य बनाता है तो गौडपाद और शङ्कर का विरोध विज्ञानवाद के प्रति विशेष दिखाई देता है। रामानुज, मध्व और वल्लभ, शून्यवाद को तरजीह देते हैं, तो निम्बार्क सभी सम्प्रदायों के प्रति सामान्य विरोध-भाव रखते हैं। अन्य भारतीय दर्शन-सम्प्रदायों की तुलना में यदि वेदान्त के इन ग्रन्थों पर दृष्टि डाली जाय तो ब्रसू और माण्डूका^२ का प्रधान विरोधी बौद्ध सिद्ध होता है, शङ्कर का सांख्य और रामानुज का शाङ्कर अद्वैतवाद। यहाँ विशेषरूप से यह उल्लेखनीय है कि दर्शनाचार्य और विशेषरूप से अद्वैतवादी दर्शनाचार्य अपनी समन्वय दृष्टि की सार्थकता, सर्वथा विरोधी का समन्वय करने में ही मानते हैं इसलिए गौडपाद ने बौद्ध विज्ञानवाद का और शङ्कर ने व्यवहार के स्तर पर सांख्य का समन्वय किया।

(अ) पारिभाषिक शब्द

सम्प्रदाय विशेष के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान वस्तुतः दर्शन विशेष की अवधारणाओं अथवा मान्यताओं के प्रति प्रतिपक्षी के सतही व गूढ़ ज्ञान का

१. (a) शङ्कर बौद्ध दर्शन के महान् विरोधी थे। इस बात का प्रमाण शङ्कर के ग्रन्थों में मिलता है। पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, सारनाथ में आयोजित संगोष्ठी, अप्रैल २००२, विषय-बौद्ध दर्शन और शङ्कर।
- (b) वैदिक आचार्यों में यद्यपि परस्पर भी छिटपुट झड़पें होती रहती थीं किन्तु उन सबके प्रबल प्रहारों का केन्द्र बिन्दु बौद्ध दर्शन ही रहा है। सिंह, ईश्वर, भामती, एक अध्ययन, पृ. १२८.
- (c) शङ्कर का विरोध न्याय, सांख्य, वैशेषिक, जैनादि सभी से था इसलिए केवल बौद्ध मत के बारे में यह कहना कि सभी विरोधी सम्प्रदायों को छोड़कर उन्होंने केवल बौद्ध मत को भारत से निष्कासित किया और वह भी उस मत को जो अन्य सभी मतों में सशक्त व सहनशील था और वेदान्त के प्रति सर्वाधिक सहानुभूति रखने वाला था। Dorze, Sempa, *Buddhism and Hinduism*, p. 51.
२. गौडपाद को वेदान्त की व्याख्या करने में दूसरे दर्शनों से उतनी चुनौती नहीं मिली जितनी वेदान्त की अपनी परम्परा से मिली। Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukaya Karika*, p. 127.

सशक्त प्रमाण होता है। बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से शङ्कर का भाष्य सर्वाधिक ६४ शब्दों का उल्लेख करता है जबकि अन्य भाष्यकारों के ग्रन्थों में लगभग इन्हीं में से कुछ की पुनरावृत्ति दिखाई देती है।

(आ) युक्तियाँ

युक्तियाँ, दर्शन-पुरुष की धमनियाँ हैं जिनमें उसके चिन्तन के प्राण बसते हैं। इन्हीं के माध्यम से दर्शन जीवन-विकास की साँसें लेता है। भारतीय दर्शन का परिप्रेक्ष्य में इसके उदाहरण प्रभूत हैं। बौद्ध और वेदान्त के परस्पर सम्बन्ध का विशाल प्रासाद इन्हीं युक्तियों पर खड़ा है। इन युक्तियों ने वेदान्त के ग्रन्थों में नाना-रूप बदले हैं और इनके आधार को स्वयं ब्रह्म ने तैयार किया है। इसमें पूर्वपक्ष की समर्थक युक्तियों का अभाव है किन्तु प्रत्येक सूत्र एक-एक खण्डनात्मक युक्ति से मण्डित है। आचार्य गौडपाद ने भी युक्तिरहित पूर्वपक्ष को प्रस्तुत करने में रुचि दिखाई है। परवर्ती वेदान्ताचार्यों ने युक्तियों का, बौद्ध सन्दर्भ में, विकास किया। उन्होंने न केवल खण्डनात्मक युक्तियों से सन्दर्भ को समृद्ध किया अपितु बौद्ध पक्ष को भी यथासंभव युक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया है। यह प्रवृत्ति वेदान्ताचार्यों की न्यायप्रियता की द्योतक है जो निहत्थे से लड़कर विजयश्री प्राप्त करना नहीं चाहती।

बौद्ध दर्शन के खण्डन में, भाष्यकारों में सामान्यतया यह परिपाटी रही है कि पूर्वपक्ष का न्यूनाधिकरूप में उल्लेख करते हुए साधक और बाधक युक्तियों को प्रस्तुत किया जाय। इस दृष्टि से इन १५ सूत्रों में भी उपलब्ध सामग्री को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- (i) पूर्वपक्ष, (ii) पूर्वपक्ष की साधक युक्तियाँ (iii) उत्तर-पक्ष की बाधक युक्तियाँ।

सभी बिन्दुओं के निष्कर्ष का प्रश्न अभी दूर है किन्तु अध्ययन के आधार पर यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पाँचों भाष्यों में किसी भाष्यकार ने अपने सिद्धान्त के प्रति आग्रह कभी किसी अन्य सूत्र के माध्यम से प्रकट किया है तो अन्य भाष्यकार ने किसी दूसरे सूत्र के माध्यम से। किन्तु सभी ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि सिद्धान्त पक्ष से तुलना करने पर पूर्वपक्ष अनुपयोगी ही सिद्ध होता है। आचार्य शङ्कर के लिए अन्य भाष्यकारों से भेद प्रदर्शित करने का अवसर नहीं था किन्तु रामानुज के बाद यह अवसर क्रमशः बढ़ता गया। रामानुज ने तो अनेकत्र बौद्धों के साथ शङ्कर को भी पूर्वपक्ष के रूप में प्रकट अथवा अप्रकट रूप में खड़ा कर दिया है और इस प्रकार बौद्ध दर्शन के खण्डन

के प्रसङ्ग में लिखा गया उनका भाष्य, शङ्कर पर भी प्रहार का दृष्टान्त माना जा सकता है। बौद्ध पक्ष के भी जिन बिन्दुओं पर शङ्कर ने तीक्ष्ण प्रहार नहीं किए थे, उनको भी रामानुज ने भाष्य में उठाया है। शङ्कर-कृत आलोचना की अपेक्षा रामानुज-कृत आलोचना अधिक तीक्ष्ण प्रतीत होती है। वस्तुतः दोनों आचार्यों के परस्पर प्रहारों का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से यहाँ बौद्ध दर्शन है। भाष्यों को पढ़ने से कभी-कभी ऐसा लगता है कि सूत्रकार गौण हो गया है और रामानुज की रुचि, बौद्ध दर्शन के खण्डन की अपेक्षा यह सिद्ध करने में अधिक दिखाई देती है कि बौद्ध दर्शन के जैसा ही शङ्कर का पक्ष है और दोनों समानरूप से एक पक्ष में पतित हो गए हैं। इसलिए दोनों ही तिरस्करणीय हैं।

ब्रह्म के सभी भाष्यकारों में युक्तियों का प्रयोग एक जैसा नहीं है। आचार्य शङ्कर की युक्तियाँ परपक्ष का खण्डन करने के साथ सिद्धान्त पक्ष के लिए भी जहाँ आत्म-घातक सिद्ध होती हैं, वहीं रामानुज अपनी बौद्ध-विरोधी युक्तियों से शङ्कर को भी परास्त करना चाहते हैं। शङ्कर ने यद्यपि बौद्ध दर्शन के खण्डन के प्रसङ्ग में कार्यकारणवाद को लेकर युक्तियाँ दी हैं लेकिन चूँकि शङ्कर स्वयं कार्यकारणवाद को नहीं मानते इसलिए वे युक्तियाँ स्वयं शङ्कर के विरुद्ध भी जाती हैं। यही रामानुज का शङ्कर से वैशिष्ट्य है। रामानुज ने सूत्र संख्या (श्रीभाष्य २/२/२३) में स्वयं यह स्वीकार किया है कि उनकी बौद्ध-विरोधी युक्तियों का प्रयोजन केवल बौद्ध दर्शन का खण्डन नहीं है अपितु सिद्धान्त-पक्ष को सबल करना भी उनका अभीष्ट है। रामानुज के तर्कों अथवा युक्तियों को एक दृष्टि से ज्ञानमीमांसीय और तत्त्वमीमांसीय वर्गों में विभाजित किया जा सकता है तो दूसरी दृष्टि से कुछ और वर्ग बन सकते हैं जैसे- वे युक्तियाँ जो शङ्कर की युक्तियों से समानता रखती हैं, वे युक्तियाँ जो बौद्ध सहित शङ्कर पर भी लागू होती हैं तथा वे युक्तियाँ जो बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय विशेष पर लागू होती हैं। इसीलिए रामानुज का बौद्ध-खण्डन शङ्कर से भिन्न स्वरूप रखता है।

सभी वेदान्ताचार्यों ने अपनी खण्डनात्मक युक्तियों का समान लक्ष्य बौद्ध अवधारणाओं को बनाया है किन्तु ग्रन्थ विशेष के भाष्यकार होने के कारण उनकी युक्तियों में साम्य और वैषम्य दोनों हैं।

(इ) दृष्टि-शैली

वेदान्त के आचार्यों की दृष्टियों में स्वयं मतभेद हैं। ये अद्वैत और द्वैत के तथा उनके उपवर्गों के हैं। बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों की स्थिति भी लगभग वैसी ही है। अतः स्वाभाविक है कि वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों के

आचार्यों की दृष्टियाँ, बौद्ध सम्प्रदायों के प्रति भिन्न-भिन्न हों। दृष्टि-भेद का एक उदाहरण ब्रसू स्वयं हैं। उसके पारमार्थिक तात्पर्य के प्रति भी भाष्यकारों में मतैक्य नहीं है।^१

१. (a) They can neither be reduced to a single being or essence (as Śamkara would have it) nor pressed into an intraorganic mould of thought एकवस्त्वेकदेशत्वमसि in Ramanuja) It is here that the symbolic relationship of 'Bimbapratibimbabhava' as demonstrated by Madhva blazes a new trail in Understanding the Theism of Badrayana. Sharma, B.N.K. Lectures Vedanta, p. 26-27.
- (b) It is now obvious that the orthodox writers of the later part of the post-Buddhist period are superficial, confused and even mistaken in their account of the Buddhist systems. Shastri, Dharmendranath, A critique of Indian, Realism, p. 59.
- (c) अनुस्मृति के कारण क्षणिकवाद एक असमंजस दर्शन है इतना तो ब्रह्मसूत्रकार भी कहते हैं- अनुस्मृतेश्च (२/२/२५)... किन्तु ब्रसू के भाष्यकारों में मध्वाचार्य ही ऐसे एक अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने न सिर्फ इस सूत्र को बल्कि उसके आगे आने वाले सूत्र (नासतोऽदृष्टत्वात्, २/२/२६) को सर्वास्तिवाद के प्रसङ्ग में नहीं बल्कि शून्यवाद के प्रति प्रयुक्त माना है। यह हमारी विचार-प्रणाली के अनुकूल सिद्धान्त है। उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ. १०१५.
- (d) ब्रसू के सूत्रों की व्याख्या में शङ्कर बहुत आगे निकल आए हैं। पाण्डे, गोविन्दचन्द्र, सारनाथ में आयोजित संगोष्ठी, अप्रैल २००२, विषय- बौद्ध दर्शन और शङ्कर.
- (e) सूत्रकार का मत ईश्वरवादी दर्शन है (ब्रसू., १.१.२)। अतः शङ्कर से इनकी सङ्गति नहीं बैठती। Sharma, B.N.K., Lecturer Vedanta, p. 17.
- (f) मुझे लगता है कि शङ्करभाष्य की अपेक्षा वैष्णव आचार्यों की ब्रसू पर द्वैतात्मक व्याख्या सम्भवतः ब्रसू के अधिक अनुकूल थी। गुप्ता, सुरेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शन का इतिहास-१, पृ. ४२६.
- (g) बादरायण के ब्रसू में कोई भी वेदान्त के सभी सम्प्रदायों के बीज पा सकता है। सभी आचार्यों ने अपना यह प्रथम कर्तव्य समझा कि इसके सूत्रों पर भाष्य करके अपने मतों की पुष्टि की जाय। व्याख्याकार यह समझने का प्रयास भी नहीं करते हैं कि सूत्रों का वास्तविक अर्थ क्या है, वे तो किसी भी तरह अपना दृष्टिकोण सिद्ध करना चाहते हैं। Whi, S. Ghate, The Vedanta, p. 47.
- (h) समालोचक घाटे ने शाभा प्रभृति वेदान्तसूत्र के सभी भाष्यों को सूत्रकार के सिद्धान्त से भिन्न बतलाते हुए कहा है- Perhaps the system in the mind of the Sutrakara was different the five we are considering, The Vedanta, p. 51.
- (i) ब्रसू के भाष्यकार भास्कर, निम्बार्क एवं वल्लभ मूलतः रामानुज से भिन्न दृष्टि नहीं रखते। ये सभी आचार्य अद्वैत एवं द्वैत मान्यताओं के मध्य वर्ग का अन्वेषण करके समन्वय स्थापित करना चाहते हैं। आत्यन्तिक रूप में उनकी आस्था अद्वयोन्मुखी ही है। चतुर्वेदी, कृष्णकान्त, द्वैत वेदान्त का तात्त्विक अनुशीलन, प्राक्कथन.

बौद्ध दर्शन-सम्प्रदायों के प्रति वेदान्तिक दृष्टि को तीन प्रधान वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- अद्वैत, द्वैत और तटस्थ। ब्रह्मसूत्रकार तटस्थ दृष्टि से बौद्ध अवधारणाओं का युक्तिपूर्वक खण्डन करते हैं। यहाँ इनका लक्ष्य बौद्ध मत की असङ्गतियों, अप्रामाणिकताओं और अव्यावहारिकताओं को बताना है। गौडपाद, सद्भाव और सामञ्जस्य की दृष्टि से बौद्ध दर्शन की परीक्षा करते हैं। इसलिए वे विरोध वाले नहीं अपितु सामञ्जस्य वाले बिन्दुओं को ही उठाते हैं। आचार्य शङ्कर के तीक्ष्ण और चातुर्यपूर्ण तर्क, बौद्ध दर्शन के प्रति उस दृष्टि को उजागर करते हैं जो परिवर्तित होकर अप्रत्यक्षरूप से उन्हीं के विरोध का माध्यम बन जाती है। रामानुज ने बौद्ध-विरोध की ओट में शङ्कर पर ही निशाना साधा है और इस क्रम में गौडपाद और शङ्कर की लीक से हटकर उन्होंने शून्यवाद को अधिक महत्त्व दिया है। यह भी एक प्रकार से शङ्कर के विरोध का तरीका है क्योंकि शङ्कर ने शून्यवाद को खण्डन के योग्य भी नहीं माना था।

आचार्य गौडपाद, अजातवाद की व्यापक क्रोड में अन्य सभी मतों को समंजस के साथ समाहित करना चाहते हैं। इसलिए वे किसी द्वैतवादी सम्प्रदाय का खण्डन नहीं करते अपितु अद्वैत की ओर अग्रसर चिन्तन में उसका समाहार करना चाहते हैं। इसीलिए उनका बौद्ध-विरोध अन्य वेदान्ताचार्यों की अपेक्षा भिन्न स्वरूप का है। उन्होंने श्रुति प्रमाण को मानते हुए भी स्वतन्त्र तर्क का प्रयोग किया है जिसे उनकी ऐतिहासिक उपलब्धि माना जा सकता है। वे बौद्धाचार्यों के अनुभव का लाभ उठाने में भी सजग दिखाई देते हैं और अप्रत्यक्षरूप से बौद्ध शब्दावली, दृष्टान्त और तर्क का आश्रय लेते हैं। जबकि उससे भिन्न तत्त्वमीमांसा को प्रस्तुत करना उनका प्रत्यक्षरूप से प्रधान प्रयोजन था। चित्त की अवस्थाओं का विश्लेषण उनके लिए साध्य न होकर साधन अथवा दृष्टान्त था जिसके माध्यम से वे यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि ब्रह्म इन सबसे परे है।^१

बौद्ध पक्ष को युक्तिपूर्वक प्रस्तुत करने और युक्तिपूर्वक ही उसका खण्डन करने में आचार्य शङ्कर ने जिस शैली को अपनाया है उसमें स्पष्टता, गंभीरता

१. (a) अजातवाद और विज्ञानवाद में साम्य के लिए माण्डूका ४/४५, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५७, ६२; समन्वय के लिए ४/६२, ६३, ७२, ७३; तथा जिन कारिकाओं की द्विपक्षीय व्याख्या की जा सकती है उनके लिए ४/२२, ७४, ८४ कारिकाएँ द्रष्टव्य।

(b) गौडपाद और शङ्कर की शैली पर क्रमशः विज्ञानवाद और शून्यवाद का प्रभाव है- ऐसा शर्मा का निष्कर्ष है। बाबूलाल, शून्यवाद एवं विज्ञानवाद से प्रभावित अद्वैतवाद, (शोध लेख), परामर्श, सितम्बर-नवम्बर २००२.

व विविधता है। उनके विवरण में बौद्ध अवधारणाओं को भले ही भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया हो और खण्डन में ऐसी युक्तियाँ दी गई हों जो उनके मत के भी विरुद्ध हो जाती हों तथापि उनके इस प्रासङ्गिक भाष्य का समस्त संरचनात्मक स्वरूप और उसकी शैली, ऐसा आभास देती है कि वे बौद्ध दर्शन के पक्ष को न्यायोचित रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। विज्ञानवाद के सिद्धान्त को जिस स्पष्टता, सरलता और रोचकता से संक्षेप में आचार्य ने प्रस्तुत किया है, वैसा प्रतिपादन बौद्ध ग्रन्थों में भी नहीं मिलता। रामानुज की बौद्ध-विरोध की शैली वैसे तो आचार्य शङ्कर जैसा ही प्रयोजन (असङ्गतियाँ प्रदर्शित करना) मानकर अग्रसर होती है, किन्तु कुछ सन्दर्भ ऐसा सोचने के लिए विवश करते हैं कि उनका विरोध, बौद्ध दर्शन की अपेक्षा शङ्कर से अधिक है। रामानुज ने ऐसा प्रयत्न भी प्रदर्शित किया है जिससे बौद्ध सम्प्रदायों की तत्त्वमीमांसा के आन्तरिक मतभेद को भी तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया जा सके। जगत् के प्रसङ्ग में कार्यकारण की समस्या को उठाकर उन्होंने विषय को विस्तार देने का प्रयत्न किया है। असंस्कृत धर्म और शून्य के लिए अपने भाष्य में **तुच्छ** शब्द का प्रयोग करना रामानुज की शैली की विशेषता है।^१ यह शब्द **ब्रसू** और **शाभा** में नहीं मिलता। शङ्कर, बौद्धों के प्रति तिरस्कार का भाव उसे **सर्ववैनाशिक** कहकर प्रकट करते हैं। जबकि रामानुज ने इस भाव की अभिव्यक्ति का माध्यम **तुच्छ** शब्द को बनाया है। शेष वेदान्ताचार्य शैली के विषय में कोई नया प्रयोग करते हुए नहीं दिखाई देते। अपितु उनमें क्रमशः विस्तार और गांभीर्य भी क्षीण होता दिखाई देता है।

रामानुज की यह नीति है कि वह अपने प्रतिपक्षी से प्रत्यक्षरूप से व्यवहार के स्तर पर विवाद करते हैं अथवा व्यवहार में उसके दर्शन की असङ्गतियों (जगत् का कारण, मोक्ष, कार्यकारणभाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, प्रत्यभिज्ञान आदि) को

१. (a) ...तस्माद् वैदिके दुरस्तिरस्कर्तव्यो न स्वप्नेऽप्यादर्तव्यः। २/२/३२.

रामानुज के तुच्छ शब्द से तिरस्कार के तात्पर्य को ग्रहण करते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रस्तुत सूत्र में हरिप्रसाद ने स्पष्ट रूप से तिरस्कार के अर्थ को बताया है। वेदान्तसूत्रवैदिकवृत्ति, पृ. ४६२.

(b) (i) आप्टे की **संस्कृत हिन्दी शब्दकोष** में तुच्छ शब्द के ये अर्थ दिए गए हैं- खाली, शून्य, असार, मन्द, अल्प, क्षुद्र, नगण्य, परिव्यक्त, सम्परिव्यक्त, नीच, कमीना, नगण्य, तिरस्करणीय, निकम्मा, गरीब, दीन, दुःखी, तुष, भूसी.

(ii) आप्टे की **संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष** में तुच्छ शब्द के ये अर्थ दिए गए हैं-
(b) Empty, Void, Vain, light, small, little trifling, Abandoned, deserted, low mean, inalignificant, contemptible, worthless, poor, miserable, wretched.

उद्धाटित करते हैं। तथापि उनका प्रत्यक्ष लक्ष्य- परमार्थिक दृष्टि से स्थिर तत्त्व की (कारणरूप में) सिद्धि करना अथवा विशिष्टाद्वैतवाद का ही प्रतिपादन करना है।

रामानुज ने श्रीभाष्य में बौद्ध दर्शन में अविद्या का स्वरूप बताने अथवा क्षणभङ्गवाद की चर्चा करने के प्रसंग में जो शुक्तिका व रजत का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है, वह शङ्कर दर्शन का है।

प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोध वाले सूत्र में रामानुज ने यद्यपि बौद्ध पक्ष से दीपक के दृष्टान्त को प्रस्तुत किया है किन्तु भिन्न अर्थ में। बौद्ध दर्शन में यह दृष्टान्त मोक्ष के प्रसङ्ग में दिया जाता है जबकि रामानुज ने इसे क्षणभङ्गवाद में कार्यकारणभाव की असङ्गति को बताने के उद्देश्य से प्रयुक्त किया है।

नाभाव उपलब्धे: (२/२/२७) सूत्र में रामानुज सर्वास्तिवाद को विज्ञानवाद का पूर्वपक्ष बनाकर वैसे ही प्रस्तुत करते हैं जैसा कि शङ्कर ने किया था जबकि शङ्कर हो या रामानुज दोनों वस्तुतः सिद्धान्तरूप में बाह्यार्थ (प्रमेय) की सत्ता को वास्तविक नहीं मानते हैं।

जहाँ तक तर्क की बात है तो जिस प्रकार शङ्कर के द्वारा विज्ञानवाद के विरुद्ध दिए गए तर्क स्वयं शङ्कर के भी विरुद्ध जाते हैं यही स्थिति रामानुज की भी है।

समुदाय, जगत्, अज्ञान, मोक्ष अथवा कार्यकारणभाव इन चार बिन्दुओं पर शङ्कर व बौद्ध एक पक्ष हैं।

रामानुज ने यद्यपि शङ्कर को (कई प्रसङ्गों में) बौद्ध की कोटि (प्रच्छन्न बौद्ध) में डाल दिया है तथापि सम्प्रदायद्वय में एक सूक्ष्म अन्तर भी है- बौद्ध व रामानुज का विवाद 'तत्त्व के अस्तित्व' को लेकर है जबकि शङ्कर व रामानुज में मतभेद 'तत्त्व के स्वरूप' को लेकर है।

शून्यवाद का खण्डन करते हुए रामानुज ने सूत्र २/२/३१ में अधिष्ठान की समस्या को उठाया है और यहाँ शङ्कर पृष्ठभूमि में है।

शङ्कर जगत् को व्यावहारिक सत्य मानकर मिथ्या कह देते हैं और जगत् का कारण ब्रह्म/ईश्वर को बताने से बच जाते हैं। रामानुज के मतानुसार जगत् की उत्पत्ति के प्रति गंभीर होकर कार्यकारणवाद को स्वीकार करना पड़ेगा। कार्यकारणवाद का यह सिद्धान्त क्षणभङ्गवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद व शङ्कर किसी में नहीं है। अतः कार्यकारणवाद की दृष्टि से सभी चारों सम्प्रदाय एक समान खण्डनीय हैं अथवा शङ्कर प्रच्छन्न बौद्ध हैं।

रामानुज ने प्रत्यक्षरूप से जगत् की कारणता को ध्यान में रखकर बौद्ध दर्शन के ३/४ पूर्वपक्ष बताए हैं। इन पूर्वपक्षों के अनेक आयाम हैं- जगत् की सत्ता, जगत् का स्वरूप, जगत् का कारण व कार्यकारणवाद। तथापि रामानुज का प्रधान बल जगत् के कारण का विश्लेषण करते हुए बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों को पूर्वपक्ष के रूप में रखना अथवा उनका परिचय देना है।

रामानुज द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष की यह विशेषता है कि इसमें यद्यपि ब्रह्म के शब्दों को बौद्ध दर्शन का खण्डन करने के लिए आधार बनाया गया है तथापि इसमें शाङ्कर दर्शन के साथ ही स्वयं का सिद्धान्तपक्ष भी समाविष्ट है। रामानुज के सिद्धान्त पक्ष की झलक **प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्याननिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात्** सूत्र में द्रष्टव्य है।

जगत् की सत्ता के प्रति रामानुज की आस्था को बौद्धों के इस विचार से ठेस लगती है जब बौद्ध जगत् को समुदायरूप में मानने के बाद भी उस समुदाय का कारण अविद्या अथवा अज्ञान को बता देते हैं। क्योंकि रामानुज की आस्था यह कदापि स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं है कि यह व्यवस्थित भूत-भौतिक जगत् अज्ञान से उपजा है। यहीं शङ्कर की माया के प्रति विरोध का भाव भी छिपा है। शङ्कर व बौद्ध दोनों अज्ञान से जगत् की उत्पत्ति बतलाते हैं। शङ्कर को प्रच्छन्नबौद्ध कहकर रामानुज ने वस्तुतः इसी खीझ को प्रकट किया है। दूसरे शब्दों में, प्रच्छन्न बौद्ध के आरोप की गुत्थी की एक चाभी उक्त साम्य अथवा आरोप में है।

श्रीभाष्य के २२वें सूत्र में बौद्ध पूर्वपक्ष का गलत प्रस्तुतीकरण (असत् से सत् की उत्पत्ति) विचारणीय है।

रामानुज के अनुसार सत् वह है जिसकी प्रतीति होती है, जो स्थिर/नित्य है और जो कारण रूप में भी सत् है। कारण रूप में (एक) सत् होते हुए भी कार्य रूप में उसकी परिणति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, सविशेष कारण का अवस्थान्तर भेद (कार्य) संभव है और इससे सत् कारण के स्वरूप में कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

शङ्कर कहते हैं- जिसकी प्रतीति होती है वह मिथ्या है तथा सत् को सविशेष कारण मानना/ अवस्थान्तर भेद संभव नहीं है।

बौद्ध प्रतीति को सत् का लक्षण मानते हैं किन्तु इस प्रतीति को क्षणिक कहकर रामानुज के मतानुसार असत् बना देते हैं।

बौद्ध दर्शन भी अन्य वैदिक दर्शनों की भाँति निर्वाण को जीवन का परम प्रयोजन मानता है और इसी लक्ष्य से उसके सभी सम्प्रदाय तत्त्व और प्रमाण की व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं तथापि शङ्कर, रामानुज आदि किसी ने भी इस पक्ष पर विशेष बल नहीं दिया है। रामानुज ने मात्र इतना कहा है कि क्षणभङ्गवाद को मानने से निर्वाण संभव नहीं है किन्तु बौद्ध दर्शन में निर्वाण का जो स्वरूप है उसकी यहाँ उपेक्षा ही की गई प्रतीत होती है।

सम्प्रति, वेदान्ताचार्यों की बौद्ध आलोचना का फलितार्थ द्रष्टव्य है। ब्रसू का निष्कर्ष है कि बौद्ध दर्शन प्रमाणों से सर्वथा असिद्ध है। जबकि माण्डूका में इसे तत्त्व और साधना के सोपान विशेष पर ध्यान के रूप में स्थान दिया गया है। शारीरकभाष्य में इसे सिकताकूप, सर्ववैनाशिक, असंगत और अव्यावहारिक बताते हुए अनादर, उपेक्षा और तिरस्कार के योग्य माना है। श्रीभाष्य के अनुसार सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद असङ्गत दर्शन हैं और शून्यवाद में यद्यपि बौद्ध तत्त्वमीमांसा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची है तथापि पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में वह अनुपपन्न है। पूर्णप्रज्ञभाष्य भी इसकी प्रमाणविरोधिता तथा अनुभवविरोधिता से सहमति व्यक्त करता है जबकि वेदान्तपारिजातसौरभ और अणुभाष्य क्रमशः इसे असहमति-योग्य और उपेक्षणीय मानते हैं।

९. आधुनिक चिन्तन में वेदान्त और बौद्ध दर्शन

भारतीय दर्शन के इतिहास और तुलनात्मक अध्ययन में रुचि रखने वाले लेखकों में वेदान्त और बौद्ध अत्यन्त लोकप्रिय विषय रहे हैं। इस चिन्तन और अनुसन्धान के मुख्य आयाम दोनों के अद्वैतवाद की तुलना, तत्त्वमीमांसा और अवधारणाओं की तुलना, परस्पर प्रभाव, सम्बन्ध, योगदान और भारतीय दर्शन के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास में इनकी भूमिका आदि रहे हैं। इन्हीं आयामों में चाहे अनचाहे बुद्ध भी विवाद का एक विषय बन गए हैं। बुद्ध और उप के सम्बन्ध पर आधुनिक विद्वानों के पक्ष को भी पूर्व पृष्ठों में प्रस्तुत किया जा चुका है। इसलिए अन्य पक्षों पर यहाँ विचार आवश्यक है।

(अ) साम्य- वैषम्य

वेदान्त एवं बौद्ध विचारधारा में धर्म व दर्शन का पक्ष समानरूप से विद्यमान है। तथापि वेदान्त का विकास जहाँ दर्शन से धर्म की ओर हुआ वहीं समानान्तर विकसित बौद्ध विचारधारा की धार्मिक पृष्ठभूमि ने दर्शन को जन्म दिया। यद्यपि कालान्तर में ये दोनों विचारधाराएँ अपने-अपने अतीत के स्वरूप से च्युत हो गईं। वेदान्त, जिसका विकास दर्शन से धर्म की ओर हुआ था, उसने वर्तमानकाल में धर्म के बढ़ते प्रभाव से अपने विशुद्ध दार्शनिक स्वरूप को खो दिया और बौद्ध विचारधारा, जिसके मूल में बुद्ध की धार्मिक देशना विद्यमान थी, बढ़ते कालक्रम के साथ दर्शन के स्वरूप में सशक्त हो गई। वर्तमानकाल में जो धार्मिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक समस्याएँ विद्यमान हैं उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि ये दोनों विचारधाराएँ अपने-अपने मूल स्वरूप में ही रहतीं तो देश के स्तर पर ही नहीं, विश्व के स्तर पर मानव-समाज के लिए कल्याणकारी हो सकती थीं।

वेदान्त और बौद्ध दार्शनिक चिन्तन में आधुनिक विद्वानों ने साम्य और वैषम्य दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला है। इनके परस्पर सम्बन्ध की नींव का इतिहास इनके शास्त्रों के सन्दर्भ से भी अधिक प्राचीन है। मुसलगाँवकर, कुमारिल भट्ट और बौद्धों के बीच शास्त्रार्थ की बात मानते हैं। ब्रह्म और उसके भाष्य आदि दोनों में संवाद के प्रमाण हैं ही और शान्तरक्षित विरचित तत्त्वसंग्रह जैसे ग्रन्थों में वेदान्त का पर्याप्त उल्लेख है। फिर भी दोनों विचारधाराओं में आचार्यों में साक्षात् शास्त्रार्थ के विषय में आधुनिक चिन्तकों में मतभेद है।^१

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर वेदान्त और बौद्ध विचारधाराओं में साम्य के पक्ष में ही अधिक विचार मिलते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि वैषम्य के बिन्दु दुर्बल अथवा शिथिल हैं, प्रारम्भिक बिन्दु श्रुति, तर्क, कर्मकाण्ड इत्यादि से लेकर क्षणभङ्गवाद, आत्मवाद, अनात्मवाद जैसे गंभीर दार्शनिक चिन्तन-बिन्दुओं पर जो वैषम्य दिखाई देता है वह गंभीर और प्रभावकारी है तथा जिनके

- काशी के आधुनिक विद्वानों से वार्तालाप में कुछ इस प्रकार के मत सामने आए- अभिमन्यु सिंह और रमेश कुमार द्विवेदी मानते हैं कि शास्त्रार्थ नहीं हुआ है जबकि मुरलीधर पाण्डेय कुमारिल भट्ट और बौद्धों के बीच शास्त्रार्थ की ऐतिहासिकता का उल्लेख करते हैं। रामशंकर त्रिपाठी, शास्त्रार्थ का न होना उचित मानते हुए इसके दो कारण बताते हैं- एक, वाचस्पति मिश्र द्वारा भामती लिखे जाने के बाद शङ्कर का दर्शन उत्तर भारत में अपरिचित था और दूसरे, ग्यारहवीं-बाहरवीं शती में मुसलमानों के आक्रमण से बौद्ध धर्म स्वयं ही नष्ट हो गया।

कारण इन विचारधाराओं में साम्य का आधिक्य तो हो सकता है किन्तु वे कभी एक नहीं हो सकते।

प्रश्नावली के माध्यम से काशीस्थ विद्वानों से इस बिन्दु पर वार्तालाप किया गया। अभिमन्यु सिंह मानते हैं कि दोनों दर्शनों में वैषम्य की प्रधानता है। अद्वैत वेदान्त सत्तामूलक है और बौद्ध दर्शन में ज्ञानमीमांसा की प्रधानता है। इसी प्रकार आत्मवाद और अनात्मवाद, सच्चिदानन्द और शून्य, शुद्ध ज्ञानात्मक चेतना और सक्रिय इच्छात्मक चेतना इत्यादि बिन्दु, वैषम्य को मुख्यरूप से प्रकट करते हैं। **मुरलीधर पाण्डेय**, इसके विपरीत, साम्य पर अधिक बल देते हैं। उनकी दृष्टि में शून्य और ब्रह्म में नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। ब्रह्म के अनिर्वर्चाय, अद्वैत, निर्विकल्प आदि सभी विशेषण शून्य में आते हैं। **सुधांशु शेखर शास्त्री** दोनों में वैषम्य का प्रधान कारण क्षणभङ्गवाद और नित्यतावाद मानते हैं। **रामशंकर त्रिपाठी** का अनुभव है कि शून्यवाद की अपेक्षा विज्ञानवाद, ब्रह्मवाद के अधिक निकट है। किन्तु दोनों विचारधाराओं की भिन्नता स्थायी है क्योंकि दोनों एक मूल से पैदा नहीं हुए हैं। **रघुनाथ गिरि** का मत है कि शङ्कर ने नागार्जुन की तार्किक शैली से प्रभाव ग्रहण किया है और इसका प्रमाण है- जगत् की अवधारणा। कर्मकद, पुनर्जन्म और पुरुषार्थ जैसे नैतिकता के पक्षों पर भी इनमें समानता है। किन्तु तत्त्वमीमांसा और शास्त्रप्रमाण जैसे पक्षों पर तीव्र मतभेद है। **आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती** मानते हैं कि जगत् की दुःखरूपता के विषय में ये दोनों

१. (a) अद्वैतवादी हिन्दू विचारधारा और बौद्ध मत में जितनी सङ्गति और निकटता है वैसी अन्य किसी दो मत में नहीं है। ये मत मनुष्य के आदर्श, देवताओं से ऊपर परमभक्ति में विश्वास और उसकी पूर्णता पर समान मत रखते हैं, सृष्टि के प्रादुर्भाव, निर्वाण, मनुष्य की मनोवैज्ञानिक शक्ति आदि के प्रति भी एकमत हैं। बौद्ध मत भी वस्तुतः एक ज्ञानमार्ग ही है अर्थात् लौकिक उच्च ज्ञान के बाद चित्त आत्मा की सर्वोच्च सत्ता और शक्ति का यह अनुसन्धान करता है और अद्वैतवादी हिन्दू विचारधारा भी लगभग इसी दिशा में अग्रसर होती है।

जहाँ तक बौद्ध और हिन्दू मत में साम्य-वैषम्य का प्रश्न है, हिन्दू विचारधारा से बौद्ध मत का उतना तीव्र मतभेद नहीं है जितना स्वयं हिन्दू विचारधाराओं में परस्पर है।

Sempa Dorze, *Buddhism and Hinduism*, p. 34-64.

(b) आत्मा और विज्ञान, ये दो शब्द अथवा अवधारणाएँ भारतीय चिन्तन की लम्बी परम्परा का प्रतिनिधित्व तो करते ही हैं तथा साथ ही बौद्ध और वेदान्त की तत्त्वमीमांसा के भेद का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। Conio, Caterina, *The Philosophy of Mandukya-karika*, p. 81.

विचारधाराएँ एकमत हैं। किन्तु श्रुति और बुद्ध-वचन सर्वक्षणिक, शून्यवाद, स्वलक्षण और आत्मा की नित्यता, एकरसता व अविनश्वरता तथा ज्ञान की महत्ता पर इनके विचार भिन्न-भिन्न हैं।

(आ) सम्बन्ध, प्रभाव एवं योगदान

इसे एक ऐतिहासिक सत्य ही माना जाना चाहिए कि वेदान्त (ब्रह्म) के पूर्व बौद्ध विचारधारा का अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में प्रवेश हो चुका था। यह विचारधारा अन्य देशों के जीवन, चिन्तन और व्यवहार पर अपना प्रभाव स्थापित कर चुकी थी। इस वैशिष्ट्य का कारण बौद्ध विचारधारा की विश्वजनीन दृष्टि, जाति, लिङ्ग, अवस्था आदि सीमाओं से मुक्त होकर, बहुजन-हिताय-बहुजन-सुखाय जैसे लक्ष्य और मानदण्ड तथा ईश्वर-ग्रन्थ, साधना-पद्धति आदि के प्रति दुराग्रहों से मुक्ति के भाव जैसे कारण थे।^१ इसके विपरीत वैदिक विचारधारा और धर्म औदार्य के समस्त तत्त्वों को समेटे हुए भी श्रुति की मर्यादा में बंधा हुआ था।^२

१. (a) भारत प्रारम्भ से ही धर्मप्रधान देश रहा है। यहाँ वैदिक, जैन और बौद्ध धर्मों की त्रिवेणी ने संस्कृति को नए आयाम दिए, सांस्कृतिक परम्पराओं के नए समीकरण स्थापित किए और इतिहास ने अनेक करवटें बदलते हुए संस्कृतियों को परखा। बौद्ध धर्म ऐसी ही संस्कृतियों में अन्यतम है, जो बिहार व उसके समीपवर्ती प्रदेश में पनपी व पल्लवित हुई, आदान-प्रदान के अनेक अध्यायों को पार करते हुए उसने सारे जन-जीवन को अनूठे ढंग से प्रभावित किया और एक दीपस्तम्भ बनकर संसार के प्रत्येक कोने में अपने अन्तर्ज्ञान से प्रकाशित किया। जैन, भागवन्द, भारतरत्न डॉ. अम्बेडकर और बौद्ध धर्म, षष्ठ परिवर्त।

(b) बौद्ध धर्म का मानववादी दृष्टिकोण बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय है, दुखों के निराकरण हेतु सप्रयत्न है, महाकारुणिक सक्रियता है, जातिवाद बन्धन से मुक्त समानता का संदेश है। वृषलसुत्त, सुत्तनिपात; दीघनिकाय, अंगससुत्त।

(c) (i) जाति कर्मणा है, जन्मना नहीं। अस्सलायणसुत्त, मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय, अंगससुत्त।

(ii) मनुष्य मात्र समान है और एक ही मनुष्य जाति के सदस्य हैं। दिव्यावदान, ३२३।

२. (a) जीवन के नाम पर वैदिक धर्म में जो उदारता थी जैसे- मांसभक्षण, मदिरापान आदि, इन सभी तत्त्वों का बौद्ध धर्म में निषेध था, भारतीय सन्दर्भ में। किन्तु जब बौद्ध धर्म भारत से बाहर गया तो उदारता के उक्त पक्ष को उसने सहज ही स्वीकार कर लिया और विश्व-धर्म के रूप में लोक प्रसिद्ध हो गया।

(b) सनातन या वैदिक धर्म की उदारता, श्रुति की सीमा में बंधी थी अतः इसने जातिवाद को बढ़ावा दिया। जबकि बुद्ध अथवा बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने विश्व स्तर पर 'सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय' का मूलमंत्र दिया था।

अफगानिस्तान में बुद्ध मूर्तियों और चित्रों के निर्माण के लिए बौद्ध महायान के बोधिसत्त्वों की अवधारणा को आधार माना जाता है।^१ विवेकानन्द ने इस धर्म की एक अनूठी विशेषता को उजागर करते हुए कहा है कि- संसार के सामने प्रचारक धर्म के रूप में सर्वप्रथम बौद्ध धर्म ही आया और उस युग की सारी सभ्य जातियों में उसका प्रचार किया गया, पर उस धर्म के नाम पर कहीं एक बूंद भी रक्त नहीं गिराया गया।^२ वेदान्त और बौद्ध के परस्पर सामंजस्य और समन्वय के सन्दर्भ में विवेकानन्द की ये टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं- बुद्ध एक महान् वेदान्ती थे... और शङ्कराचार्य को भी कोई प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं। बुद्ध ने विश्लेषण किया था... शङ्कराचार्य ने उन सबका संश्लेषण किया है।^३ वेदान्त दर्शन, बौद्ध दर्शन अन्य सभी भारतीय मतों का आधार है; किन्तु हम जिसे आधुनिक पण्डितों का अद्वैत दर्शन कहते हैं, उसमें बौद्धों के अनेक सिद्धान्त मिले हुए हैं। अवश्य ही हिन्दू अर्थात् सनातनी हिन्दू इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि उनके विचार में बौद्ध नास्तिक हैं परन्तु वेदान्त दर्शन को जान-बूझकर ऐसा व्यापक रूप देने की चेष्टा की गई है कि उसमें नास्तिकों के लिए भी स्थान रहे। वेदान्त का बौद्ध मत से कोई झगड़ा नहीं है। वेदान्त का उद्देश्य ही है, सभी का समन्वय करना।^४

साम्य और वैषम्य की भाँति प्रभाव और योगदान के बिन्दु भी आधुनिक विद्वानों को एकमत नहीं होने देते। बौद्ध विद्वान् जहाँ वेदान्त पर बौद्ध प्रभाव के उदाहरण और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, वहीं वेदान्त के आचार्य इन प्रभावों को स्पष्टरूप से स्वीकार करने में संकोचशील दिखाई देते हैं और प्रभाव के इतिहास को उप और बुद्ध तक ले जाते हैं। बौद्ध प्रभाव की दृष्टि से सर्वाधिक चर्चित आचार्य गौडपाद और शङ्कर हैं। किन्तु यहाँ यह कथन अनुचित नहीं माना जाएगा कि इन एकाङ्गी प्रयत्नों के फलस्वरूप ऐतिहासिक और तत्त्वमीमांसीय सत्य ओझल होता दिखाई देता है।

१. ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय बोधिसत्त्वों के आधार पर ही अफगानिस्तान में बोधिसत्त्वों की मूर्तियों एवं चित्रों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। राय, जीवन, प्राचीन अफगानिस्तान में बोधिसत्त्व, प्राक्कथन.

२. (a) भगवान् बुद्ध तथा उनका सन्देश, पृ. २३.

(b) बौद्ध धर्म संसार का सबसे पहला मिशनरी (प्रचारक) धर्म है, पर बुद्ध की शिक्षाओं में से एक यह भी था कि किसी धर्म को विरोधी न बनाया जाए। धर्म एक दूसरे से युद्ध करके अपनी शक्ति क्षीण करते हैं (१०/२९३)। वही, पृ. १५.

३. विवेकानन्द, वही, पृ. ३.

४. वही, पृ. १४.

रामशङ्कर त्रिपाठी का मत है कि बौद्ध तत्त्वचिन्तन की पराकाष्ठा शून्यवाद और विज्ञानवाद में है और इनका खण्डन करके ही शङ्कर जैसे आचार्य ने प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी भाव का समर्थन करते हुए **रमेश कुमार द्विवेदी** मानते हैं कि बौद्ध दर्शन के सशक्त पक्ष का खण्डन करके ही वेदान्त दर्शन प्रसिद्ध हुआ। **गोविन्द चन्द्र पाण्डेय**^१ मानते हैं कि गौडपाद महायान से परिचित थे। किन्तु महायान का यह प्रभाव गौडपाद के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से शङ्कर पर आया। वेदान्तविद् **सुधांशु शेखर शास्त्री** वेदान्त के विकास में बौद्ध आचार्यों के योगदान को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि वेदान्ताचार्यों ने बौद्ध दर्शन को पूर्वपक्ष के रूप में स्थान और महत्त्व दिया। यही स्थिति बौद्धों के महत्त्व और प्रभाव को सूचित करती है।

प्रच्छन्न बौद्ध के विवाद पर टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं। **मुरलीधर पाण्डेय**, इसे भारतीय दर्शन की आदान-प्रदान की स्वस्थ परम्परा का प्रमाण मानते हैं। जबकि **सुधांशु शेखर शास्त्री** मानते हैं कि यह आरोप अविवेकजन्य है और रामानुज ने इसे दोषारोपण की भावना से नहीं कहा अपितु वेदान्त के अधिकारी शङ्कर को सजग करने के लिए कहा। शास्त्री का यह उत्तर इसलिए सुसंगत प्रतीत नहीं होता कि रामानुज, शङ्कर के अवसान के (३०० वर्ष) बाद आविर्भूत हुए थे। इसलिए पूर्ववर्ती आचार्य को तब सजग करना जब वे अपना कृतित्व संपन्न कर विदा हो चुके थे, असंभव और विचित्र लगता है। इसके अतिरिक्त रामानुज, शङ्कर के विरोधी के रूप में जाने जाते हैं और एक विरोधी का दूसरे विरोधी को सजग करना विचित्र-सा लगता है। शास्त्री से भिन्न **आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती** की टिप्पणी है कि रामानुज ने यह आरोप अपनी उपासना को बचाने के लिए किया था, क्योंकि रामानुज साकारवादी थे और शङ्कर निराकारवादी। **रामशङ्कर त्रिपाठी**, इस आरोप को बौद्ध पक्ष से आने के योग्य मानते हैं तथा बौद्ध विद्वान्, वेदान्त के ग्रन्थों की अनुपलब्धता के कारण ऐसी टिप्पणी का अवसर न पा सके, ऐसा स्पष्टीकरण देते हैं। इनके मत में दोनों दर्शनों का तुलनात्मक स्वरूप अत्यन्त क्लिष्ट है। इसलिए आज भी विद्वानों में इसके बारे में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। **रघुनाथ गिरि** और **रमेश कुमार द्विवेदी** आरोप का आधार तो 'शून्यवाद' को मानते हैं किन्तु इसके कारण भिन्न-भिन्न बताते हैं। प्रथम की दृष्टि में वेदान्त और बौद्ध का सम्बन्ध अति प्राचीन, सुदूरगामी, विवादास्पद, रहस्यमय और बहुआयामी है। आचार्य शङ्कर का ही उदाहरण देखा जा सकता है। एक ओर शङ्कर पर बौद्ध प्रभाव माना जाता

१. सारनाथ में आयोजित संगोष्ठी, अप्रैल २००२, विषय : बौद्ध दर्शन और शङ्कर.

है तो दूसरी ओर उन्हें भारत से बौद्धमत के निष्कासन का श्रेय भी कुछ इतिहासकार देते हैं। किन्तु निष्कासन का तथ्य प्रमाणपुष्ट नहीं है। क्योंकि शङ्करोत्तर वेदान्त ग्रन्थों में भी बौद्ध पूरे गौरव के साथ चर्चित हैं तथा शङ्कर के बाद भी भारतीय बौद्ध आचार्यों ने ग्रन्थ-रचना की है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेदान्त और बौद्ध अथवा शङ्कर और बौद्ध मत के सम्बन्ध में उठे हुए अनेक विवाद भ्रान्ति पर आधारित हैं और इस भ्रान्ति के प्रसार में प्राचीन और अर्वाचीन वेदान्ताचार्यों के पूर्वाग्रहों का विशेष योगदान है। संभवतया उनके अवचेतन में कहीं यह अवधारणा रही हो कि इस भ्रान्ति में वेदान्त का हित है। किन्तु वे सत्य और ज्ञान तथा दार्शनिक स्वरूप और स्तर की, अनजाने में हानि ही करते हैं।

(इ) वेदान्त और शून्यवाद

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में कहा गया वेदान्त और बौद्ध की तुलना के अन्तर्गत शून्यवाद की चर्चा भी आधुनिक विद्वानों का प्रिय विषय रहा है। इस विचार के कई पक्ष हैं, जैसे वेदान्त पर शून्यवाद का प्रभाव, ब्रह्म और शून्यवाद, गौडपाद और शङ्कर की तत्त्वमीमांसा और शैली पर नागार्जुन का प्रभाव, शङ्कर के साहित्य में शून्यवाद का उल्लेख, सभी वेदान्ताचार्यों की दृष्टि में शून्य शब्द का अर्थ, शून्य से ब्रह्म और माया की तुलना इत्यादि। इन बिन्दुओं में से कुछ की चर्चा पहले की जा चुकी है। यहाँ प्रसङ्गानुसार आधुनिक विद्वानों के कुछ विचार उल्लेखनीय हैं। अभिमन्यु सिंह मानते हैं कि तत्त्वमीमांसा में भेद के बावजूद शाङ्कर वेदान्त एक तरह से महायान है। मुरलीधर पाण्डेय का विचार है कि ब्रह्म के जितने भी विशेषण हैं, वे शून्य में आ जाते हैं। रमेश कुमार द्विवेदी, शून्यवाद और ब्रह्मवाद में समानता के पक्षधर हैं तो रामशङ्कर त्रिपाठी का मत है- दोनों एक नहीं हैं। वे मानते हैं कि चन्द्रधर शर्मा तथा टी.आर.वी. मूर्ति जैसे विद्वानों का ज्ञान वैदिक संस्कारों से प्रभावित था इसलिए उन दोनों ने इन दोनों को एक मान लिया, किन्तु ऐसा नहीं है। जहाँ तक ब्रह्म और शून्यवाद का प्रश्न है, सुधांशु शेखर शास्त्री और आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती मानते हैं कि ब्रह्म में शून्यवाद का खण्डन है तथा इसके विपरीत रघुनाथ गिरि का मत है कि शून्यवाद का खण्डन नहीं है क्योंकि यदि खण्डन होता तो शङ्कर शून्यवाद की उपेक्षा नहीं करते। इस उपेक्षा के वे दो कारण बताते हैं- (i) शून्यवाद का सत् असत् रूप में कोई पूर्वपक्ष नहीं है जिसको रखकर उसका खण्डन किया जाए। (ii) शङ्कर ने नागार्जुन की तर्क-प्रणाली का अनुगमन किया था, अतः वह इस का खण्डन नहीं कर सकते

थे, बच कर, निकलना ही, उनके लिए **त्रेयस्कर** था। जबकि **आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती** इस उपेक्षा का कारण मानते हैं कि शून्यवाद सर्वप्रमाणसिद्ध लौकिक व्यवहार का निषेध करता है। नागार्जुन जिस संवृति सत्य को स्वीकार करते हैं, उसमें दोष यह है कि उनके मिथ्यावाद का वहाँ कोई अधिष्ठान नहीं है। **गोविन्द चन्द्र पाण्डेय**^१ के अध्ययन का निष्कर्ष भी यही है कि शङ्कर ने शून्यवाद का खण्डन नहीं किया। बल्कि वे इस प्रसङ्ग में जो कारण बताते हैं वे पूर्वोक्त से भिन्न हैं। इनके अनुसार शङ्कर को शून्यवाद का ज्ञान नहीं था तथा गौडपाद ने शून्यवाद और विशानवाद की सारी बातें स्वीकार कर ली थीं, इसलिए शङ्कर चुप थे।

उपर्युक्त टिप्पणियों की समीक्षा करने पर जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे कुछ भिन्न हैं। **ब्रसू** में बौद्धों के किसी वाद का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसलिए सभी मत अनुमान पर आधारित हैं। अनुमान के लिए सबल हेतु आवश्यक है। अवधारणा, पारिभाषिक शब्द, युक्ति आदि का कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिसे **ब्रसू** में शून्यवाद की उपस्थिति का हेतु माना जाए। वैष्णव भाष्यकारों में रामानुज का यहाँ स्मरण किया जा सकता है जिन्होंने (**श्रीभाष्य**, २/२/३०) सूत्र को शून्यवाद के प्रसङ्ग में घटित किया है। यहाँ पर भी उल्लेखनीय है कि परस्पर भिन्न मत रखने वाले सभी वेदान्ताचार्य शून्यवाद में शून्य शब्द के अभाव अर्थ पर एकमत हैं। संभवतया इसीलिए **गोविन्द चन्द्र पाण्डेय** शून्यवाद को मात्र अभाववाद मानते हैं^२ किन्तु इसे शून्य के वास्तविक अर्थ के साथ अन्याय ही कहा जाएगा। तथापि शून्य का अर्थ यदि अभाव मान लिया जाए तब भी शून्यवादी, भाववादी ही सिद्ध होता है क्योंकि बिना भाव के अभाव असंभव है। दूसरी ओर, यदि शून्यवादी ग्रन्थों में शून्य के स्वरूप पर दृष्टिपात किया जाय तो वहाँ उसे भाव-अभाव की कोटि से परे तथा दृष्टि और स्वभाव से निरपेक्ष बताया गया है। आचार्य शङ्कर के भाष्य में शून्यवाद का खण्डन है अथवा नहीं इस पर पहले विचार किया जा चुका है। फिर भी यहाँ इतना कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि एक ओर शङ्कर पर शून्यवाद का प्रभाव मानना तथा दूसरी ओर उसे तिरस्कार-योग्य कहना इन दोनों वचनों में सङ्गति नहीं दिखाई देती। रामानुज ने शङ्कर पर प्रच्छन्न बौद्ध का जो आरोप लगाया है उसका आधार भी शून्यवाद ही है। आचार्य शङ्कर के

१. सारनाथ में आयोजित संगोष्ठी, अप्रैल २००२, विषय : बौद्ध दर्शन और शङ्कर.

२. वही.

द्वारा बौद्ध दर्शन अथवा शून्यवाद की आलोचना को इसलिए भी अंतिम और पूर्ण नहीं माना जा सकता क्योंकि शङ्कर के बाद भी वेदान्ताचार्य बुद्ध और बौद्ध दर्शन का उल्लेख करते रहे हैं।^१

(ई) समन्वय

वेदान्त और बौद्ध दोनों ही विचारधाराएँ समन्वय की पक्षधर हैं। ब्रह्मसूत्रकार ने तत्त्व समन्वयात् (१/१/४) सूत्र के माध्यम से वेदान्त में समन्वय का विचार प्रारम्भ किया। प्राचीन आचार्यों में शङ्कर और रामानुज दोनों ही बौद्ध तत्त्वमीमांसा के प्रति समन्वय की प्रवृत्ति दिखाते हैं। किन्तु प्रथम एकतत्त्व के स्वरूप के विकास की दृष्टि अपनाता है तो दूसरा समन्वय के लिए तीसरे की आवश्यकता प्रतिपादित करता है। शर्मा^२ के अनुसार यहाँ समन्वय का तात्पर्य यह नहीं है कि उप-विरोधी दर्शनों का समन्वय किया जाए अपितु ब्रह्म-वाचक जितने भी तत्त्व (जीव, जगत्) हैं, उनके समन्वय से है। वस्तुतः सभी अद्वैतवादी भारतीय दर्शन किसी न किसी रूप में समन्वय की बात करते हैं। वेदान्त में आचार्य शङ्कर समन्वय के पक्ष को रखने में अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने शारीरकभाष्य में प्रधान विरोधी-सांख्य को व्यवहार के स्तर पर स्वीकार किया है। कर्मकाण्ड और उपासना-पद्धतियों को भी उन्होंने ब्रह्मवाद अथवा ब्रह्मानुभूति में किसी सोपान पर स्थान दिया है। सुधांशु शेखर शास्त्री के मत में बौद्ध दर्शन भी शङ्कर के लिए हेय कोटि का नहीं है। विपश्यना आदि के माध्यम से यह माना जा सकता है कि वह साधन-कोटि का है। रघुनाथ गिरि भी मानते हैं कि शङ्कर ने व्यावहारिक स्तर पर बौद्ध दर्शन को स्वीकार किया है। आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती का विचार है कि शङ्कर की दृष्टि में वैराग्य के लिए, क्षणिकवाद का विचार सहयोगी है। शङ्कर के समन्वयवाद में धर्म की दृष्टि प्रधान है अथवा दर्शन की? - इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य स्वरूपानन्द का कथन है कि षण्मत की स्थापना के फलस्वरूप ही वे जगद्गुरु कहलाए। यह उत्तर विचारणीय है। यदि शङ्कर धर्म की दृष्टि से सभी उपासना-पद्धतियों का भी समन्वय करने के इच्छुक थे तब परवर्ती रामानुज

१. शङ्कर के बाद के वेदान्त साहित्य से यह तथ्य तो स्पष्ट अभिव्यक्त होता है कि भले ही शङ्कर के बाद बौद्ध विचारधारा को एक मृत विषय कहा और चार प्रधान वेदान्ती आचार्य उसके बारे में कुछ भी कहें, उनके शिष्य और अनुयायी (भाष्य टीकाकार) गौतम बुद्ध के आर्य धर्म का उल्लेख करते हैं। Seimpa Dorze, *Buddhism and Hinduism*, p. 52.

2. B.N.K., *Lecturers Vedanta*, p. 22.

की उपासना पद्धति का भी समन्वय उनके वैदिक धर्म में होना स्वाभाविक है। किन्तु इस पक्ष पर आचार्य स्वरूपानन्द की टिप्पणी है कि रामानुज ने अपनी उपासना-पद्धति बचाने के लिए शङ्कर पर 'प्रच्छन्न बौद्ध' का आरोप लगाया। प्रस्तुत प्रसङ्ग में इस टिप्पणी को बहुत युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता क्योंकि तब इसका अर्थ यह होगा कि वैदिक विचारधारा की दो उपासना-पद्धतियों के विवाद में अनावश्यक रूप से बौद्ध पक्ष को लाया गया है। धर्म की दृष्टि से षण्मतस्थापनाचार्य होने के कारण शङ्कर को जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त होने का तथ्य, दर्शन में अद्वैत की प्रतिष्ठा के विरुद्ध जाता है। फिर भी आधुनिक विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि शङ्कर का पारमार्थिक चिन्तन और व्यावहारिक जीवन उनके व्यक्तित्व की दो भिन्न धाराएँ हैं।

१०. निष्कर्ष एवम् उपसंहार

प्रस्तुत शोध, वेदान्त के प्रमुख ग्रन्थों में उपलब्ध बौद्ध सन्दर्भों के अध्ययन, विश्लेषण और विवेचन पर केन्द्रित है। अतः इस अध्ययन के निष्कर्षों को इसी सीमित सन्दर्भ में देखा जाना चाहिये। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस शोध को वेदान्त-बौद्ध साहित्य में सन्दर्भ की दृष्टि से एकपक्षीय ही माना जाना चाहिए। सम्पूर्ण यथार्थ के लिए बौद्ध दार्शनिक साहित्य में वेदान्त के सन्दर्भों का अध्ययन भी आवश्यक है। अस्तु।

इस शोध के प्रधान एवं उल्लेखनीय निष्कर्ष बिन्दुशः इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं- (इनके क्रम में यह दृष्टि अपनाई गई है- वेदान्त और बौद्ध पर स्वतन्त्र व तुलनात्मक सामान्य निष्कर्ष, ब्रसू आदि पर ग्रन्थशः और फिर तुलनात्मक निष्कर्ष)।

(अ) वेदान्त - बौद्ध : सामान्य

१. वेदान्त, वैदिक चिन्तन का चरम है। प्रस्थानत्रय ग्रन्थ इसका आधार है और श्रुति सर्वोच्च प्रमाण। अद्वैत सम्प्रदाय और आचार्य शङ्कर के लेखन में इस चिन्तन की पूर्ण परिणति हुई है, ऐसा कुछ विचारक मानते हैं। पूर्वोत्तर मीमांसा सहित अद्वैतवादी और द्वैतवादी सम्प्रदाय इसके चिन्तन-उपवन को विविधता और क्रमिकता प्रदान करते हैं, तथापि इन सबकी सम्मिलित सुगन्धि ब्रह्मवाद है।

२. बुद्धदेशना की गंगोत्री से निःसृत बौद्ध धर्म-दर्शन की ज्ञान-गङ्गा अपने में विविध आन्तरिक सम्प्रदाय की धाराओं को समाहित किए हुए है। पूर्वाग्रहों, संकोचों आदि से विमुख तथा सत्तर्क की पवन से प्रेरित होकर यह भागीरथी, देश-

विदेश में अपने प्रभाव-रस का आस्वाद कराती रही है। इस वैविध्य का आधारभूत और समन्वित संदेश प्रज्ञा, शील और समाधि रहा है।

३. वेदान्त के वैविध्य से बौद्ध के वैविध्य की सङ्गति है, इसलिये दोनों का संवाद और परस्पर खण्डन भारतीय दर्शन के इतिहास में महत्वाधायी और बहुआयामी है।

४. बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों के प्रति वेदान्त के सभी आचार्यों का दृष्टिकोण एक जैसा नहीं है। कोई विज्ञानवाद को विशेष महत्त्व देता है तो कोई शून्यवाद को। किन्तु क्षणभङ्गवाद के प्रति सभी का विरोध एक समान है।

५. वेदान्त के समक्ष सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या और श्रुतिप्रमाण के साथ युक्तियों का प्रयोग करने की चुनौती बौद्ध जैसे तार्किकों ने प्रस्तुत की।

६. श्रुति को सर्वोच्च प्रमाण मानने वाले सभी वेदान्ताचार्य बुद्ध के प्रति समानरूप से विरोधभाव रखते हैं किन्तु यह विरोध कहीं तटस्थरूप में तो कहीं तिरस्कार रूप में प्रकट हुआ है। एकमात्र गौडपाद ही इसके अपवाद हैं जो सद्भाव का प्रदर्शन करते हैं। बुद्ध-विरोध में शङ्कर अग्रणी हैं।

७. वेदान्त ग्रन्थों के बौद्ध सन्दर्भ भारतीय दर्शन के इतिहास, स्वभाव, तत्त्वचिन्तन के विकास तथा साम्प्रदायिक साम्य-वैषम्य का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस सन्दर्भ के बिना भारतीय दर्शन की इन दो महनीय विचारधाराओं के यथार्थ और मर्म को समझना असम्भव है।

८. वेदान्त-ग्रन्थों के बौद्ध सन्दर्भ स्वयं वेदान्तियों के आन्तरिक मतभेदों को समझने में भी सहायता करते हैं। इन सन्दर्भों में वेदान्त के आचार्यों के आपसी मतभेद भी यथावसर उजागर हुए हैं।

९. वेदान्त के आचार्यों ने जहाँ एक ओर अपनी खण्डनात्मक युक्तियों में बौद्ध दर्शन की अवधारणाओं के साथ न्याय नहीं किया है तो वहीं दूसरी ओर स्वयं वेदान्त के परवर्ती आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों की अवधारणाओं की अपने अनुकूल व्याख्या करके उनके साथ भी न्याय नहीं किया है।

(आ) ब्रह्मसूत्र

१०. वेदान्त के इतिहास में ब्रह्मसूत्र ऐसा प्रथम ग्रन्थ है जिसने अन्य दर्शन-सम्प्रदायों के साथ बौद्ध दर्शन की आलोचना को भी स्थान दिया है। इसमें अन्य दर्शनों की तुलना में बौद्ध आलोचना के दो अधिकरण और सर्वाधिक पन्द्रह सूत्र हैं।

११. ब्रह्म के रचनाकार पर इतिहासकारों में विवाद है। बादरायण और ब्रह्मसूत्रकार यदि भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं तब बुद्ध से उनके सम्बन्ध के विषय में दोनों संभावनाएँ बनती हैं— बादरायण बुद्ध से पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं और परवर्ती भी।

१२. ब्रह्म की बौद्ध आलोच्य अवधारणाओं में क्षणभङ्गवाद की प्रमुखता है।

१३. ब्रह्म में बुद्ध का उल्लेख नहीं है।

१४. ब्रह्म में किसी बौद्ध सम्प्रदाय का नाम लिए बिना उसकी अवधारणाओं का सयुक्तिक खण्डन है। इससे सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद का परिज्ञान तो होता है किन्तु शून्यवाद का नहीं।

१५. समुदायाधिकरण के नाम की बौद्ध तत्त्वमीमांसा से सङ्गति है किन्तु अभावाधिकरण की नहीं है। वेदान्ताचार्यों में बौद्ध दर्शन की क्षण, शून्य आदि अवधारणाओं को अभावरूप मानने की जो प्रवृत्ति बाद में विकसित हुई, उसका बीज-वपन ब्रह्मसूत्रकार ने कर दिया था।

१६. ब्रह्म ने पूर्वपक्ष के अन्तर्गत बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम प्रारम्भ किया।

१७. क्षणभङ्गवाद और विज्ञानवाद तथा सम्पूर्ण बौद्ध तत्त्वमीमांसा के खण्डन में ब्रह्मसूत्रकार ने जो संक्षिप्त युक्ति-क्रम प्रारम्भ किया था, परवर्ती आचार्यों ने उसी का विस्तार और विकास किया।

१८. क्षणभङ्गवाद के खण्डन में प्रयुक्त वेदान्ताचार्यों की युक्तियाँ यद्यपि ब्रह्म से प्रेरित हैं तथापि उनमें सर्वथा नवीनता इसलिए नहीं है कि नागार्जुन आदि बौद्ध आचार्य इस प्रकार की युक्तियाँ पूर्व में दे चुके हैं। यही कारण है कि ब्रह्म की शैली पर कुछ विद्वान् नागार्जुन का प्रभाव मानते हैं।

(इ) माण्डूक्यकारिका

१९. वेदान्त और बौद्ध तत्त्वचिन्तन को अद्वैत की समानता के धरातल पर लाने का सर्वप्रथम कार्य आचार्य गौडपाद ने किया।

२०. बौद्ध सन्दर्भों के प्रसंग में गौडपाद के मतभेद के प्रधान बिन्दु हैं— सर्वास्तिवाद का खण्डन विज्ञानवाद के द्वारा करना, विज्ञानवाद की शैली को अपनाना।

२१. आचार्य गौडपाद वेदान्त के विकास की परम्परा में अद्वैतवाद के व्यवस्थित आरम्भ के लिए ही नहीं अपितु वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध की दृष्टि से भी एक स्वतन्त्र स्थान रखते हैं। क्योंकि इन्होंने बुद्ध और विज्ञानवाद के प्रति सद्भाव और सामञ्जस्य को अभिव्यक्त किया।

२२. **माण्डूका** में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द, इस बात का प्रमाण हैं कि बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों और अवधारणाओं से गौडपाद सुपरिचित थे।

२३. गौडपाद की शैली पर नागार्जुन के प्रभाव का विषय बहुचर्चित है। प्रभाव का सम्पूर्णतः तिरस्कार भी सम्भव नहीं है। अजातवाद की दृष्टि से भी गौडपाद और नागार्जुन एक भूमिका पर खड़े दिखाई देते हैं।

२४. श्रुति के अतिरिक्त तर्क को भी तत्त्वसिद्धि में प्रमाण के रूप में प्रयुक्त करना गौडपाद की विशेषता है। इस नीति पर शून्यवाद का प्रभाव भी है तथा इसका व्यावहारिक प्रयोग भी उन्होंने बौद्ध प्रसङ्ग में ही किया है।

२५. शैली से हटकर तत्त्व के साक्षात्कार की दृष्टि से देखने पर **माण्डूका** विज्ञानवाद के अधिक निकट प्रतीत होती है। दोनों विचारधाराओं में मनोविज्ञान को समान महत्त्व देने की प्रवृत्ति इसका प्रमाण है।

(ई) ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य

२६. आचार्य शङ्कर की गणना भारतीय दर्शन, वेदान्त, अद्वैत वेदान्त अथवा अद्वैतवाद के इतिहास में प्रथम आचार्य के रूप में नहीं की जा सकती। किन्तु इसके विपरीत भारतीय दर्शन, वेदान्त, अद्वैत वेदान्त और अद्वैतवाद को चरम पर पहुँचाने वाले अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य के रूप में वे अवश्य पहिचाने जाते हैं। दूसरे शब्दों में, अद्वैतवादी भारतीय दर्शन के विकास का इतिहास शङ्कर के बिना अपूर्ण है।

२७. वेदान्त के विकास के एक कालखण्ड में जो स्थान उप का था, बाद में वह **ब्रसू** को मिला और उसके बाद वेदान्त के परवर्ती समस्त सम्प्रदायों के विकास का आधारभूत साहित्य शाङ्कर साहित्य बन गया। शङ्कर के सिद्धान्त से पूर्ण सहमति अथवा पूर्ण असहमति, आंशिक सहमति अथवा आंशिक असहमति आदि किसी भी विचार की अभिव्यक्ति करने के लिए शाङ्कर साहित्य को ही माध्यम माना गया। शङ्कर के परवर्ती भाष्यकारों ने यद्यपि **ब्रसू** पर भाष्य लिखे हैं और इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनके लिए **ब्रसू** महत्त्वपूर्ण था किन्तु वस्तुतः **ब्रसू** को माध्यम बनाकर वे

शाङ्कर मत के प्रति ही अपनी प्रतिक्रिया को प्रधानता देते हैं। इन भाष्यों में स्पष्ट ही यह भाव दिखाई देता है कि ब्रह्म की जो व्याख्या शङ्कर ने की है, वह उचित और सुसङ्गत नहीं है। शङ्कर की उपेक्षा करके कोई भी परवर्ती वेदान्त का आचार्य स्वमत की स्थापना में समर्थ नहीं हो पाया है। इसलिए वेदान्त के परवर्ती विकास का इतिहास भी शङ्कर के बिना अपूर्ण है। दूसरी दृष्टि से देखें, तो वेदान्त की शङ्करोत्तर शाखाओं के अद्वैतवाद और द्वैतवाद भी शङ्कर अद्वैत की ही व्याख्याएँ हैं। पुनः शङ्कर एक ऐसे आचार्य हुए जिसमें न केवल अतीत का समावेश था अपितु भविष्य की सम्भावनाओं के बीज भी विद्यमान थे। शङ्कर ने इस केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह विशेषरूप से ब्रह्मशाभा में और बौद्धों के प्रसङ्ग में अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है।

२८. आचार्य शङ्कर ने माण्डूका भाष्य लिखकर वेदान्त और बौद्ध के सम्बन्ध में सामञ्जस्य के सूत्र को विकसित करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इस प्रयत्न का स्वरूप ब्रह्मशाभा के प्रयत्न से भिन्न है।

२९. ब्रह्मसूत्रकार और गौडपाद की परम्परा से हटकर शङ्कर ने अपने भाष्य में स्पष्ट रूप से बौद्ध सम्प्रदायों का नामोल्लेख किया। सिद्धान्त और अवधारणाओं को विस्तृत पूर्वपक्ष के अन्तर्गत, पारिभाषिक शब्दावली और युक्तियों के साथ प्रस्तुत किया। ब्रह्मसूत्रकार और गौडपाद का बौद्ध दर्शन-विषयक ज्ञान कितना ही व्यापक और प्रामाणिक रहा हो, उसकी अभिव्यक्ति में उन्होंने संक्षेप और संयम का आश्रय लिया किन्तु शङ्कर ऐसा न कर सके और उन्होंने बौद्ध दर्शन-विषयक अपने ज्ञान को खुलकर अभिव्यक्त किया। शङ्कर द्वारा प्रस्तुत समस्त बौद्ध सन्दर्भ, इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने गूढ़ता और विस्तार से इस पूर्वपक्ष पर अधिकार किया था। शून्य का अर्थ 'अभाव' करना, विज्ञानवाद के खण्डन में बाह्यार्थवाद को लाना, माया और वासना की अनादिता को समझते हुए भी वासना की अनादिता पर आपत्ति करना इत्यादि अनेक उदाहरण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध दर्शन के खण्डन में आचार्य शङ्कर का प्रयत्न सांस्कृतिक दबाव और श्रुति के प्रति पूर्वाग्रह से अधिक प्रेरित था। वे बौद्ध दर्शन के खण्डन में तर्क को ही प्रधानता देना चाहते थे फिर भी एक अवसर पर उन्होंने श्रुति का आश्रय लिया जिसे उनकी तार्किक दुर्बलता न मानकर, श्रुति के प्रति आस्था का प्रमाण ही माना जाना चाहिए।

३०. आचार्य शङ्कर के भाष्य में क्षणभङ्गवाद, विज्ञान-वासना इत्यादि के खण्डन के साथ शून्य का भी खण्डन है या नहीं, यह विवाद का विषय रहा है। किन्तु भाष्य का सूक्ष्म निरीक्षण यह निष्कर्ष देता है कि इसमें सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद

की तरह पूर्वपक्ष के रूप में शून्यवाद का उल्लेख भले ही नहीं है, किन्तु उसके खण्डन की युक्तियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। ये आपत्तियाँ सरल और स्पष्ट होने के साथ ही कठिन और रहस्यमयी भी प्रतीत होती हैं। इसीलिए विवाद का आधार बनीं।

३१. चेतना को महत्त्व देने की दृष्टि से शङ्कर विज्ञानवाद के अधिक निकट दिखाई देते हैं। किन्तु दो सत्यों की अवधारणाओं को यदि प्रश्रय दिया जाता है तो वे शून्यवाद से अधिक निकटता स्थापित करते हैं।

३२. रामानुज द्वारा शङ्कर को प्रच्छन्न बौद्ध कहना एक ऐसा विवाद है जो किसी न किसी रूप में आज भी जीवित है। वेदान्ती, बौद्ध और तटस्थ विद्वान् इसकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या करते हैं। तथापि इससे आचार्य शङ्कर और बौद्ध दर्शन की निकटता सिद्ध होती है। यही स्थिति आचार्य गौडपाद की है। शङ्कर को मुक्त रखने के लिए इस आरोप में गौडपाद को भी सम्मिलित किया जाता है और गौडपाद को मुक्त रखने के लिए विवाद को बुद्ध पर उप के प्रभाव तक ले जाया जाता है। कुल मिलाकर यह समस्त विवाद दोनों विचारधाराओं के आन्तरिक आदान-प्रदान और प्रभाव को ही पुष्ट करता है।

३३. बौद्ध दर्शन के मत-वैभिन्न्य को शङ्कर ने कौशल-पूर्वक प्रस्तुत किया है किन्तु उसके खण्डन में उन्हीं के विरोधी सम्प्रदाय की युक्तियों का प्रयोग भी चतुराई से किया है।

३४. शङ्कर की बौद्ध-विरोधी युक्तियाँ, बौद्ध सम्प्रदायों से भी प्रेरित हैं और अनेकत्र उनका स्वरूप ऐसा हो गया है कि जिन्हें स्वयं शङ्कर दर्शन पर भी लागू किया जा सकता है।

३५. यद्यपि आचार्य शङ्कर ने पूर्ववर्ती और परवर्ती वेदान्ताचार्यों की तुलना में सर्वाधिक बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, अवधारणाओं को स्पष्ट किया है, प्राञ्जल शैली में समस्त सन्दर्भ को प्रस्तुत किया है तथापि बौद्ध अवधारणाओं के अर्थ और स्वरूप में चतुराई से सूक्ष्म अन्तर कर देना अथवा उन्हें बौद्ध प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत न करना भी शङ्कर भाष्य की एक विशेषता है।

३६. दो प्रसिद्ध अवैदिक दर्शनों (जैन, बौद्ध) की ब्रह्म के माध्यम से समीक्षा करते हुए शङ्कर ने बौद्ध दर्शन को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है।

(३) श्रीभाष्य

३७. बौद्ध सन्दर्भ की दृष्टि से आचार्य शङ्कर के बाद वैष्णव-भाष्यकारों में रामानुज प्रमुख हैं। ये भी बौद्ध सम्प्रदायों, उनकी तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा तथा अवधारणाओं की समर्थ युक्तियों से परिचित थे।

३८. रामानुज द्वारा प्रस्तुत बौद्ध सन्दर्भ में पूर्व वेदान्ताचार्य के अनुकरण के साथ कुछ मौलिकता भी है। तत्त्वमीमांसीय और प्रमाणमीमांसीय युक्तियों के साथ पूर्वपक्ष को प्रस्तुत करना इसका एक उदाहरण है।

३९. बौद्ध खण्डन में शङ्कर के प्रति विरोध-भाव को भी समाविष्ट करना तथा शङ्कर पर प्रच्छन्न-बौद्ध का ऐसा आरोप लगाना जिससे विरोधी बौद्ध को लाभ हो और समर्थक वेदान्ती व्याकुल हो उठें तथा विवाद गंभीर ऐतिहासिक स्वरूप ग्रहण कर ले, यह भी रामानुज की एक विशेषता है।

४०. बौद्धों के लिए, विशेषरूप से उनकी अवधारणाओं और दुर्बलताओं के लिए 'तुच्छ' शब्द का प्रयोग भी रामानुज की विलक्षणता है। यह शब्द ही स्वयं में आक्रोश और तिरस्कार की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त है। इसे दार्शनिक शब्दावली का मानने में भी संकोच होता है।

४१. रामानुज के शून्यवाद-सम्बन्धी विचार शङ्कर से भिन्न हैं। शङ्कर जहाँ इसे विचारयोग्य भी नहीं मानते वहीं रामानुज इसे बौद्ध तत्त्वमीमांसा का चरम मानते हैं। यह बात भिन्न है कि वे अपनी खण्डन-प्रक्रिया में बाद में इसे तुच्छ की संज्ञा से विभूषित करते हैं।

४२. शङ्कर-विरोधी होने पर भी श्रीभाष्य में रामानुज की बौद्ध-विरोधी युक्तियों पर शङ्कर का प्रभाव स्पष्ट है।

४३. ब्रह्म की मर्यादा और शङ्कर भाष्य का विरोध-पूर्वक अनुकरण करते हुए भी रामानुज ने बौद्ध-सन्दर्भ में अविद्या, अर्थक्रियाकारित्व आदि की अछूती समस्याओं को भी उठाया है।

४४. बौद्ध सन्दर्भ का एक महत्वपूर्ण सूत्र (क्षणिकत्वाच्च) श्रीभाष्य में उपलब्ध नहीं है। अतः इसका अभाव सामग्री को न्यून बनाता है। यह अभाव ब्रह्म के कलेवर पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करता है।

(ऊ) अन्य वैष्णव भाष्य

४५. पारिभाषिक शब्दों, अवधारणाओं, सम्प्रदायों और युक्तियों की दृष्टि से रामानुज के परवर्ती तीनों भाष्यकार (निम्बार्क, मध्व, वल्लभ) समस्त आन्तरिक मतभेदों के बावजूद **ब्रसूशाभा** और **श्रीभाष्य** का ही अनुकरण करते हैं। इन्होंने बौद्ध सन्दर्भों को अन्य भाष्यकारों की तरह विस्तार नहीं दिया है।

४६. वल्लभ विज्ञानवाद के खण्डन के प्रसङ्ग में विज्ञान की पारमार्थिकता का खण्डन न करते हुए बाह्य पदार्थों की विज्ञानाभासरूपता का खण्डन करते हैं, किन्तु इससे एक ओर विज्ञानवाद पर अपेक्षित प्रहार नहीं हो पाता, दूसरी ओर बाह्यार्थ के विषय में खण्डनकर्ता का स्वयं का दृष्टिकोण भी सिद्ध नहीं हो पाता। खण्डनकर्ता का भाव बाह्यार्थ की स्वतन्त्रता को सिद्ध करना माना जाए तो इससे बाह्यार्थ की मान्यता का ही समर्थन ध्वनित होता है। यह समस्त उपक्रम खण्डन को युक्तिसङ्गत, सार्थक व सप्रयोजन मानने में अनावश्यक रूप से समस्या उपस्थित करता है।

४७. मध्व ने **ब्रसू** के बौद्ध विषयक सूत्रों (विशेष रूप से सूत्र २/२/३०-३१) पर जो भाष्य लिखा है उसकी सुसङ्गति सूत्र के शब्दों से स्थापित नहीं होती। यही नहीं, पूर्ववर्ती दोनों आचार्यों ने (मतभेदों के बावजूद) जिस भाव से इन सूत्रों और इनमें प्रयुक्त शब्दों को ग्रहण किया था उससे भी यह भाष्यकार भिन्नता रखता हुआ दिखाई देता है।

यह अनुसन्धान वेदान्त और बौद्ध साहित्य के सन्दर्भों के अध्ययन की दृष्टि से सीमित और एकपक्षीय है। पूर्वमीमांसा के ग्रन्थों, **ब्रसू** के अन्य भाष्यों, प्रधान भाष्यकारों के टीका-प्रटीका ग्रन्थों तथा स्वतन्त्ररूप से संस्कृत में लिखे गये अन्य परवर्ती वेदान्त-ग्रन्थों में समागत बौद्ध सन्दर्भों का अध्ययन अवशिष्ट है। इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों में समागत वेदान्त के सन्दर्भों का अध्ययन भी इस विचार का दूसरा आवश्यक पक्ष है। इसलिए ये समस्त अध्ययन और इनके निष्कर्ष ही वस्तुतः इस विषय पर निर्णायक विचार रखने में समर्थ हैं कि भारतीय दर्शन-आकाश के ये दो उज्ज्वल चिन्तन-नक्षत्र वस्तुतः एक दूसरे के प्रति क्या और कैसा दृष्टिकोण रखते हैं। इनके परस्पर संवादों और प्रभावों के यथार्थ का उद्घाटन, भारतीय दर्शन के अन्य सम्प्रदायों के इतिहास के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करेगा। इसी महान् यज्ञ में यह अनुसन्धान प्रथम अथवा अपने ढङ्ग की एक अलग आहुति है। इस कार्य में तटस्थ दृष्टि और अनुसन्धान-विधि

अपनाई गई है तथा किसी भी विचारधारा, सम्प्रदाय अथवा आचार्य के प्रति व्यक्तिगत आदर अथवा श्रद्धा का भाव प्रभावी नहीं हुआ है। क्योंकि दर्शन और अनुसन्धान इन दोनों में व्यक्तिगत आस्था के लिए कोई अवसर नहीं है। भारतीय दर्शन के स्वरूप, प्रवृत्ति और विकास को देखते हुए, प्रस्तुत विषय के सन्दर्भ में यही कहना उचित प्रतीत होता है कि बाह्य और शास्त्रीय मतभेदों के बावजूद भारतीय दर्शन के पूर्ण और व्यापक स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए तथा विश्व-मानव के सनातन कल्याण के लिए, इन दोनों विचारधाराओं का सद्भाव और सामञ्जस्य परमावश्यक है। इस प्रकार के अनुसन्धान से दर्शन और समाज में व्याप्त भ्रान्तियों का निराकरण होता है तथा विश्वबन्धुत्व की नींव को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती है- इति शम्।



परिशिष्ट - १

ब्रह्मसूत्र एवं भाष्यपञ्चक के बौद्ध विषयक सूत्रों में पाठ-भेद

सङ्केत	प्रयुक्त सङ्केतार्थ
ब्रसू (खे)	महर्षिवेदव्यासप्रणीतं शारीरकमीमांसादर्शनम्, श्रीशङ्कर-रामानुज-श्रीकण्ठ-मध्व-वल्लभ-निम्बार्काचार्यभाष्यसम्मत-पाठान्तरादियुतम्। सम्पादक-श्रीसूर्यनारायणशर्मा शुक्ल, 'संस्कृत बुकडिपो, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, वाराणसी, १९३४ ई.
ब्रसू (गी)	ब्रह्मसूत्राणि (मूलमात्र), गीताप्रेस, गोरखपुर.
ब्रसू (मो)	ब्रह्मसूत्रम् (तृतीय भाग), मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी, १९८१.
शाभा (निर्णय, तुका)	ब्रह्मसूत्राशाङ्करभाष्यम्, सटिप्पण, मूलमात्र, तुकाराम जावजी, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, सन् १९५१.
शाभा (निर्णय, पाण्डु)	ब्रह्मसूत्राशाङ्करभाष्यम्। सटिप्पण, मूलमात्र। पाण्डुरंग जावजी, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, द्वितीय संस्करण, सन् १९२७.
शाभा (परिमल)	ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम् (द्वितीय अध्याय) भामती-वेदान्तकल्पतरु-कल्पतरुपरिमलोपबृंहित.
राभा (वारा)	रामानुजाचार्य, श्रीभाष्यम्, भगवतीप्रसाद, मेडिकल हॉल प्रेस, वाराणसी १९१६.
राभा (ललित, प्रयाग)	रामानुजाचार्य, श्रीभाष्य, द्वितीय खण्ड, ललितकृष्ण गोस्वामी, निम्बार्काचार्यपीठ, महाजनी टोला, प्रयाग, १९७४.
राभा (मेलुकोटे)	रामानुज, श्रीभाष्यम्, तृतीयसम्पुट, संस्कृत-संसोधन-संसत् (यादवाद्रि) मेलुकोट, १९९०.
निभा (निम्बार्कपीठ)	गोस्वामी, ललितकृष्ण, श्रीनिम्बार्क वेदान्त (वेदान्तपारिजातसौरभ) निम्बार्क पीठ, महाजनी टोला, प्रयाग ३.

- निभा (वारा) निम्बार्काचार्य, ब्रह्ममीमांसाभाष्यम्, (वेदान्तपारिजातसौरभ),
बाबू हरिकृष्णदास गुप्ता, विद्याविलासयन्त्रालय, वाराणसी,
विक्रमवर्ष - १९६७.
- मभा (मुनिलाल, प्रयाग) मध्वाचार्य, श्री माध्ववेदान्त (पूर्णप्रज्ञभाष्य) निम्बार्क पीठ,
१२ महाजनी टोला, प्रयाग, सन् १९७४.
- वभा (निर्णय) वल्लभाचार्य, श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस,
मुम्बई, १९२३.
- वभा (ऐसि, सो) वल्लभाचार्य, अणुभाष्य, एशियाटिक सोसाइटी, पार्क
स्ट्रीट, कलकत्ता, १८९७.
- वभा (बुटाला, दिल्ली) वल्लभाचार्य, श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, बुटाला एण्ड कम्पनी,
दिल्ली, १९८०.

क्रमांक	प्रकाशक	समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः	इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्	उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात्
१.	ब्रसू (खे)	२/२/४ (समुदायाधिकरण)/१८	२/२/४ (समुदायाधिकरण)/१९	२/२/४ (समुदायाधिकरण)/२०
२.	ब्रसू (गी)	"	"	"
३.	ब्रसू (मो)	"	"	"
४.	शाभा (निर्णय, तुका)	"	"	"
५.	शाभा (निर्णय, पाण्डु)	"	"	"
६.	शाभा (परिमल)	"	"	"
७.	राभा (वारा)	२/२/३ (समुदायाधिकरण)/१७	२/२/३ (समुदायाधिकरण)/१८ इतरेतस्प्रत्ययत्वादिति चेन्न सङ्घातभावानिमित्तत्वात्	२/२/३ (समुदायाधिकरण)/१८
८.	राभा (ललित, प्रयाग)	"	"	"
९.	राभा (मेलुकोटे)	"	"	"
१०.	निभा (निम्बार्कपीठ)	२/२/७ (नाम नहीं)/१८	२/२/७ (नाम नहीं)/१९	२/२/७ (नाम नहीं)/२०
११.	निभा (वारा)	२/२/७ (नाम नहीं)/१८	२/२/७ (नाम नहीं)/१९	२/२/७ (नाम नहीं)/२०
१२.	मभा (मुनिलाल, प्रयाग)	२/२/४ समुदाय उभयहेतुक अधिकरण/१८	२/२/४-समुदाय उभयहेतुक अधिकरण/१९	२/२/४-समुदाय उभयहेतुक अधिकरण/२०
१३.	वभा (निर्णय)	"	"	"
१४.	वभा (ऐसि, सो)	"	"	"
१५.	वभा (बुटाला, दिल्ली)	"	"	"

क्रमांक	प्रकाशक	असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यामन्यथा	प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधा- प्राप्तिरविच्छेदात्	उभयथा च दोषात्	आकाशे चाऽविशेषात्
१६.	ब्रसू (खे)	२/२/४ (समुदायाधि- करण)/२१	२/२/४ (समुदायाधिकरण)/२२	२/२/४ (समुदाया- धिकरण)/२३	२/२/४ (समुदायाधि- करण)/२४
१७.	ब्रसू (गी)	"	"	"	"
१८.	ब्रसू (मो)	"	"	"	"
१९.	शाभा (निर्णय, तुका)	"	"	"	"
२०.	शाभा (निर्णय, पाण्डु)	"	"	"	"
२१.	शाभा (परिमल)	"	"	"	"
२२.	राभा (वारा)	२/२/३ (समुदायाधि- करण)/२०	२/२/३ (समुदायाधिकरण)/२१	२/२/३ (समुदाया- धिकरण)/२२	२/२/३ (समुदायाधि- करण)/२३
२३.	राभा (ललित, प्रयाग)	"	"	"	"
२४.	राभा (मेलुकोटे)	"	"	"	"
२५.	निभा (निबार्कपीठ)	२/२/७ (नाम नहीं)/२१	२/२/७ (नाम नहीं)/२२	२/२/७ (नाम नहीं)/२३	२/२/७ (नाम नहीं)/२४
२६.	निभा (वारा)	२/२/अधिकरण-X/२१	२/२/अधिकरण-X/२२	२/२/अधिकरण-X/२३	२/२/अधिकरण-X/२४
२७.	मभा (मुनिलाल, प्रयाग)	२/२/७ (नाम नहीं)/२१	२/२/७ (नाम नहीं)/२२	२/२/७ (नाम नहीं)/२३	२/२/७ (नाम नहीं)/२४
२८.	वभा (निर्णय)	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२१	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२२	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२३	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२४
२९.	वभा (ऐसि, सो)	"	"	"	"
३०.	वभा (बुटाला, दिल्ली)	"	"	"	"

२५२ परिशिष्ट १ : ब्रह्मसूत्र एवं भाष्यपञ्चक के बौद्ध विषयक सूत्रों में पाठ-भेद

क्रमांक	प्रकाशक	अनुस्यूतेश्व	नासतोऽदृष्टत्वात्	उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः	नाऽभाव उपलब्धेः
३१.	ब्रसू (खे)	२/२/४ (समुदायाधि- करण)/२५	२/२/४ (समुदायाधिकरण)/२६	२/२/४ (समुदाया- धिकरण)/२७	२/२/५ (अभावाधि- करण)/२८
३२.	ब्रसू (गी)	"	"	"	"
३३.	ब्रसू (मो)	"	"	"	"
३४.	शाभा (निर्णय, तुका)	"	"	"	"
३५.	शाभा (निर्णय, पाण्डु)	"	"	"	"
३६.	शाभा (परिमल)	"	"	"	"
३७.	राभा (वारा)	२/२/३ (समुदायाधि- करण)/२४	२/२/३ (समुदायाधिकरण)/२५	२/२/३ (समुदाया- धिकरण)/२६	२/२/४ (अयोपलब्ध्यधि- करण)/२७
३८.	राभा (ललित, प्रयाग)	"	"	"	"
३९.	राभा (मेलुकोटे)	"	"	"	"
४०.	निभा (निम्बार्कपीठ)	२/२/७ (नाम नहीं)/२५	२/२/८ (नाम नहीं)/२६	२/२/८ (नाम नहीं)/२७	२/२/८ (नाम नहीं)/२८
४१.	निभा (वारा)	२/२/अधिकरण-X/२५	२/२/अधिकरण-X/२६	२/२/अधिकरण-X/२७	२/२/अधिकरण-X/२८
४२.	मभा (मुनिलाल, प्रयाग)	२/२/७ (नाम नहीं)/२५	२/२/८ (नाम नहीं)/२६	२/२/८ (नाम नहीं)/२७	२/२/८ (नाम नहीं)/२८
४३.	वभा (निर्णय)	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२५	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२६	२/२/४ (समुदाय उभय- हेतुक अधिकरण)/२७	२/२/५ (उपलब्ध्यैरित्य- धिकरण)/२८
४४.	वभा (ऐसि, सो)	"	"	"	"
४५.	वभा (बुटाला, दिल्ली)	"	"	"	"

क्रमांक	प्रकाशक	वैधर्याच्च न स्वप्नादिवत्	न भावोऽनुलब्धे	क्षणिकत्वाच्च	सर्वथानुपपत्तेश्च
४६.	ब्रह्म (खे)	२/२/५ (अभावाधि- करण)/२९	२/२/५ (अभावाधिकरण)/३०	२/२/५ (अभावा- धिकरण)/३१	२/२/५ (अभावाधि- करण)/३२
४७.	ब्रह्म (मी)	"	"	"	"
४८.	ब्रह्म (मो)	"	"	"	"
४९.	शाभा (निर्णय, तुका)	"	"	"	"
५०.	शाभा (निर्णय, पाण्डु)	"	"	"	"
५१.	शाभा (परिमल)	"	"	"	"
५२.	राभा (वारा)	२/२/४ (अयोपलब्ध्यधि- करण)/२८	२/२/४ (अयोपलब्ध्यधिकरण)/२९	X	२/२/५ (सर्वथानुपपत्त्य- धिकरण) ३०
५३.	राभा (ललित, प्रयाग)	"	"	"	"
५४.	राभा (मेलुकोटे)	"	"	"	"
५५.	निभा (निम्बार्कपीठ)	२/२/८ (नाम नहीं)/२९	२/२/९ (नाम नहीं)/३०	२/२/९ (नाम नहीं)/३१	२/२/९ (नाम नहीं)/३२
५६.	निभा (वारा)	२/२/अधिकरण-X/२९	२/२/अधिकरण-X/३०	२/२/अधिकरण-X/३१	२/२/अधिकरण-X/३२
५७.	मभा (मुनिलाल, प्रयाग)	२/२/८ (नाम नहीं)/२९	२/२/९ (नाम नहीं)/३०	२/२/९ (नाम नहीं)/३१	२/२/९ (नाम नहीं)/३२
५८.	वभा (निर्णय)	२/२/५ (उपलब्धैरित्याधि- करण)/९	२/२/५ (उपलब्धैरित्याधि- करण)/३०	क्षणिकत्वाच्च	२/२/५ (उपलब्धैरित्य- धिकरण)/३२
५९.	वभा (ऐसि, सो)	"	"	"	"
६०.	वभा (बुटाला, दिल्ली)	"	"	"	"

भाष्यपञ्चक में सूत्रानुसार उत्थापित बौद्ध समस्याएँ (पंक्तिरूप विस्तार-सहित)

क्र.सं.	सूत्र	उत्थापित समस्याएँ		उत्थापित समस्याएँ		
		श्रुभा	राभा	मभा	निभा	वभा
१.	समुदाय- उभयहेतुकेऽपि तदश्राप्तिः	समुदाय की सिद्धि; समुदाय का कारण/ संघातकर्ता का स्वरूप, संघात का प्रयोजन, अर्थक्रिया की समस्या, सृष्टि-व्यापार की अनन्तता, मोक्ष की अवधारणा (पङ्क्तियाँ २०)	समुदाय (जगत्) का अस्तित्व की अनुपपत्ति, उसका ज्ञान व हेतु व उपादेय रूप से व्यवहार (पङ्क्तियाँ ३०)	समुदायरूप (कार्य का कारण (पङ्क्तियाँ २)	समुदाय की सिद्धि (पङ्क्तियाँ ३)	समुदाय की सिद्धि व उसका प्रयोजन (पङ्क्तियाँ २)
२.	इतरेतत्प्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्र- निमित्तत्वात्	संघात की उत्पत्ति, समुदाय का (क्षणिक) निमित्तकारण, अवयव- अवयवी का समस्या (पङ्क्तियाँ ३१)	समुदाय का निमित्त (कारण), अविद्या का स्वरूप, समुदाय व अविद्या में कार्य- कारणभाव (पङ्क्तियाँ १७)	समुदायियों की निरपेक्षता (सापेक्षता); निरपेक्ष समुदायियों से व्यवहार (पङ्क्तियाँ ४)	" (पङ्क्तियाँ २)	कार्यकारणभाव (क्षणभङ्गवाद में परस्पर सम्बन्ध) (पङ्क्तियाँ ३)

क्र.सं.	सूत्र	उत्थापित समस्याएँ				उत्थापित समस्याएँ			
		शाभा	राभा	मभा	निभा	वभा			
३.	उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात्	संघात की सिद्धि, कार्यकारणभाव की समस्या, संघात का निमित्तकारण, वस्तु के उत्पाद व निरोध की समस्या, (पङ्क्तियाँ २२)	कार्यकारणभाव व क्षणभङ्गवाद से उसकी असङ्गति, क्षणभङ्गवाद में विषय का ज्ञान, (पङ्क्तियाँ १२)	कार्यों में भेद अथवा कार्यों की विविधता (पङ्क्ति १)	कार्यकारणभाव (पङ्क्तियाँ २)	कार्यकारणभाव (उत्पत्ति व विनाश के लिए कारण अथवा प्रतिबन्धित कारण) (पङ्क्तियाँ २)			
४.	असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा	क्षणभङ्गवाद से कार्यकारणभाव की असंगति, हेतुफल की समस्या, निहेतुक उत्पत्ति, अभाव से भाव की उत्पत्ति (पङ्क्तियाँ ७)	क्षणभङ्गवाद व हेतुवाद में असंगति (पङ्क्तियाँ ८)	क्षणभङ्गवाद से कार्यकारणभाव की असंगति (पङ्क्तियाँ २)	कार्यकारणभाव (पङ्क्तियाँ ४)	कार्यकारणभाव (उत्पत्ति व विनाश के लिए कारण) अथवा प्रतिबन्धित कारण (पङ्क्तियाँ ३)			
५.	प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या-निरोधप्राप्तिरविच्छेदात्	निरोधकी कार्यता, निहेतुक विनाश/भावात्मक निरोध, अर्थक्रियाकारित्व/सन्तान का विच्छेद (पङ्क्तियाँ १४)	सत् का निरन्वय विनाश (पङ्क्तियाँ १३)	कारण के क्षण में कार्य की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)	निरोध की सहतुकता और निहेतुकता (पङ्क्तियाँ २)	असंस्कृतधर्म का अस्तित्व (पङ्क्तियाँ ४)			

क्र.सं.	सूत्र	उत्थापित समस्याएँ		उत्थापित समस्याएँ		
		शाखा	राधा	मभा	निभा	वभा
६.	उभयथा च दोषात्	निरोध की कार्यता, निर्हेतुक विनाश, भावात्मक निरोध अर्थक्रियाकारित्व सन्तान का विच्छेद (पङ्क्तियाँ १४)	कार्य व कारण की तुच्छता (पङ्क्तियाँ ९)	कार्य के क्षण में कारण की सत्ता, कारण के क्षण में कार्य की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)	मोक्ष का स्वरूप (पङ्क्तियाँ २)	अभाव से भाव की उत्पत्ति (मोक्ष के सन्दर्भ में), निर्हेतुक विनाश (पङ्क्तियाँ ३)
७.	आकाशे चाविशेषात्	आकाश का वस्तुत्व/निरूपाख्यत्व, आकाश की आवरणभावमात्रता (पङ्क्तियाँ १९)	आकाश की अस्तित्वता (पङ्क्तियाँ १६)	दीप और आकाश के दृष्टान्त से सर्वानित्यता (पङ्क्तियाँ २)	आकाश की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)	आकाश की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)
८.	अनुस्मृतेश्च	क्षणभङ्गवाद में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान में सादृश्य की समस्या, अनात्मवाद में असंगति. (पङ्क्तियाँ ३२)	प्रत्यभिज्ञान के सत्ता व स्वरूप, प्रत्यक्ष लक्षण, वस्तु का स्वरूप, अनुमान का स्वरूप, वस्तु के विनाश का कारण (पङ्क्तियाँ ३९)	क्षणभङ्गवाद में प्रत्यभिज्ञान, अद्वैतवाद में भ्रान्ति (पङ्क्तियाँ २)	प्रत्यभिज्ञा (पङ्क्ति १)	प्रत्यभिज्ञा (पङ्क्तियाँ २)
९.	नासतोऽदृष्टत्वात्	असत् से सत् की उत्पत्ति, अभाव से भाव की उत्पत्ति, हेतुवाद/प्रत्ययवाद की समस्या (पङ्क्तियाँ २९)	ज्ञानोत्पत्ति में विषय की भूमिका (पङ्क्तियाँ १६)	असत् (शून्य) की कारणता (पङ्क्ति १)	अभाव से भाव की उत्पत्ति (कार्यकारणभाव) (पङ्क्ति १)	असत् से सत् की उत्पत्ति (पङ्क्तियाँ ११)

क्र.सं.	सूत्र	उत्थापित समस्याएँ				उत्थापित समस्याएँ		
		शाभा	राभा	मभा	निभा	वभा		
१०.	उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः	असत् से सत् की उत्पत्ति, अभाव से भाव की उत्पत्ति, हेतुवाद/प्रत्ययवाद की समस्या (पङ्क्तियाँ ७)	क्षणभङ्गवाद में असदुत्पत्ति व निर्हेतुक विनाश (पङ्क्तियाँ ७)	असत् (शून्य) की कारणता (पङ्क्ति १)	अभाव से भाव की उत्पत्ति (कार्यकारणभाव) (पङ्क्ति १)	अभाव से भाव की उत्पत्ति (पङ्क्तियाँ २)		
११.	नाभाव उपलब्धेः	विज्ञानस्कन्धवाद? बाह्यार्थ का स्वरूप, अर्थ वैचित्र्य व ज्ञान वैचित्र्य की समस्या, विज्ञान व विज्ञेय का परस्पर सम्बन्ध (सहोपलम्भनियम) स्वलक्षण प्रतिज्ञा से असंगति, सामान्य लक्षण प्रतिज्ञा से असंगति, वास्यवासकत्व प्रतिज्ञा की हांनि, बन्ध-मोक्ष की समस्या (पङ्क्तियाँ ११)	विज्ञान व विज्ञेय का परस्पर सम्बन्ध (पङ्क्तियाँ ३६)	जगत् का अस्तित्व (पङ्क्ति १)	जगत् की सत्ता अथवा विज्ञान की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)	जगत् का स्वरूप (पङ्क्तियाँ २)		

क्र.सं.	सूत्र	उत्थापित समस्याएँ		उत्थापित समस्याएँ		
		शाभा	राभा	मभा	निभा	वभा
१२.	वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्	बाह्यार्थ का स्वरूप, स्मृति व उपलब्धि का भेद/स्वप्नावस्था व जाग्रतावस्था में भेद (पङ्क्तियाँ १८)	विज्ञान व विज्ञेय का परस्पर सम्बन्ध (पङ्क्तियाँ ६)	जगत् का अस्तित्व (पङ्क्ति १)	जगत् की सत्ता अथवा विज्ञान की सत्ता (पङ्क्तियाँ २)	जगत् का स्वरूप व मोक्ष का अस्तित्व (पङ्क्तियाँ ३)
१३.	न भावोऽनुपलब्धेः	वासना की अनादिता, विज्ञान व वासना का परस्पर सम्बन्ध (पङ्क्तियाँ १२)	विज्ञान में विज्ञेय की भूमिका (पङ्क्तियाँ ४)	जगत् का स्वरूप (पङ्क्ति १)	वासना में विषय की भूमिका (वासना की विचित्रता (पङ्क्तियाँ २)	विज्ञान की विचित्रता, वासना की अनादिता व निर्विषयता (पङ्क्तियाँ ४)
१४.	क्षणिकत्वाच्च	आलय-विज्ञान का स्वरूप, प्रमाता व प्रमेय में भेद का आधार, विज्ञान की स्वयंप्रकाशता, शून्यवाद में लोकव्यवहार की समस्या, शून्यवाद के स्वरूप की सिद्धि (पङ्क्तियाँ ११)	-	ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप (पङ्क्ति १)	वासना का आश्रय (पङ्क्ति १)	वासना की अनाश्रयिता, शून्यवाद की असतवादिता (पङ्क्तियाँ ३)
१५.	सर्वयथानुपपत्तेश्च	पूर्वपक्ष की निस्सारता, परस्पर विरुद्धता (पङ्क्तियाँ १०)	शून्य की तुच्छता, शून्य के अस्तित्व में प्रमाणाभाव (पङ्क्तियाँ २६)	पूर्वपक्ष की प्रामाणिकता (पङ्क्तियाँ २)	शून्य का अस्तित्व एवं उसमें प्रमाणाभाव (पङ्क्तियाँ २)	पूर्वपक्ष की प्रामाणिकता (पङ्क्तियाँ २)

परिशिष्ट - ३

ब्रह्मसूत्र के भाष्यपञ्चक में समागत सलक्षण बौद्ध पारिभाषिक शब्द

क्रमाङ्क लक्ष्य	लक्षण
१. अधिपति	: अधिपति इन्द्रियम्। श्रीभाष्य २/२/२०.
२. अनुमान	: अनुमानमपि अर्थक्रियाकारित्वात् सत्त्वाच्च घटादिः क्षणिकः यदक्षणिकं शशविषाणादि, तदनर्थक्रियाकार्यम्। वही, २/२/२४.
३. अप्रतिसंख्यानिरोध	: प्रतिसंख्यानिरोधोऽतद्विपरीतोऽप्रतिसंख्यानिरोधः। ब्रसूशाभा, २/२/२२. : सूक्ष्मश्च यो निरन्वयो विनाशः (अप्रतिसंख्यानिरोधः)...। श्रीभाष्य, २/२/२१. : विपरीतोऽप्रतिसंख्यानिरोधः। अणुभाष्य, २/२/२२.
४. अविद्या	: अविद्या हि नाम विपरीतबुद्धिः। श्रीभाष्य, २/२/१८. : अस्थिरादिषु स्थिरत्वादिबुद्ध्यात्मिकाऽविद्या। वही
५. आकाश	: आवरणाभावमात्रमाकाश। ब्रसूशाभा, २/२/२२. : आकाशमप्यावरणाभावो निरुपाख्यम्। अणुभाष्य, २/२/२४.
६. निरोध	: अयमविद्यादिनिरोधः प्रतिसङ्ख्यमानिरोधान्तःपाती...। ब्रसूशाभा, २/२/२३.
७. प्रतिसंख्यानिरोध	: बुद्धिपूर्वः किल विनाशो भावानां प्रतिसंख्यानिरोधो नाम भाष्यते। ब्रसूशाभा, २/२/२२. : मुद्गराभिघाताद्यनन्तरभावितयोपलब्धियोग्यः सदृशसंतानावसानरूपः स्थूलो यः विनाशः स प्रतिसंख्या- निरोधः। श्रीभाष्य, २/२/२१. : सदृशसंताने प्रतिक्षणभावी चोपलब्ध्यनर्हः सूक्ष्मश्च (यो) निरन्वयो विनाशः (प्रतिसंख्यानिरोधः)। श्रीभाष्य, २/२/२१. : प्रतिसंख्यानिरोधो नाम भावानां बुद्धिपूर्वको विनाशः। अणुभाष्य, २/२/२२.

२६० परिशिष्ट ३ : ब्रह्मसूत्र के भाष्यपञ्चक में समागत सलक्षण बौद्ध पारिभाषिक शब्द

८. प्रत्यक्ष : प्रत्यक्षं तावत् वर्तमानार्थविषयमवर्तमानादवस्तुनो व्यावृत्तं स्वविषयमवगमयति। श्रीभाष्य, २/२/२४.
९. प्रत्यभिज्ञा : सादृश्यनिबन्धनोऽयमेकत्वव्यामोह इति। श्रीभाष्य, २/२/२४.
१०. भूत : भूतं पृथिवीधात्वादयः। ब्रसूशाभा, २/२/१८.
११. भौतिक : भौतिकं रूपादयश्चक्षुरादयश्च। ब्रसूशाभा, २/२/१८.
१२. वासना : वासना नाम संस्कारविशेषाः। ब्रसूशाभा, २/२/३०.
: वासना विलक्षणप्रत्ययप्रवाह एव। श्रीभाष्य, २/२/२७.
१३. समुदाय : ...अणुहेतुकः पृथिव्यादिभूतात्मकः समुदायः, ...
पृथिव्यादिहेतुकः शरीरेन्द्रियविषयरूपः समुदायः। श्रीभाष्य २/२/१७.
१४. सहोपलम्भनियम : सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः। श्रीभाष्य, २/२/२७.
१५. स्कन्ध : रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकाः पञ्चस्कन्धाः।
ब्रसूशाभा, २/२/१८.

वेदान्ताचार्यो द्वारा उल्लिखित सामान्य बौद्ध पारिभाषिक शब्द

क्र.सं.	बौद्ध पारिभाषिक शब्द	ब्रह्म	माण्डूका	ब्रह्मशाभा	श्रीभाष्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	वेदान्तपारिजात-सौरभभाष्य	अणुभाष्य
१.	अधिपति (प्रत्यय)	-	-	II.2.25,28-30	II.2.20	-	-	II.2.19
२.	अप्रतिसंख्य	II.2.22	-	II.2.22,24	II.2.21,23	-	-	II.2.22
३.	अर्थक्रियाकारित्व	-	-	-	II.2.24	-	-	-
४.	आकाश	II.2.24	1.2.III.4,6,9,12	II.2.22,24	II.2.32	II.2.24	II.2.24	II.2.24
५.	आलम्बन	-	-	-	II.2.20	-	-	-
६.	आलयविज्ञान	-	-	-	-	-	-	II.2.31
७.	क्षण	-	-	II.2.18-22,25	II.2.17-20, 24,26	-	-	-
	क्षणिकत्व	II.2.31	-	28,31	-	-	-	-
	क्षणिकत्वाद	-	-	-	-	-	-	-
	क्षान्ति	-	IV.92	-	-	II.2.24	II.2.20,21,23,31	II.2.19,20, 21,22,25
८.	चित्त	-	II.14;IV.26, 27,28,36,54, 62,72,76,77	-	II.2.17,18	-	-	II.2.21

क्र.सं.	बौद्ध पारिभाषिक शब्द	ब्रह्म	माण्डूका	ब्रह्मशाभा	श्रीभाष्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	वेदान्तपारिजात-सौरभभाष्य	अणुभाष्य
१.	चित्त-चैत	-	-	II.2.21,26	II.2.17,18	-	II.2.18	II.2.21
१०.	चैतसिक	-	-	-	II.2.18	-	-	-
११.	चैत	-	-	II.2.18	II.2.17,18	-	-	II.2.21
१२.	धर्म	-	II.8.25; III.1 IV.1.5,6,8,10 21.33,46,53. 54,58,60,81, 82,93,96,98 99	II.2.20,24 28,29	-	-	-	-
१३.	नामरूप	-	-	-	-	-	-	-
१४.	निरोध	II.2.20	II.25	II.2.20-24,31	II.2.21,23	-	II.2.23	II.2.22
१५.	निरोधद्वय	-	-	II.2.22,24	-	-	-	II.2.22
१६.	निःस्वभाव	-	-	II.2.26	-	-	-	-
१७.	निर्वाण	-	III.47	-	II.2.21	-	-	-
१८.	पञ्चस्कन्ध	-	-	-	-	-	-	-
१९.	परतन्त्र (स्वभाव)	-	IV.24,74	II.2.20,23-24	-	-	-	II.2.18
२०.	परिकल्पित	-	-	II.2.20,22-23 26,28	-	-	-	की पूर्वपटिका
२१.	परिनिष्पन्न	-	-	II.2.20	-	-	-	-

क्र. सं.	बौद्ध पारिभाषिक शब्द	ब्रसू	माण्डूका	ब्रसूशाभा	श्रीभाष्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	वेदान्तपारिजात-सौरभभाष्य	अणुभाष्य
२२.	प्रज्ञप्ति	-	IV.24.25	-	-	-	-	-
२३.	प्रतिसंख्या	II.2.22	-	II.2.23, 24	II.2.21, 23	-	-	II.2.22
२४.	प्रतीत्य (समुत्पाद)	-	-	-	-	-	-	II.2.21
२५.	प्रत्यय	II.2.19	-	II.2.25, 28-30	II.2.18	-	-	II.2.19
२६.	प्रत्ययवैचित्र्य	-	-	II.2.28	-	-	-	-
२७.	प्रवृत्तिविज्ञान	-	-	II.2.31	-	-	-	-
२८.	बाह्यार्थवाद	-	-	II.28, 30, 31	II.2.17, 25	-	-	-
२९.	बुद्ध	-	III.8, IV.1, 19 34, 35, 39, 42, 75, 79, 80, 92, 98, 99	II.2 अभावाधि - करण 5	II.2.30	-	II.2.30,	II.2.30, 32 II.2.26
३०.	बुद्धिसन्तान	-	-	II.2.25	-	-	-	-
३१.	बौद्ध	-	-	II.2.28	-	-	-	-
३२.	मनस्कार	-	-	-	-	-	-	-
३३.	माध्यमिक	-	-	-	-	-	-	-
३४.	योगाचार	-	II.38	-	II.2.30	-	II.2.22	-
३५.	रूप	-	-	-	II.2.27	-	-	II.2.31
३६.	वासना	-	-	II.2.18	II.2.18	-	-	II.2.18 की
३७.	वासनावैचित्र्य	-	-	II.2.28, 30-31 II.2.28, 31	II.2.27	-	II.2.30	पूर्वपीठिका II.2.30, 31

क्र. सं.	बौद्ध पारिभाषिक शब्द	ब्रसू	माण्डूका	ब्रसूशाभा	श्रीभाष्य	पूर्णग्रन्थभाष्य	वेदान्तपरिजात-सौरभभाष्य	अणुभाष्य
३८.	वास्यवासकत्व-प्रतिज्ञा	-	-	-	-	-	-	-
३९.	विज्ञान	-	IV.45-48	I.1.1. II.2.18,28,32	II.17.18,27,30	II.2.30	II.2.19,21,28	II.2.18 की पूर्वपीठिका
४०.	विज्ञानद्वय	-	-	II.2.28	-	-	-	-
४१.	विज्ञानभेद	-	-	II.2.28	-	-	-	-
४२.	विज्ञानवाद	-	-	II.2.28,31	II.2.27	II.2.30 की पूर्वपीठिका	-	II.2.28 की पूर्वपीठिका
४३.	विज्ञानसाक्षी	-	-	II.2.28	-	-	-	-
४४.	विज्ञानस्कन्धवाद	-	-	II.2.28	-	-	-	-
४५.	वेदाना	-	-	II.2.18	II.2.18	-	-	-
४६.	वैभाषिक	-	-	-	II.2.25	-	-	-
४७.	शून्य	-	I.6.IV.67	I.1.1, II.2.19	II.2.17,18,30	II.2.18	-	-
४८.	शून्यवाद	-	-	II.2.32	II.2.30	II.2.26 की पूर्वपीठिका	II.2.32	-
४९.	शून्यवादी	-	-	II.2.18,31	-	-	-	-
५०.	षडायतन	-	-	-	II.2.18	-	II.2.19	-
५१.	संघात	-	III.3.10	II.2.19	II.2.17,18	-	II.2.19	-
५२.	संज्ञा	-	-	II.2.18	-	-	-	-
५३.	संस्कृत	-	-	II.2.22	-	-	-	II.2.22 की पूर्वपीठिका

क्र.सं.	बौद्ध पारिभाषिक शब्द	ब्रसू	माण्डूका	ब्रसूशाभा	श्रीभाष्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	वेदान्तपरिजात-सौरभभाष्य	अणुभाष्य
५४.	सद्धर्मप्रतिज्ञा	-	-	II.2.28	-	-	-	-
५५.	सन्तति	-	-	-	-	-	-	II.2.22
५६.	सन्तान	-	-	II.2.22..25	II.2.17.21.24	II.2.22	II.2.22.23	-
५७.	समन्तर (प्रत्यय)	-	-	-	II.2.20	-	-	-
५८.	समुदाय	II.2.18	-	II.2.18	II.2.17	II.2.18.19	II.2.18	II.2.18.19
५९.	सर्वास्तिवादी	-	-	II.2.18	-	-	-	-
६०.	सहकारी	-	-	-	II.2.20	-	-	-
६१.	सहोपलम्भनियम	-	-	II.2.28	II.2.27	-	-	-
६२.	सुगत	-	-	II.2.28.32	II.2.30	-	II.2.18	-
६३.	सौगत	-	-	II.2.19,14	II.2.17	-	-	-
६४.	सौत्रान्तिक	-	-	-	II.2.25	-	-	II.2.31
६५.	स्कन्ध	-	-	II.2 अभावा-धिकरण 5 का श्लोक	-	-	-	II.2.18 की पूर्वपीठिका
६६.	स्वभाव	-	I.9;III.22; IV.18	II.2.20.26.28	-	-	-	-
६७.	स्वसंवेदन	-	-	II.2.28	-	-	-	-
६८.	हेतु	-	II.4;IV.14-18 23,53-56.	II.2.18.20,21	II.2.19,24,25 30	II.2.18.19	II.2.18	II.2.18

परिशिष्ट - ५

वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन के काशीस्थ आधुनिक विद्वान् एवं उनसे साक्षात्कार में प्रयुक्त प्रश्नावली

विद्वन्नाम	परिचय
१. आचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती	द्वारका एवं शारदापीठाधीश्वर
२. प्रो. सुधांशु शेखर शास्त्री	अध्यक्ष वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
३. पं. मुरलीधर पाण्डेय	पूर्व आचार्य, वैदिक दर्शन विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू
४. प्रो. रघुनाथ गिरि	पूर्व आचार्य, दर्शन विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
५. प्रो. रामशङ्कर त्रिपाठी	पूर्व आचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
६. डॉ. रमेश कुमार द्विवेदी	उपाचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
७. डॉ. अभिमन्यु सिंह	दर्शन-धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रश्नावली

- वेदान्त और बौद्ध विचारधारा में परस्पर संवाद/सन्दर्भ का इतिहास कब से अथवा किस ग्रन्थ से प्रारम्भ हुआ माना जाता है?
- वेदान्त और बौद्ध विचारधारा में ऐसा माना जाता है कि कुछ समानताएँ और कुछ अन्तर है। आपके मत में, दोनों विचारधाराओं के प्रधान साम्य व प्रधान वैषम्य क्या हैं?
- बौद्ध विचारधारा को क्या वेदान्त की सर्वथा विरोधी विचारधारा मानना उचित है?
- क्या वेदान्त दर्शन के विकास में बौद्ध आचार्यों के योगदान को स्वीकार किया जा सकता है, यदि हाँ तो इस योगदान का संक्षिप्त स्वरूप क्या होगा?

५. गौडपाद और शङ्कर को 'प्रच्छन्न-बौद्ध' कहे जाने से यदि असहमति है तो इसके आधार क्या हैं?
६. बौद्ध दर्शन की अपेक्षा वेदान्त का अन्य वैदिक आत्मवादियों से तीव्रतर मतभेद है। किन्तु वेदान्त का बड़ा विरोधी बौद्ध को माना जाता है, ऐसा क्यों?
७. वेदान्त के किन (प्रसिद्धेतर) ग्रन्थों में बौद्धों की आलोचना मिलती है?
८. बौद्धों के विरोध में सर्वाधिक अग्रणी वेदान्त का आचार्य कौन है?
९. वेदान्त के आचार्यों का सर्वाधिक विरोधी बौद्ध आचार्य और ग्रन्थ कौन सा है?
१०. वेदान्त के ग्रन्थों में बुद्ध का उल्लेख तो प्राप्त होता है किन्तु उनके प्रति आदर-भाव व्यक्त नहीं किया गया है? क्या यह दृष्टिकोण न्यायोचित है?
११. वेदान्त और बौद्ध विचारधाराओं में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने अथवा मतभेद कम करने में महायान का योगदान क्या रहा है?
१२. ब्रह्मसूत्र में शून्यवाद का खण्डन है अथवा नहीं, यदि नहीं है तो क्यों?
१३. शङ्कर ने (ब्रह्मसूत्र भाष्य के सन्दर्भ में) शून्यवाद की जो चर्चा की है, उसमें प्रदर्शित तिरस्कार भाव का औचित्य क्या है?
१४. भाष्य की भावना और लक्षण के क्या यह विरुद्ध नहीं है कि ब्रह्मसूत्र के पाँच प्रधान भाष्यकार उन विषयों का भी उल्लेख करें जो मूल ग्रन्थ में नहीं हैं?
१५. वेदान्ताचार्यों ने अपने ग्रन्थों में बौद्ध दर्शन का उल्लेख करते हुए माध्यमिक शून्यवाद को बुद्ध का वास्तविक उपदेश बताया है। यदि इस टिप्पणी को सत्य स्वीकार कर लिया जाए तो शङ्कर सहित सभी वेदान्ताचार्यों को दार्शनिक स्तर पर शून्यवाद का ही सर्वाधिक खण्डन करना चाहिए था। किन्तु भाष्यों के सन्दर्भ में तथ्य यही है कि शून्यवाद सर्वाधिक उपेक्षित पूर्वपक्ष रहा है, इसका कारण क्या है?
१६. शङ्कराचार्य ने बौद्ध मत को भारत से बहिष्कृत कर दिया- यह मान्यता कहाँ तक उचित है और इसके ऐतिहासिक व शास्त्रीय प्रमाण क्या हैं?
१७. शङ्कर का सर्वथा विरोधी मत किसे और क्यों माना जाना चाहिये?
१८. आधुनिक विचारकों ने गौडपाद पर बौद्ध प्रभाव को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है किन्तु इस प्रभाव में बौद्ध दर्शन की किस शाखा का सर्वाधिक योगदान रहा है?

१९. वेदान्त के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में बौद्ध अवधारणाओं का खण्डन किया है परवर्ती किन बौद्ध आचार्यों ने अपने किन ग्रन्थों में इस खण्डन का उत्तर दिया है?
२०. कालदृष्टि के अतिरिक्त तत्त्वदृष्टि और परस्पर सम्बन्ध की सदभाव दृष्टियों के अनुसार वेदान्त और बौद्ध के परस्पर सम्बन्ध का चरम अथवा स्वर्णकाल किसे कहा जा सकता है? इस स्वर्णकाल में योगदान देने वाले आचार्य और ग्रन्थ कौन से हैं?
२१. धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से वेदान्त एवं बौद्ध के परस्पर सम्बन्ध वर्तमान में कैसे हैं तथा भविष्य में इनका स्वरूप क्या होने की संभावना है?
२२. आज के वेदान्ताचार्य मानते हैं कि बुद्ध पर उपनिषदों का प्रभाव है। इस सन्दर्भ में आपकी टिप्पणी क्या है?
२३. दर्शन या तत्त्वमीमांसा के क्षेत्र को छोड़कर यदि परम्पराद्वय (वेदान्त एवं बौद्ध) की धार्मिक पृष्ठभूमि/अवधारणा की तुलना करें, तो वहाँ क्या स्थिति है? क्या धर्म के नाम पर दोनों विचारधाराओं में साम्य संभव है?
२४. शङ्कर के समन्वयवाद में बौद्ध धर्म-दर्शन किस भूमिका पर अवस्थित है?
२५. आपकी जानकारी में ऐसा कोई दृष्टान्त है जहाँ बौद्ध और वेदान्ती में साक्षात् शास्त्रार्थ हुआ हो?
२६. क्या बुद्ध ने जो उपदेश दिए हैं, वे अधिकारि-भेद से दिए गए हैं?



परिशिष्ट - ६

ग्रन्थ-सूची

(अ) बौद्ध सन्दर्भ वाले वेदान्त के मूल ग्रन्थ

- गोस्वामी, ललितकृष्ण, श्री निम्बार्क वेदान्त (वेदान्तपारिजातसौरभ), श्री निम्बार्क पी, महाजनी टोला, प्रयाग.
- गौडपाद, माण्डूक्यकारिका (नवम संस्करण), गीता प्रेस, गोरखपुर सं. २०२४.
- चित्सुखाचार्य, तत्त्वप्रदीपिका, षड्दर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठान, वाराणसी, १९७४.
- नृसिंहाश्रम, वेदान्ततत्त्वविवेक, विद्वान् एस. नारायण स्वामी शास्त्री, पण्डित ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मैसूर १९९५.
- पद्मपाद, पञ्चपादिका, ई.जे. लाजरसफम्प, काशी, १९४८.
- ब्रह्मसूत्र, भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी १९९८.
- भगवत्पादाचार्य, उपदेशसाहस्री, तुकाराम जावाजी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१४.
- भट्ट, कुमारिल, श्लोकवार्तिक, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १९७८.
- मण्डनाचार्य, ब्रह्मसिद्धिः, गवर्मेण्ट ओरिएण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, १९६३.
- मध्वाचार्य, श्रीमाध्ववेदान्त (पूर्णप्रज्ञभाष्य), मुनिलाल, प्रकाशन अधिकारी, श्रीनिम्बार्कपीठ, १२ महाजनी टोला, प्रयाग प्र.संस्करण, सं. २०३१.
- मिश्र, वाचस्पति, खण्डनोद्धारः, रामानन्दपीठ, शीगड़ा, वाराणसी
- रामानुज, वेदार्थसंग्रह, तिरुमल-तिरुपति देवस्थान, १९५३.
- रामानुजाचार्य, श्रीभाष्यम् द्वितीय खण्ड, प्रस्तोता ललित कृष्ण गोस्वामी, प्रका. निम्बार्कचार्य पीठ १२, महाजनी टोला, प्रयाग, १९७४.
- वल्लभाचार्य, अणुभाष्यम्, बुटाला एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १९८०.

- विद्यारण्यमुनि, पञ्चदशी, सत्यभामाबाई, पाण्डुरंग, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९८९.
- विद्यारण्यमुनि, विवरणप्रमेयसंग्रहः, अच्युत ग्रन्थमाला, कार्यालय, काशी, १९९६.
- शङ्कराचार्य, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८.
- शङ्कराचार्य, आत्मबोधः, अच्युतग्रन्थमाला, काशी १९९०.
- श्री हर्ष, खण्डनखण्डखाद्यम्, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, मन्त्री, षड्दर्शन प्रकाशन, प्रतिष्ठान, उदासीन संस्कृत विद्यालय, वाराणसी, १०००.
- सदानन्द, वेदान्तसारः, मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी, १९७९.
- सर्वज्ञात्ममुनि, संक्षेपशारीरकम्, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सम्वत् २०४९.
- स्वामी रामतीर्थ, अन्वयप्रकाशिका (संक्षेपशारीरक की टीका), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सम्वत् २०४९.
- सिंह, सत्यव्रत, वेदान्तदेशिक, चौखम्भा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, १९५८.

(आ) प्रस्तुत अनुसन्धान में प्रयुक्त बौद्ध मूल ग्रन्थ

- अश्वघोष, बुद्धचरितम्, मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी १९८५.
- अश्वघोष, सौन्दरनन्द-महाकाव्यम्, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८९.
- असंग, महायानसूत्रालंकारः, बौद्धभारती, वाराणसी १९८५.
- आर्य मैत्रेय, मध्यान्तविभागशास्त्रम्, बौद्धभारती, वाराणसी, १९९४.
- नागार्जुन, मध्यमकशास्त्रम्, बौद्धभारती, वाराणसी, १९८३.
- वसुबन्धु, अभिधर्मकोशम्, बौद्धभारती, वाराणसी, १९८१.
- वसुबन्धु, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६७.

(इ) बौद्ध, वेदान्त एवं भारतीय दर्शन के स्वतन्त्र इतिहास-ग्रन्थ

- आंगिरस, रमाकान्त, शाङ्कर वेदान्त : एक अनुशीलन, नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल, १९८२.

- उपाध्याय, बलदेव, बौद्धदर्शनमीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७८.
- कृष्णकुमार, वैदिक साहित्य का इतिहास, साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार, मेरठ, १९८४.
- गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, उत्तर प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९७३.
- चतुरसेन, आचार्य, बुद्ध और बौद्ध धर्म, सन्मार्ग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, १९८६.
- चतुर्वेदी, कृष्णकान्त, द्वैतवेदान्त का तात्त्विक अनुशीलन, विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली-६, १९७१.
- तिवारी, मुनिराम, बौद्धाचार्य वसुबन्धु, प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी १९९९.
- डायसन, पाल, वेदान्त दर्शन (हिन्दी अनुवाद, संगमलाल पाण्डेय), हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, १९७१.
- त्रिपाठी, रमाशङ्कर, संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, कृष्णदास, अकादमी, वाराणसी, १९९६.
- देवराज, भारतीय दर्शन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५०.
- देवी, कमला, मधुसूदन सरस्वती की अद्वैतसिद्धि, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद.
- दुबे, राजेन्द्र प्रसाद, वेदान्त के अज्ञात आचार्य, सरस्वती प्रकाशन, राँची, १९८९.
- द्विवेदी, पारसनाथ, भारतीय दर्शन, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा-३.
- नरवणे, विश्वनाथ, आधुनिक भारतीय चिन्तन, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९६६.
- नरेन्द्र देव, बौद्धधर्मदर्शन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५६.
- पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९७.
- पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ.प्र., लखनऊ, द्वितीय संस्करण, १९७६.

- मिश्र, उमेश, भारतीय दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, १९७०.
- मिश्र, वाचस्पति, बौद्ध दर्शन का विवेचन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९६८.
- मिश्र, हृदयनारायण, माध्यमिक दर्शन, १२४/१५२, गोविन्दनगर, कानपुर, १९८०.
- राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन-१, काश्मीरी गेट, दिल्ली-७५, १९८९.
- वर्मा, राजलक्ष्मी, आचार्य वल्लभ और उनका दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९८.
- शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, बंग्लो रोड, जलालपुर नगर, दिल्ली.
- शर्मा, राजगोपाल, आद्य श्रीशङ्कराचार्य : आविर्भाव काल, श्री शृंगेरी मठ, कालड़ी (केरल)
- शर्मा, राममूर्ति, वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप एवं जीवन दर्शन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९९७.
- शास्त्री, मंगलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास, (द्वितीय खण्ड) औपनिषदिक धारा, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९६६.
- शेखावत, महेन्द्र, आधुनिक चिन्तन में वेदान्त, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, १९७१.
- सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन-दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, पंचम संस्करण, १९८३.
- सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९८३.
- सिंह, जयदेव, समकालीन दर्शन, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७९.
- Bhattacharya, Vidhushekhar, Agamsastra of Gaudapada, University of Calcutta, 1943.

- Dharmapala, Anagarika and olcott, Colonel Henry, Buddhism and Hinduism, Verible D.R. cwatha, Thero General Secretary, Maha Bodhi, Society of India, 1996.
- Dutta & Chatterjee, An Introduction to Indian Philosophy, Calcutta University, 1939.
- Joshi, Shanti, The Message of Sankara, Lokbharti Publications, Allahabad, 1968.
- Mahadevan, T.M.P., Gaudapada : A Study in Early Advaita Philosophy, Madras University.
- Max Muller, F., Three Lectures on the Vedanta Philosophy, Chawkhamba Sanskrit Series office, Varanasi, 1967.
- Max Muller, Six Systems of Indian Philosophy, Chaukhamba, Varanasi, 1903.
- Murti, T.R.V., The Central Philosophy of Buddhism, George Allen & Unwin (Publishers) Ltd. 1980.
- Nariman, J.K. Literary History of Sanskrit Buddhism, Motilal Banarasidas, Publishers, 1923.
- Pandey, Govinda Chandra, Studies the Orignes of Buddhism, University of Allahabad, 1957.
- Ranadey, R.D., A Constructive Survey of Upanishadic Philosophy, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1968.
- Roy, S.S., The Heritage of Sankara, Udyana Publication, Allahabad, 1965.
- Sharma, B.N.K., Lectures on Vedanta, Kamataka University, Dharwar, 1973.
- Sharma, Chandradhar, A Critical Survey of Indian Philosophy, Motilal Banarasidas Varanasi, Second Issue, 1964.
- Sharma, Nilima, Twentieth Centuery Indian Philosophy (Nature an Destiny of Man), Bharatiya Vidya Prakasana, Varanasi - 1, 1972.
- Shastri, Dharmendra Nath, A Critique of Indian Realism, Agra University, Agra, 1964.
- Soloman, A Ester, Avidya, A Problem of Truth and Reality, Gujrat University, Ahmedabad, 1969.

- Stcherbatsky, Buddhist Logic, Part - I Leningrad, 1932.
- Stcherbatsky, Conception of Buddhist Nirvana, Leningrad, 1927.
- Vivekanand, Practical Vedanta-I, Advaita Ashram, 5, Delhi, Entally Road, Calcutta, 1978.

(ई) तुलनात्मक सामान्य अध्ययन ग्रन्थ, लेख, पत्रिका व शोध-
प्रबन्ध

- मन्जु, अद्वैतवाद और शून्यवाद, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८६.
- व्यास, सूर्यप्रकाश, बौद्ध, वेदान्त एवं काश्मीर शैव दर्शन, विवेक पब्लिकेशन्स, ३/३६४, समदरोड, अलीगढ़, १९८६.
- शर्मा, चन्द्रधर, बौद्ध और वेदान्त, विजनविभूति प्रकाशन, इलाहाबाद, ११० विवेकानन्द रोड, १९४९.
- Dharmapala, Anagarika & O Lcott, Colonel Hehry, Buddhism and Hinduism, Maha Bodhi Society of India, Calcutta, 1996.
- Jha, R.C., The Vedantic and The Buddhist Concept of Reality As Interpreted By Samkara and Nagarjuna, Firma K.L. Mukhopadhyay, 257, B. Bipin Bihari Ganguly St., Calcutta, 1973.
- Mehta, J.L., Vedanta and Buddhism and other papers. The centre of Advanced Study in Philosophy, B.H.U., Varanasi, 1968.
- गोपीनाथ, कविराज, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य की भूमिका, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी, १९९३.
- पाण्डेय, लक्ष्मीकान्त, प्रस्थानत्रयी में निहित एकता, परामर्श, सितम्बर, १९८७.
- व्यास, सूर्यप्रकाश, डॉ. राधाकृष्णन् और बौद्ध मत, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
- शर्मा, बाबूलाल, शून्यवाद एवं विज्ञानवाद से प्रभावित अद्वैतवाद, परामर्श, सितम्बर-नवम्बर, २००२.
- Davids, Rhya, The Sects of the Buddhist Journal of the Royels Society, 1891.

- Mishra, Satya Deva, Nagarjuna and Gaudapada, Birla Institute of Technology and Science, Pilani.
- Pussin, La Velle, Vedanta and Buddhism, London, Asiatic Society, Journal, 1910.
- Shastri, Hariprasad, Indian Historical Quarterly - I, 1925.
- Sundaram, P.K., Gaudapada and Buddhism, The Adyar Library, The Theosophical Society, Bulletin, Vol. - 62, 1998.
- पाण्डे, राम, अद्वैत वेदान्त और माध्यमिक दर्शन में तर्क का स्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९७७.
- मधु, चौबे, माध्यमिक बुद्ध और अद्वैत वेदान्त दर्शन में नकारात्मक पद्धति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८९.
- Bhattacharya, Karuna, Nagarjuna and Shankara, A Critical and Comparative Study, Calcutta, University, 1965.
- Sharma, C.D., Dialectic in Vedanta and Buddhism, Allahabad University, 1947.

(उ) तुलनात्मक विशेष अध्ययन-ग्रन्थ

(शोध-विषय की समस्या विशेष पर भारतीय दर्शन/बौद्ध/वेदान्त के किसी ग्रन्थ में विचार)

- आचार्य, रामकृष्ण, वैष्णव-भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, १९८०.
- उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन (भाग-२) बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, १९५४.
- दासगुप्ता, एस.एन., भारतीय दर्शन का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
- द्विवेदी, श्रीराधेश्यामधर, बौद्धविज्ञानवाद : चिन्तन एवं योगदान, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९८३.
- माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४.
- मिश्र, हृदयनारायण व अर्जुन, अद्वैत वेदान्त, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९९०.

- शर्मा, वाचस्पति, अणुभाष्य एक समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९९५.
- शास्त्री, उदयवीर, वेदान्त दर्शन का इतिहास, बिरजानन्द वैदिक संस्थान, गाजियाबाद (उ.प्र.), १९७०.
- शास्त्री, सुधांशुशेखर, दर्शनसर्वस्वम्, डी. १/६५, ललितषट्पुम, वाराणसी, उ.प्र.
- श्रीवास्तव, जगदीश सहाय, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका, किताब महल, इलाहाबाद, १९९७.
- सिंह, ज्ञान्ती देवी, गौडपाद दर्शन : एक आलोचनात्मक अध्ययन (गौडपाद कारिका के विशेष सन्दर्भ में), विवेक घिल्डियाल बन्धु, वाराणसी, १९९६.
- त्रिपाठी, रामशरण, ब्रह्मसूत्रभाष्यपञ्चकसमीक्षणम्, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी, १९७२.
- Conio, Caterina, The Philosophy of Mandukya - Karika, Bharatiya, Vidya Prakashan, Varanasi - 1971.

(ऊ) सहायक ग्रन्थ

- अवस्थी, ब्रह्ममित्र, पातञ्जल योग पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, १९७८.
- उदयनाचार्य, न्यायकुसुमाञ्जलि, चौखम्भा, वाराणसी, १९६२.
- उपाध्याय, अमरमुनि, श्रमणसूत्र, श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९६६.
- कठोपनिषद्, सर्वहितैषी कम्पनी तथा गोर्खा पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९३८.
- कमलेश, सुशीला, ब्रह्मसूत्र पर प्रणीत शक्तिभाष्य का अध्ययन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९७२.
- कविराज, गोपीनाथ, तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, २०००.
- केनोपनिषद्, शाङ्करभाष्य, मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. २०२७, दसवाँ संस्करण ५०००.
- केनोपनिषद्, सर्वहितैषी कम्पनी, तथा गोर्खा पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९३८.

- कौषीतकि उपनिषद्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९८०.
- कौसाम्बी, धर्मानन्द, भगवान् बुद्ध (जीवन और दर्शन), लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद.
- गाँधी, मो.क., गीता-बोध और मंगल-प्रभात, मन्त्री, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, १९६९.
- गिरिधर, गोस्वामी, शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९०६.
- गोयनका, हरिकृष्णदास (अनुवादक) श्रीमद्भगवद्गीता, (शाङ्कभाष्य हिन्दी अनुवाद सहित), मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् २०२४.
- गौड़, ज्वालाप्रसाद, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, सरजू देवी, १८५, गणेश महाल, वाराणसी, जुलाई, १९५८.
- चतुर्वेदी, वासुदेव कृष्ण, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवत, श्रीकृष्ण सत्संगभवन, मथुरा, उ.प्र.
- जैन, भागचन्द्र, भारतरत्न डॉ. अम्बेडकर और बौद्ध धर्म, सन्मति रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, २०००.
- झा, आचार्य आनन्द, चार्वाक दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ.प्र., लग्नऊ, १९६९.
- झा, गंगानाथ, न्यायदर्शन, वात्स्यायन भाष्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९२५.
- तिलक, गंगाधर, गीता रहस्य, तिलक मन्दिर, पूना, १९५५.
- द्विवेदी, रामचन्द्र, काश्मीर की शैव परम्परा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९०.
- दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, अमिताभ बुद्ध, इण्डोलॉजिकल बुक कॉरपोरेशन, पटना, १९८२.
- धर्माधिकारी, दादा, सर्वोदय दर्शन, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, राजघाट, काशी १९५७.
- पाण्डे, कान्तिचन्द्र, भास्की, भाग १-२, भास्कर कण्ठ, सं. अय्यर एवं पाण्डेय, सरस्वती भवन, १९३८-५०.

- पाण्डेय, जनार्दन शास्त्री, बौद्धस्तोत्रसंग्रहः, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९९४.
- पाठक, सर्वानन्द, चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५.
- पातंजलयोगदर्शनम् (तत्त्ववैशारदी) भारतीय-विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६३.
- बृहदारण्यक उपनिषद्भाष्य, सर्वहितैषी कम्पनी तथा गोर्खा पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण, सन् १९३८.
- भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९६६.
- भावे, विनोबा, स्थितप्रज्ञ दर्शन, सस्ता, साहित्य मण्डल, १९५६.
- भूदान, यज्ञ (साप्ताहिक), १३ मार्च, १९६५.
- माण्डूक्य उपनिषद्, मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् २०२४, नवमं संस्करण, ५०००.
- मिश्र, केशव, तर्कभाषा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी, १९६३.
- मुण्डक उपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०२३, नवम संस्करण, ५०००.
- मेहता, रामगोपाल, गीता का व्यवहार दर्शन, सत्य नारायण प्रिन्टिंग प्रेस, फ्रियर रोड, कराँची, १९३७.
- यदुवंशी, शैव मत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५५.
- राधाकृष्णन्, उपनिषदों का सन्देश, राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली, १९९५.
- राय, जीवन, प्राचीन अफगानिस्तान में बोधिसत्त्व, इण्डोलॉजिकल प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९.
- श्वेताश्वतर उपनिषद्, सर्व हितैषी कम्पनी तथा गोर्खा पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९३८.
- श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, षष्ठ संस्करण ५०००.
- सरस्वती, मधुसूदन, श्रीमद्भगवद्गीता 'गूढार्थदीपिका' संस्कृत टीका युक्त हिन्दी

व्याख्या, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी प्रथम संस्करण, २०१८.

- श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र, आचार्य विज्ञानभिक्षु और भारतीय दर्शन में उनका स्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९.
- Albers A. Christina, Life of Buddha, The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation, Taipai Taiwan, R.O.C.
- Anacker, Seven works of Vasubandhu, Motilal Banarasidas, Varanasi, 1986.
- Besant, Annie and Das, Bhagavan, Bhagavad Gita, (English Translation). The Theosophical Publication Hous, Adyar Madras, 1962.
- Buddhanand, Swami, Slections from Swami Vivekanand, Advaita Ashrama, Calcutta, 1970.
- Oldenberg, Herman, Buddha : His life, His doctrine, His order, Motilal Banarasidas, Delhi, First edition, 1997.
- Patel, Dadubai, N., The Real Essence of Tantra, Yogi Divine Society, Bombay, 1978.
- Radhakrishnan, S., An Idealistic View of the Life, George All'en & Unwin, London, 1932.
- Shastri, Dharmendra Nath., A Critique of Indian Realism, Agra University, Agra, 1964.
- Tilak, Bal Gangadhar, Srimad Bhagavadgita, Rahasya of Karma - Yoga - Sastra, Tilak Bros., Lokamanya Tilak Mindir, 568, Narayan Peth, Poona, 1965.
- Vivekanand, Selections from Swami Vivekanand, Advaita Ashram, 5, Delhi Entally Road, Calcutta, 14, 1976.
- Woodroffe, Sir John, Sakti and Sakta, Ganesh & Co. (Madras), Private Ltd. Seventh Edition, 1969.

अन्य प्रकाशन

१. बौद्ध, वेदान्त एवं काश्मीर शैव दर्शन
लेखक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
विवेक पब्लिकेशन्स, अलीगढ़, १९८६
मूल्य : २५०.००
२. सिद्धित्रयी (उत्पलाचार्य विरचिता)
सम्पादन एवं अनुवाद : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८८
मूल्य : १२५.००
३. जातकमाला (आर्यशूरप्रणीता)
अनुवाद एवं अध्ययन : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९६२
मूल्य : २००.००
४. पीयूषम् (आचार्य रामचन्द्र द्विवेदी स्मारिका)
सम्पादन : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी, १९६५
मूल्य : १००.००
५. उद्गार (डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी के
प्रति सहृदयों के)
सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी, १९६८
६. गीतामृतम्
मूल लेखक : पं० गिरिधरलाल शास्त्री
अनुवाद एवं भूमिका : डॉ० यशवन्तकुमार जोशी
सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी, १९६६
मूल्य : २५.००
७. भावगीत
कवि : सुभाष चन्द्र जोशी
सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास
प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी, २००२
मूल्य : १००.००

आर्य भाषा संस्थान के प्रमुख प्रकाशन

- सोये पलाश दहकेंगे (गीत) – नचिकेता 100.00
- शिनाख्त – सं. नचिकेता 150.00
- सभाजित पाण्डेय अश्रु : एक मूल्यांकन—डॉ. अवधेश नारायण मिश्र 100.00
- हिन्दी नवगीत : सार्थक कृतियाँ—डॉ. अवधेश नारायण मिश्र 100.00
- हिन्दी नवगीत का संक्षिप्त इतिहास—डॉ. अवधेश नारायण मिश्र 100.00
- जनवादी गीत : स्वरूप और समस्याएँ—डॉ. अवधेश नारायण मिश्र 100.00
- युगपुरुष—डॉ. रामकुमार वर्मा—सं. डॉ. बालेन्दु शेखर एवं अन्य 250.00
- अविभाजित आकाश (काव्य)—ब्रह्माशंकर पाण्डेय 100.00
- रेत में बहता जल (कविता)—सं. चन्द्रबली सिंह, अशोक पाठक 100.00
- गीत रचना की नई जमीन—नचिकेता 100.00

...The scholar Ms. Anamika Singh has solved somehow the differences persisted between Buddha and Śāṅkara. By refutation and acceptance of the Buddhist systems she has opened a new horizon of knowledge in the universe of Vedānta and Buddhist philosophies. The intellectual foreseeing of Śāṅkara and Buddha are the pioneer of mankind for social and worldly welfare as well as supramundane delight....

...The author has thrown new light on the problem chosen by herself by virtue of discovery of new facts and new interpretation of the existing data. After a painstaking critical analysis she has established the pinpointed exhaustive thoughts of her own in this thesis. Here the language is lucid and the expression is original. She has obeyed the research methodology from the beginning to end, which is appreciable.

Prof. Adityanath Bhattacharya

University, Burdwan

आचार्य रामचन्द्र द्विवेदी-स्मृति-ग्रन्थमाला के प्रकाशन

प्रशान्त प्रकाशन

128, बालाजी कॉलोनी, लंका, वाराणसी-221005 (उ०प्र०)

फोन : 0542 - 2366066

प्रथम पुष्प	कालिदास के काव्य में सादृश्येतर अलंकार लेखक : डॉ० विष्णुराम नागर सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	150.00
द्वितीय पुष्प	तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड लेखिका : डॉ० बीना अग्रवाल सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	300.00
तृतीय पुष्प	सांख्य एवं काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि लेखक : डॉ० विजयशंकर द्विवेदी सम्पादक : डॉ० कृष्णकान्त शर्मा	175.00
चतुर्थ पुष्प	उन्मीलनम् (म०म०पं० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते अभिनन्दन ग्रन्थ) सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	500.00
पञ्चम पुष्प	बौद्धाचार्य वसुबन्धु लेखक : डॉ० मुनिराम तिवारी सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	200.00
षष्ठ पुष्प	मेदपाट-मण्डन पं० गिरिधरलाल शास्त्री लेखक : डॉ० यशवन्त कुमार जोशी सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	400.00
सप्तम पुष्प	दर्शन-कणिका डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास	150.00
अष्टम पुष्प	बौद्ध सुभाषित सङ्कलन एवं अनुवाद : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी	250.00
नवम पुष्प	बौद्ध शैक्षिक मूल्य लेखिका : डॉ० मीना शर्मा सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी	150.00
दशम पुष्प	वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ लेखिका : डॉ० अनामिका सिंह सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी	400.00

आचार्य रामचन्द्र द्विवेदी-स्मृति-ग्रन्थमाला के प्रकाशन प्रशान्त प्रकाशन

128, बालाजी कॉलोनी, लंका, वाराणसी-221005 (उ०प्र०)

फोन : 0542 - 2366066

प्रथम पुष्प कालिदास के काव्य में सादृश्येतर अलंकार
लेखक : डॉ० विष्णुराम नागर
सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

150.00

द्वितीय पुष्प तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड

लेखिका : डॉ० बीना अग्रवाल

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

300.00

तृतीय पुष्प साख्य एवं काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि

लेखक : डॉ० विजयशंकर द्विवेदी

सम्पादक : डॉ० कृष्णकान्त शर्मा

175.00

चतुर्थ पुष्प उन्मीलनम्

(म०म०प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते अभिनन्दन ग्रन्थ)

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

500.00

पञ्चम पुष्प बौद्धाचार्य वसुबन्धु

लेखक : डॉ० मुनिराम तिवारी

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

200.00

षष्ठ पुष्प मेदपाट-मण्डन प० गिरिधरलाल शास्त्री

लेखक : डॉ० यशवन्त कुमार जोशी

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

400.00

सप्तम पुष्प दर्शन-कणिका

डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

150.00

अष्टम पुष्प बौद्ध सुभाषित

सङ्कलन एवं अनुवाद : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी

250.00

नवम पुष्प बौद्ध शैक्षिक मूल्य

लेखिका : डॉ० मीना शर्मा

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

150.00

दशम पुष्प प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी

वेदान्त में बौद्ध सन्दर्भ

लेखिका : डॉ० अनामिका सिंह

सम्पादक : डॉ० सूर्यप्रकाश व्यास

400.00

प्रकाशक : आर्य भाषा संस्थान, वाराणसी